अनुक्रमणिका

रागमाला
भारत का दृश्यमान संगीत

पंचम रागपुत्र, मारवाड़ (?), १६४०; ५½"×६½"; नैशनल म्युजियम, नई दिल्ली। इस चित्र में भैरव राग के पुत्र का चित्रण हुआ है। यह ८६ पर्णकों वाली एक 'रागमाला' के चित्रों में शामिल है, जिनकी रचना मेषकर्ण नामक कवि द्वारा सुझाये गये चित्रांकनीय विधा सम्बन्धी विवरणों के आधार पर हुआ था। मेषकर्ण १६ वीं शताब्दी में रीवां राज्य के एक राज-पुरोहित थे। उन्होंने 'पंचम पुत्र' का वर्णन एक श्याम वर्ण के पीताम्बरधारी पुरुष के रूप में किया है, जो अपने हाथों में पान, कमल, बांसुरी और शंख धारण किये हुए है। उसके उन्नत ललाट पर सूर्य और चन्द्रमा के टीके अंकित हैं।

क्लॉस एवेलिंग

वह कौन-सी शक्ति रही होगी, जिसने शताब्दियों के काल-व्यवधान और सहस्रों मील की दूरी के अन्तर पर सृजन करने वाले चित्रकारों को किसी संगीत-रचना की चाक्षुष्-अभिव्यंजना के लिए कतिपय विशिष्ट चित्रांकन-विधाओं का अनुसरण करने पर विवश किया होगा? यह उन पक्षों में से केवल एक है, जिनका विवेचन एक युवा अमेरिकी विद्वान् ने भारतीय लघुचित्र-कला की एक आकर्षक प्रशाखा विषयक अपनी पुस्तक में विस्तार के साथ करने का प्रयत्न किया है।

'रागमाला' चित्रों के सम्पर्क में मैं संयोगवश ही आया; यों कहिये कि अन्धे के हाथ बटेर लगी। हुआ यों कि न्यूयार्क राज्य के कोलगेट विश्वविद्यालय में भारतीय कलाओं के विषय में एक विचार-गोष्ठी होने जा रही थी, जिसमें भाग लेने के उद्देश्य से मैंने एक अनुदान के लिए आवेदन-पत्र दिया था। मुझसे कहा गया कि मैं उस ग्रीष्मकालीन विचार-गोष्ठी की अवधि

के लिए अपना कोई शोध-विषय चुन लूं। इसके पहले मैं भारतीय मूर्त्ति-शिल्प का अध्ययन कर चुका था; अतएव मैंने निश्चय किया कि भारत और अमेरिका के लब्धप्रतिष्ठ गायकों, वादकों, नर्त्तकों, संगीतशास्त्रियों और कला-इतिहासज्ञों के इस सम्मेलन का लाभ उठाकर मैं इस वात की खोज करूं कि चित्रकला और संगीत-कला में कोई सम्बन्ध सम्भव है या नहीं। जिस पत्र द्वारा मुझे अनुदान स्वीकृत होने की सूचना प्राप्त हुई, उसमें विचार-गोष्ठी के निदेशक, विलियम स्केल्टन, ने, जो संगीतशास्त्र के एक प्राध्यापक हैं, 'रागमाला का अध्ययन' विषय चुनने के उपलक्ष्य में मुझे अपनी शुभकामना दी थी। शुभकामना अकारण न थी, क्योंकि उन्हें पता था कि इस विषय पर उपलब्ध सूचना-सामग्री कितनी अपर्याप्त और दुर्लभ थी।

"रागमाला?" मैंने अपनी पत्नी से कहा, "अपने अनुदान-प्रस्ताव में तो मैंने 'रागमाला' का कोई उल्लेख किया ही नहीं था!" आखिर, यह है कौन-सी बला? इस शब्द का अर्थ जानने के लिए, मैंने कला-विषयक कोश-ग्रंथ देखे। पता चला कि यह भारतीय लघुचित्र-कला की एक शैली है, जिसमें संगीत के रागों का दृष्टांकन किया जाता है। कुछ ही सप्ताह के अनन्तर, विचार-गोष्ठी में मुझे संसार की कलाओं में अनुपम, इस बहु-माध्यमीय कला-शैली के प्रथम मौलिक दृष्टान्तों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होने वाला था। मेरे शिक्षक ने ठीक ही कहा था: इसके विषय में उपलब्ध जानकारी बहुत ही कम और अधूरी थी, और जो थी भी, उसे खोज निकालना दुष्कर था। इस विषय पर अभी तक केवल एक पुस्तक, 'रागाज़ ऐण्ड रागिनीज़' (राग और रागिनियां), लिखी गयी थी, जिसके लेखक हैं श्री ओ० सी० गांगुली। यह पुस्तक कलकत्ता से १९३५ में प्रकाशित हुई थी और उसकी केवल ३६ प्रतियां छपी थीं। लगभग एक वर्ष तक तलाश करने के वाद, कहीं जाकर, मुझे इनमें से एक प्रति हाथ लगी। अपने शोध-कार्य के लिए मैंने उसके प्रत्येक पृष्ठ का फोटो ले लिया।

उन दिनों मैं अमूर्त्त शैली में, मोटर-चालित चक्र-दन्तुर आरी की सहायता से, विशालकाय काष्ठ-प्रतिमाओं की रचना कर रहा था। साथ ही, मैं बड़े-बड़े अमूर्त्त भित्ति-चित्र भी बना रहा था, जिनका अंकन मैं तूलिका के बजाय, तीन-इंच और आठ-इंच चौड़े बेलनों द्वारा करता था। इस प्रकार, कहां तो ये कोमल लघु 'रागमाला' चित्र, जिनके सूक्ष्म विवरण, जो बहुधा एक बाल वाली तूलिकाओं से अंकित होते थे, और जिनकी विपुल यथार्थ तथा प्रतीकात्मक विषय-वस्तुएँ भारतीय कला के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में मुझे चकित कर रही थीं, और कहां स्थूल उपादानों से निर्मित मेरे चित्र तथा प्रतिमाएं! 'रागमाला' चित्र मेरी अपनी कृतियों से कितने भिन्न और विपरीत थे, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

कोलगेट में व्यतीत उस ग्रीष्म के वाद, मैं मूल और गौण स्रोतों से समस्त उपलब्ध सूचनाएं एकत्र करता रहा। मुझे यह वात स्पष्ट हो गयी कि 'रागमाला' चित्रों में, एक-दूसरे के बीच विद्यमान देश और काल के अतिशय विस्तृत अन्तरालों के बावजूद, एक उल्लेखनीय साम्य, एक व्यापक एकरूपता तथा प्रभूत पुनरावृत्ति है। १६वीं से लेकर १९वीं तक की चार शताब्दियों के दौरान, और दक्षिण से लेकर पंजाब तथा मारवाड़ से लेकर बंगाल तक सहस्रों मील के विस्तार में, प्रतिष्ठित चित्रकारों ने कोई ४० रागों में से किसी भी एक राग के अत्यन्त समरूप चित्र बारबार बनाये थे (संगीतपरक और चित्रपरक राग शब्द में अन्तर करने के लिए मैं संगीत के सन्दर्भ में राग और चित्र के संदर्भ में 'राग' लिख रहा हूं)। इनके अतिरिक्त, 'रागमाला' चित्रों के किसी-न-किसी चित्राधार (अलबम) में यदा-कदा, बहुत विरल रूप में ही सही, कई सौ अन्य रागों का भी चित्रण हुआ।

इस प्रकार, 'ककुभ रागिनी' लगभग सदैव अनेक मयूरों के बीच खड़ी एकाकिनी नारी के रूप में चित्रित की गयी है। 'विभास रागिनी' में बार-बार एक कामासक्त दम्पति को पर्यंक-शैया पर दिखाया गया है; पुरुष के हाथ में हमेशा प्रेम के देवता कामदेव का पुष्प-जटित धनुष होता है; वह या तो अपनी अधलेटी प्रिया की ओर पद्म-बाण का सन्धान कर रहा होता है, मानो रमण-रात्रि का अवसान होने पर उसमें पुनः वासना जगा रहा हो, अथवा किसी उद्यान के परकोटे पर बैठे, बांग देते, कुक्कुट को अपने बाण का लक्ष्य बना रहा होता है, मानो इससे सवेरा होना रुक जायेगा। 'देवगान्धार रागिनी' एक तपस्विनी के रूप में चित्रित की गयी है; और 'श्री राग' का चित्रण हुआ है एक सामन्त के रूप में, जो एक वृद्ध गायक का, जिसकी संगत एक अश्व जैसे सिर वाला व्यक्ति करता है, गायन सुन रहा होता है।

यद्यपि प्रत्येक चित्र की शैली में भिन्नता पायी जाती है, जिससे उसके रचना-काल और रचना-क्षेत्र का निर्धारण करना सम्भव हो जाता है, तथापि एक-जैसे संगीतात्मक शीर्षक वाले सभी लघुचित्रों की विषय-वस्तु में विलक्षण समानता मिलती है। मैंने अपने-आपसे पूछा कि वह कौन-सी शक्ति रही होगी, जिसने शताब्दियों के काल-व्यवधान और सहस्रों मील की दूरी के अन्तर पर सृजन करने वाले चित्रकारों को किसी संगीत-रचना की चाक्षुष्-अभिव्यंजना के लिए कतिपय विशिष्ट चित्रांकन-विधियों का अनुसरण करने पर विवश किया होगा? क्या भारतीय संगीत ने वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक-सा ही बिम्ब उत्पन्न किया था? क्या उस समय कोई ऐसा प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थ या ऐसी कला-निर्देशन पुस्तिका उपलब्ध थी, जिसने इन बिम्बों का निर्धारण कुछ उसी प्रकार किया था, जिस प्रकार भरतमुनि-प्रणीत 'नाट्य-शास्त्र' ने नृत्य और नाटचकला के अभिव्यंजना-शिल्प को प्रभावित किया था?

मेरा शोध-कार्य कई वर्षों तक चला। उस बीच, सौभाग्य से, 'अमेरिकन इन्स्टिटचूट ऑव् इण्डियन स्टडीज़' ने मुझे शोध-कार्य के लिए एक छात्रवृत्ति प्रदान कर दी, जिसके सहारे मैं भारत में नौ महीने रह सका और 'रागमाला' चित्रों की खोज करता फिरा। मेरा लक्ष्य था इंग्लैण्ड,

देवगान्धार रागिनी, बूंदी/कोटा, १७४०; ४½" × ७½"; नैशनल म्युज़ियम, नई दिल्ली। कवियों ने देवगान्धार का वर्णन 'योगिनि ह्वै बैठीं वियोगिनि की अंखियां' जैसे पदों द्वारा करते हुए, उसे एक ऐसी नायिका के रूप में चित्रित किया है, जिसने अपने प्राणप्रिय पति के विरह से व्याकुल होकर उसके लौट आने के लिए तरह-तरह के संयम, व्रत, उपवास और उपासना द्वारा देवी-देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया है और इतनी कड़ी साधना और तपस्या की है कि उसका सुन्दर शरीर सुख कर कांटा हो गया है, उसके केश लटों में परिणत हो गये हैं। उसने शरीर में भस्म पोत कर जटा-जूट धारी योगिनी की तरह मानो धूनी रमा रखी हो। इस प्रकार के रूपान्तरण का वर्णन कवियों के लिए तो सरल था, लेकिन चित्रकार के लिए तूलिका द्वारा उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही कठिन थी। वह एक लावण्यवती तरुणी को इतना प्रेमरस-विभोर और विरह-विदग्धा किस तरह चित्रित करे कि वह एक योगिनी जैसी दिखलायी पड़े? इसके लिए उसने प्रतीकों का सहारा लिया है। सिर के केशों पर मुकुट के रूप में रत्नों और आभूषणों की व्यवस्था करके तथा कुटिया के रूप में परिवर्तित महल को सुन्दर शैया और अन्य प्रसाधनों से सजा कर चित्रकार ने उसकी संयोगावस्था की सुखमय एवं समृद्ध स्थिति का संकेत दिया है।
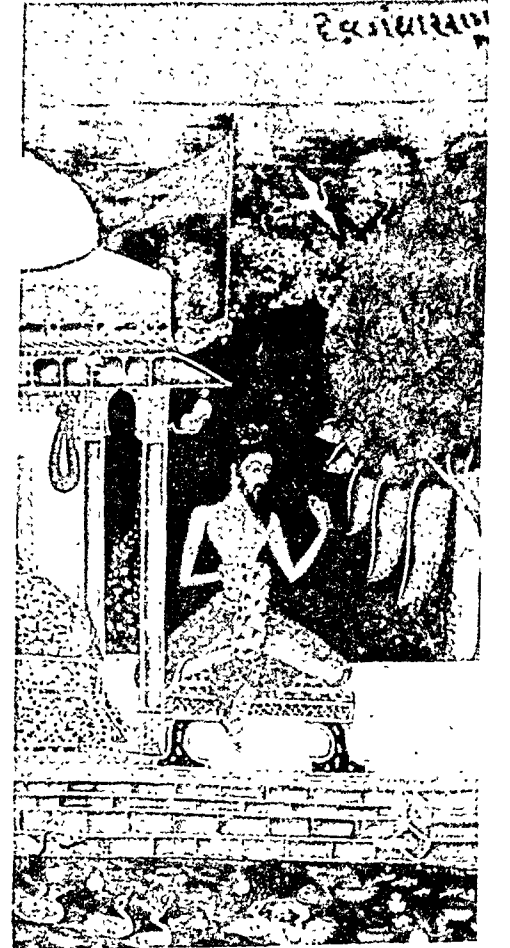
'लेकिन इस शैली के प्रथम चित्रकारों ने चित्रांकन के लिए सुराग कहां से प्राप्त किये थे ? स्पष्टतः, 'रागमाला' सम्बन्धी काव्य में वर्णित बिम्बों से ।'

देसाष रागिनी, सिरोही, १६६०; ४"×६"; संग्रह, जे० पी० गोयनका, कलकत्ता। नटवरी कलावाजी सम्वन्धी यह चित्र राजस्थानी परम्परा के अन्य सभी चित्रों से भिन्न है, क्योंकि उनमें, अधिकांशतः, श्रृंगार रस का चित्रण हुआ है। विरहिणी रागिनियों की तरह ही, इस रागिनी के चित्रण में भी ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकारों के सामने यह द्विविधा रही है कि वे मुख्य चरित्र को पुरुष के रूप में चित्रित करें या नारी के रूप में।
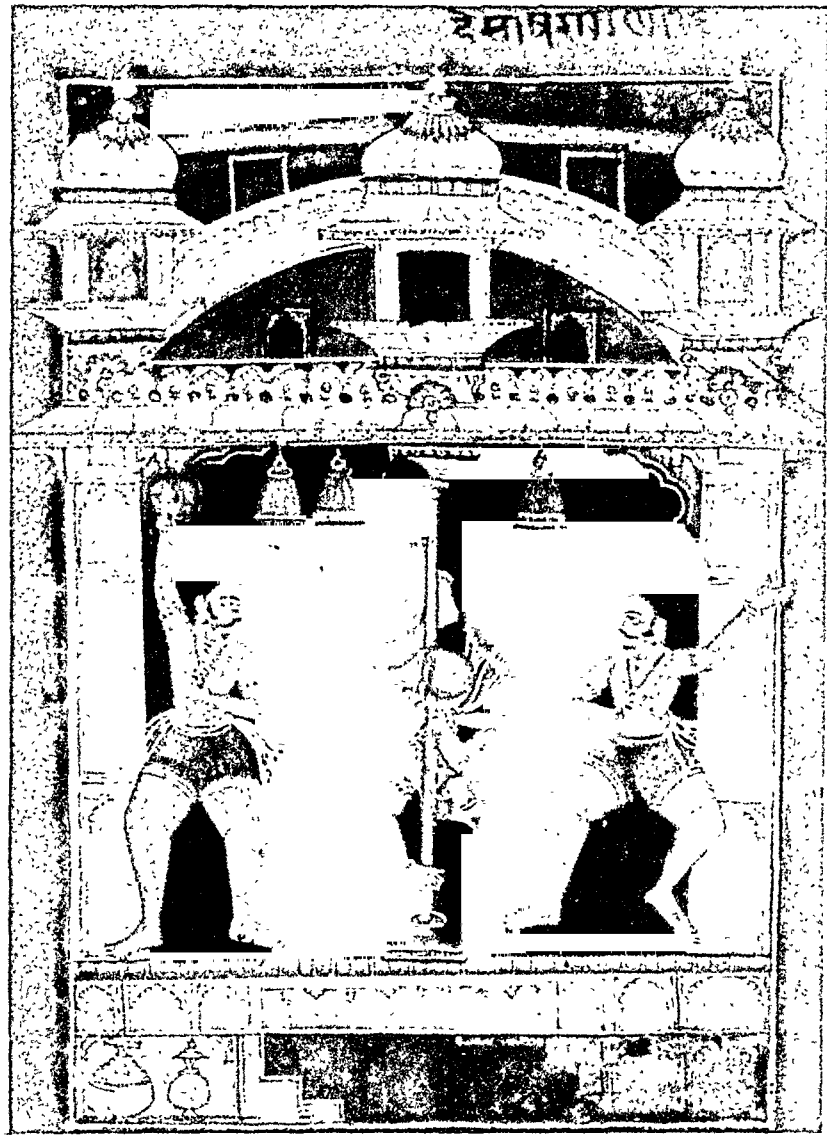
जर्मनी और भारत के सभी ज्ञात चित्र-संकलनों को जा-जा कर देखना, जैसा कि मैंने इससे पहले अमेरिका के पूर्वी प्रदेश में किया था, और अपनी शोध-टिप्पणियों के लिए, उनके संकलन में प्राप्त समस्त 'रागमाला' चित्रों के फोटो ले लेना। मैं सभी चित्रों के सामूहिक विश्लेषण की प्रक्रिया का अवलम्बन लेकर, इस कला-विधा की आवृत्ति, इसके भेद-प्रभेदों और परिवर्तनों, इसके परम्परागत चित्रांकन-सूत्रों और कला विषयक शास्त्रीय ग्रन्थों का मूल्यांकन करना चाहता था। उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए मैं लगे हाथ इस कला-विधा के विषय में, जो अव विलुप्तप्राय हो चुकी है, समस्त अवशिष्ट जानकारी एकत्र कर लेना चाहता था।

अस्तु, मुझे एक भी ऐसा कला-निर्देशन ग्रन्थ या 'रागमाला शास्त्र' नहीं मिला, जिसमें चित्र तैयार करने की विधियों का विवेचन किया गया हो; न ही मुझे भारतीय संगीत, संगीतज्ञों और श्रोताओं के साथ अपने सम्पर्क में इस वात का कोई साक्ष्य मिला कि एक ही राग को सुनने पर उन सवके मन में एक-से ही विम्व रूपायित होते हैं।

लेकिन, इस सारी भाग-दौड़ का एक लाभ अवश्य हुआ। मुझे भारत के वास्तविक रूप के दर्शन हो गये। मैं अनेक संग्रहालयों में गया, अनेक निजी चित्र-संकलनों को देखा। उनके विद्वान् संग्रहाध्यक्षों या स्वामियों ने वड़े सौजन्य से मेरा स्वागत और सहायता की। मेरी पत्नी, मेरी चार पुत्रियों और मैंने वहुत-से मित्र वनाये। हम भारत के सांस्कृतिक इतिहास के महान् पीठों का भ्रमण करने गये; हमने भारत की भूमि, जलवायु, भारतीय रुचियों, ध्वनियों और सुगन्धियों का आनन्द लिया। हमने दीवाली, होली और स्वतन्त्रता-दिवस के समारोह मनाये। भीड़-भाड़ वाले और रंग-विरंगी वस्तुओं से सजे वाजारों में हमने मोल-भाव किये; हमने स्वादिष्ट भारतीय व्यंजनों का रसास्वादन किया; हमने नृत्य देखे और संगीत सुने। संक्षेप में, हमने प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा—कितना वहुमूल्य, अविस्मरणीय, अनुभव था वह !—भारत की जीवन-पद्धति के विषय में जानकारी प्राप्त की।

और, निस्सन्देह, 'रागमाला' शैली के कोई ४,००० चित्र तथा 'रागमाला' सम्वन्धी कोई दो दर्जन कविताएं मुझे प्राप्त हुई। मैंने उनका विश्लेषण किया, उनकी परस्पर तुलना की; स्पष्ट भूलों, आदान-प्रदानों, विजातीय तत्वों और परम्परागत चित्रांकन में जुड़ी अनूठी विशेषताओं को चुन कर अलग किया। इस विवेचन के फलस्वरूप, मुझे इस चित्रकला विषयक चार परम्पराओं का पता चला। मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि 'रागमाला' चित्रकला की जड़ें संगीत की अपेक्षा कविता में अधिक गहरायी तक समायी हुई हैं। मुझे यह भी पता चला कि इन चित्रों की मौलिक उपभोक्ता मुख्यतः नारियां थीं। मैंने इन अनुसन्धानों तथा अन्य वहुत-से साक्ष्यों एवं प्रमाणों को उस समय अपनी पुस्तक, **'रागमाला पेण्टिंग'**, में कस-कसाकर संजो देने का प्रयत्न किया था। वह पुस्तक इस विषय का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है।

मुझ जैसे पाश्चात्य व्यक्ति की दृष्टि में, जो वातें, प्रारम्भ में, कुछ-कुछ अमूर्त्त एवं सूक्ष्म आलंकारिक प्रतिकृतियां तथा चित्र-रचनाएं जान पड़ी थीं, वही, वाद में, अतीव यथार्थवादी लगीं। उनमें मुझे राजस्थानी, दक्खिनी तथा मध्यभारतीय दृश्य-चित्र, स्थापत्य कला, पशु-पक्षी, वनस्पति जगत और मानवीय वेश-भूषा की सूक्ष्म-निरीक्षित विशेषताएं दिखायी पड़ीं। जिस चीज को मैंने, प्रारम्भ में, प्राकृतिक तथा वास्तुशिल्पिक स्थान का एक द्विआयामी चित्रण मात्र समझा था, जिसमें गत ५०० वर्षों से यूरोप और अमेरिका में प्रयुक्त हो रहे केन्द्रीय परिप्रेक्ष्य की भ्रान्ति का अभाव था,

ग्रह, वास्तव में, चित्रांकन सम्बन्धी लघु धरातल के अत्यन्त कुशल उपयोग की चेष्टा की प्रतीक थी। मानव-आकृतियों का चित्रण चित्रकला का एक महत्वपूर्ण तत्व है। अतएव, इस ओर चित्रकार का सबसे अधिक ध्यान गया, जबकि मानवाकृतियों के आसपास के परिदृश्य को उसने कुछ थोड़े-से विशिष्ट सूक्ष्म विवरणों से ही चित्रित कर दिया। किसी प्रासाद का एक प्रकोष्ठ, एक चबूतरा, एक शैया, तीन सोपान, एक सरोवर, कुछ वृक्ष, पौधे और पशु—बस इतने से ही परिदृश्य का चित्रण पर्याप्त स्पष्टता और विदग्धता से कर दिया जाता था।

तो, 'रागमाला' चित्रों के चित्रकार की कार्य-पद्धति क्या थी? मेरा विश्वास है कि किसी 'हरफन मौला' दरबारी या बाजारू चित्रकार के लिए 'रागमालाओं' का चित्रण, निश्चय ही, उपजीविका मात्र रहा होगा। वह स्थानीय सम-सामयिक चित्र-शैली से परिचित रहा होगा, और मांग होने पर रूप-चित्रों; आखेट, युद्ध तथा राज-सभा के दृश्यों; 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे हिन्दू महाकाव्यों के वृत्तों; एवं कृष्ण-लीला तथा नायिका-भेद की विषय-वस्तुओं को चित्रांकित करता रहा होगा।

वह उन दिनों विद्यमान 'रागमाला' चित्रों के चित्राधारों या उनके प्रकीर्ण पृष्ठों का अवलोकन नामों और चित्र-रचना के सूत्रों की जानकारी के लिए करता रहा होगा। इस जानकारी को अद्यतन बनाने के लिए वह कभी-कभी किसी राग का, जिसके संगीत का अभ्यास स्थानीय रूप से न होता होगा, नाम बदल कर उसकी जगह किसी अधिक लोकप्रिय राग का नाम रख देता होगा, और चित्र-सूत्र को उस समय की लोकप्रिय शैली में अभिव्यक्त कर देता होगा।

चूंकि वह न तो पढ़ने में प्रवीण होता था, न उसकी लिखावट ही सुन्दर होती थी, इसलिए वह किसी लिपिक या दरबारी कवि से अनुरोध कर अपने चित्रों पर पुराने 'रागमाला' चित्र पर अंकित कविताएं लिखवा लेता होगा। एक चित्राधार से दूसरे चित्राधार में लिखे जाने की इस प्रक्रिया में ये कविताएं बहुत बुरी तरह भ्रष्ट हो जाती थीं। कुछ मामलों में तो दरबारी कवि पुरानी कविताओं के शब्दों तक में कुछ हेर-फेर कर डालता था, उनमें कुछ नयी पंक्तियां अपनी ओर से जोड़ देता था, अथवा उनको हिन्दी, राजस्थानी या ब्रजभाषा (जो आगरा की बोली थी) में अनूदित कर डालता था। कभी-कभी इस उद्देश्य से कि उन कविताओं की विषय-वस्तु
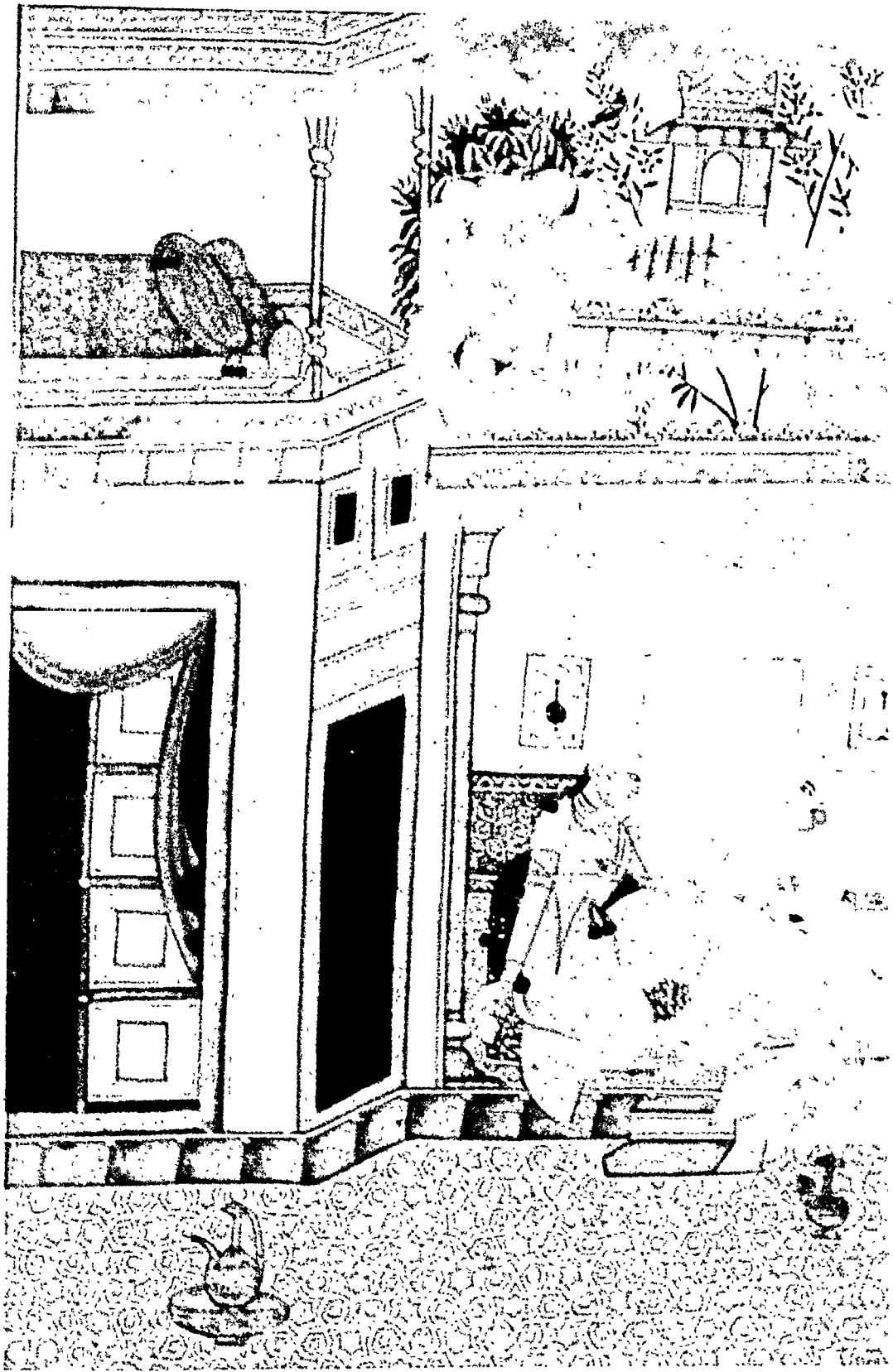
पातमञ्जरी रागिनी, प्रांचलिक मुगल शैली, १६१०; ५½"×७½"; संग्रह, डा० डब्लू० बी० मैनली, गिल्डफोर्ड, इंगलैण्ड। यह चित्र रागमाला चित्रों के सबसे प्राचीन, लगभग-सम्पूर्ण, चित्राधार में शामिल है। इस चित्र पर कश्यप नामक एक कवि द्वारा रचित संस्कृत श्लोक (जो यहां प्रदर्शित नहीं हुआ है) अंकित है। कश्यप की कविता राजस्थानी परम्परा के रागमाला-चित्रों के लिए चित्रांकन-विधा का मूल स्रोत रही है। (ऊपर)

सिन्धुरी रागिनी, कांगड़ा, १७६०; नैशनल गैलरी ऑव् माडर्न आर्ट, नई दिल्ली। 'सिन्धुरी रागिनी' का चित्र किसी समय ८४ पृष्ठों के एक चित्राधार में शामिल था। चित्रकार ने इस चित्र का नाम सिन्धु (सागर) शब्द पर रखा, और उसे एक स्नान-दृश्य में परिणत कर दिया। चित्र में प्रदर्शित स्त्रियां तैरने में निपुण प्रतीत नहीं होतीं, इसीलिए उन्होंने सहारे के लिए खाली मटकों का सहारा ले रखा है। (अगले पृष्ठ पर, बायें)

'अधिकांश 'रागमाला' चित्राधारों के संरक्षक हिन्दू श्रीमन्त तथा धनी व्यापारी थे, जो संगीत, काव्य और चित्रकला के प्रेमी थे। उन्हें इन लघुचित्रों में इन तीनों ही कलाओं की अभिव्यक्ति होती दिखायी दी।'

'रागमाला' चित्रों का चित्राधार तैयार करने का आदेश देने वाले कला-संरक्षक की समझ में आ सके, दरबारी कवि कविताओं का अनुवाद उर्दू या फारसी में भी कर देता था।

इसके अतिरिक्त, चित्रकार अपने संरक्षक सामन्त की धार्मिक रुचियों और उसकी कुलीनता के स्तर का भी ध्यान रखता रहा होगा, और तदनुसार, अपने चित्रों के नायकों को शिव, कृष्ण या विष्णु के अनुरूप ढाल देता, और उनको स्थानीय राजमहल की स्थितियों की याद दिलाने वाले परिवेश में संजो देता रहा होगा। संक्षेप में, अवसरवादी चाटुकारिता का अवलम्बन लेकर, वह अपने संरक्षक का व्यक्तिशः रूप-चित्र बनाये बिना ही, उसके लिए यह सरल कर देता रहा होगा कि वह चित्रित देवताओं और उनके आंशिक दैवी तथा आंशिक अभिजात साज-सिंगार के रूप में अपने को ही चित्रित देख सके।

'रागमाला' के चित्रकार का संगीत-विषयक ज्ञान वैसा ही अपूर्ण होता था, जैसा उसका कविता-विषयक ज्ञान था। वह कोई संगीतज्ञ तो था नहीं; अधिक-से-अधिक वह संगीत-गोष्ठियों का एक अच्छा श्रोता और दर्शक हुआ करता था। अपने चित्र के गौण पात्रों में वह प्रायः संगीतकारों को भी सम्मिलित कर लिया करता होगा और अपने प्रधान पात्र—'राग' या 'रागिनी'—के हाथों में कोई वाद्ययन्त्र, वीणा या तानपूरा, पकड़ा देता होगा। अगर मांग अधिक रहती होगी, तो वह अक्स उतारने वाले कागज पर रंग-चिह्नों से आकृतियों का खाका उतार कर उनके कई-कई 'चरबे' तैयार कर लेता होगा, ताकि उनका कई-कई बार उपयोग करके वह अधिक संख्या में चित्रों का निर्माण कर सके। रूपरेखाओं को बहुधा छिद्रित कर दिया जाता था, ताकि उन पर रंग-चूर्ण छिड़का जा सके—इस क्रिया में रंगीन चूर्ण को किसी कांटे या सुई द्वारा बनाये छिद्रों के ऊपर रगड़ा जाता था, जिससे छन-छन कर चूर्ण चित्र-तल पर आकृतियों की रूपरेखा बना देता था। वनस्पतियों, वेश-भूषाओं और स्थापत्य के सूक्ष्म एवं विस्तृत विवरणों को प्रत्येक चित्र में भिन्न-भिन्न प्रकार से संयोजित किया जाता था, ताकि देखने में चित्र कुछ-कुछ मौलिक और अनूठा लग सके। अनूठेपन का आभास उत्पन्न करने का एक दूसरा सरल ढंग

गौरी रागिनी, जयपुर, १६ वीं शताब्दी। गौरी रागिनी का यह चित्र क्लॉस एबेलिंग की पुस्तक, 'रागमाला पेण्टिंग', में प्रकाशित अनेक चित्रों में एक है। (दायें)

था 'चरखे' को उलट कर प्रयुक्त करना। इस विधि से प्रतीप-दर्पण चित्र-रचना हो जाती थी, और वह पुरोगामी चित्रकार की रचना से बिल्कुल भिन्न दिखायी देती थी। रागों को बिल्कुल नये सिरे से, नयी कल्पना का पुट देकर, नया दृष्टांकन देने की प्रवृत्ति 'रागमाला' के चित्रकार में न थी। इस पद्धति का आश्रय तो वह तभी लेता रहा होगा, जब उसे पूर्व-परम्परा के वारे में कोई भी सुराग हाथ न लगता होगा।

लेकिन, इस शैली के प्रथम चित्रकारों ने चित्रांकन के लिए सुराग कहां से प्राप्त किये थे? स्पष्टतः, 'रागमाला' सम्बन्धी कविता में वर्णित विम्वों से। उन्होंने इन विम्वों को, जहां तक सम्भव हो सका, कृष्ण-लीला, नायिका-भेद और अन्य प्रकार के प्रेम-साहित्य से सम्बद्ध पुराने चित्रों का अनुकरण करके रचित, उनसे एकदम मिलते-जुलते या उनसे सम्बद्ध, चित्रांकनों द्वारा व्यक्त किया।

दूसरी ओर, कवियों ने 'रागमाला' में निहित विचार और कल्पना संगीतज्ञों से प्राप्त की। दो हजार वर्ष पहले, संगीतज्ञ लोग मुख्य तथा गौण रागों को समूहों में वर्गीकृत करके उन्हें रट लिया करते थे, या अपने शिष्यों को सिखा देते थे। इन वर्गों को लोग उस समय भी अपनी

ककुभ रागिनी, दक्षिण भारत, १८वीं ६"×९३"; कला-संग्रह, राजस्थान। एक विरह-विदग्धा, एकाकिनी, अपने विछुड़े हुए प्रियतम से मिलन की आकांक्षा में सँजोये, महल के वाहर उन्मत्त मयूरों के बीच खड़ी है। इस राग का चित्रण प्रायः सर्वत्र एक विरहिणी नायिका के रूप में हुआ है, जो किसी में या अपने महल के प्रांगण में मयूरों के बीच खड़ी प्रियतम से वियोग की दुःखमय घड़ियां व्यतीत रही है। (अगले पृष्ठ पर)

क्लॉस एबेलिंग : एक अभिनन्दन

इस लेख के लेखक, क्लॉस एवेलिंग, एक मूर्तिकार, चित्रकार, भारतीय कला के विद्वान और वाटरटाउन, न्यूयार्क, के जेफर्सन कम्युनिटी कालेज में 'कला एवं कला-इतिहास' विषय के प्रोफेसर हैं। वह **'रागमाला पेण्टिंग'** नामक एक नयी पुस्तक के लेखक हैं, जो १९७३ के अन्तिम चरण में रविकुमार (वेसेलियस प्रेस, सी एच ४००२ वेसेल, स्विट्जरलैण्ड; एवं कुमार गैलरी, ११ सुन्दर नगर मार्केट, नई दिल्ली-३) द्वारा प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में, जिसका आकार १०३"×१२३" है, कुल ३२० पृष्ठ हैं। इसमें ४४६ चित्र हैं, जिनमें से ६० रंगीन और पूरे आकार के हैं। इसमें चित्रकला सम्बन्धी एक शब्दकोश और मूलपाठों के अनुवाद भी दिये गये हैं।

पुस्तक की भूमिका केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार-नियोजन मन्त्री, डा० कर्ण सिंह, ने लिखी है, जो स्वयं भी एक महान् कला-मर्मज्ञ हैं, और जिनकी गणना आज भारत के शीर्षस्थ विद्वानों की कोटि में होती है।

इस ४४-वर्षीय अमेरिकी विद्वान् की विद्वत्ता और कला-मर्मज्ञता की मुक्तकंठ प्रशंसा करते हुए, भूमिका में डा० कर्ण सिंह लिखते हैं:

"आज हम एक ऐसे विश्व में रह रहे हैं, जो मतभेद और संघर्ष से विदीर्ण है। संसार के अनेक भागों में प्रभावकारी आर्थिक विकास के वावजूद, मानव-जाति अभी भी उस सामंजस्यपूर्ण एवं समन्वित एकता से वहुत दूर है, जिसका स्वप्न आदर्शवादी लोग अनादि काल से देखते आ रहे हैं। आज समस्त भूमण्डल परिवर्तन के एक ऐसे दुर्द्धर्ष झंझावात की लपेट में आ गया है, जो चिर-प्रतिष्ठित परम्पराओं को ध्वस्त करता जा रहा है और उनके स्थान पर नयी व्यवस्थाओं के विकास के मार्ग में वाधक सिद्ध हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस झंझावात ने मनुष्य के अन्तरतम में एक गहरा विच्छेद उत्पन्न कर दिया है। वह प्रायः अपने-आप में विभाजित, परस्पर-विरोधी भावनाओं और आदर्शों के कारण विच्छिन्न, प्रतीत होता है। लगता है कि वह त्वरित गति से परिवर्तित हो रहे इस विश्व के स्थिर विन्दु की तलाश में निरन्तर भटक रहा है, फिर भी उसे पाने में असमर्थ है। कला और संगीत की महती भूमिका इसी में निहित है कि वे ऐसी सक्रिय शक्तियां सिद्ध हों, जो आन्तरिक और वाह्य, दोनों ही, प्रकार के सामंजस्य और समन्वय की पुनस्थापना की दिशा में उन्मुख हों, और मानव मात्र के विदीर्ण एवं खण्डित जीवन में सहानुभूति, सौष्ठव और समरूपता का संचार कर उसे सन्तुलित एवं स्वस्थ बनाने में योग दें। महान् कला भाषा और जाति, धर्म और राष्ट्रीयता, की समस्त वाधाओं को लांघ जाती है, और मानव-जाति की मूलभूत एकता का लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में एक प्रमुख शक्ति सिद्ध हो सकती है। इस व्यापकतर सन्दर्भ में ही, मैं विश्व भर के कला और संगीत प्रेमियों को यह परामर्श देने में प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं कि वे इस सुन्दर ग्रन्थ को अवश्य पढ़ें।"

एवेलिंग की व्याख्यात्मक पुस्तक की भूमिका के एक अन्य अंश में, रागमाला-चित्रों को भारत की कला-परम्परा के सन्दर्भ में रखते हुए, डा० कर्ण सिंह ने पुस्तक में सन्निहित विद्वत्ता की सराहना की है:

"भारतीय कला-परम्परा मानव-जाति के इतिहास की प्राचीनतम और अतीव विविधता-पूर्ण परम्पराओं की कोटि में आती है। भारतीय कला की एक उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि प्राचीन यूनान या मिस्र, वेवीलोन या मैक्सिको, की महान् कला-कृतियों के विपरीत, यह एक ऐसी परम्परा का प्रतिनिधित्व करती है, जो आज भी करोड़ों मानव-प्राणियों के जीवन में जीवित और स्पन्दित है। यह भारत का एक विशेष आकर्षक पक्ष है, और इसी कारण भारतीय कला प्राचीन कलाकृतियों के संग्रहालय या इतिहास की शोभा बढ़ाने वाली वस्तु मात्र होने की अपेक्षा कहीं अधिक गहरी दिलचस्पी और आकर्षण की चीज वनी हुई है। प्रस्तुत ग्रन्थ में, भारतीय कला-परम्परा के एक विशेष आकर्षक पक्ष का विवेचन किया गया है। रागमाला-चित्रों में, दो प्रमुख कला-धाराओं—लघुचित्र और शास्त्रीय संगीत—के संगम के दर्शन होते हैं। एक दृष्टि से, कला के सभी रूप व्याख्यात्मक होते हैं, क्योंकि वे सृजन और चिन्तन का जो आनन्द प्रस्तुत करते हैं, वह, अन्ततः, सौन्दर्य की संचेतना के वर्णनातीत रहस्य में प्रतिविम्वित होता है। प्रायः दो या अधिक कला-रूप आपस में संयोजित हो जाते हैं, और एक-दूसरे को समृद्ध बनाते और सम्पुष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय कलाकारों ने रागों को अपने प्रिय विषय के रूप में चुना है। भारतीय संगीत की दो महान् शास्त्रीय परम्पराओं, हिन्दुस्तानी और कर्णाटक, में रागों और उनकी व्युत्पत्तियों को, जिनमें रागिनियां और रागपुत्र (६ पुरुष रागों की संगिनियां और सन्तानें) शामिल हैं, केन्द्रीय महत्व का स्थान प्राप्त है। लघुचित्रों का विकास मुख्यतः उत्तर भारत में हुआ, अतएव रागमाला-चित्र मूलतः हिन्दुस्तानी संगीत-परम्परा से सम्वद्ध हैं, और अत्यन्त कल्पनामय रूपों और रंगों के एक व्यापक दृश्याभास के माध्यम से शास्त्रीय संगीत की विविधतापूर्ण भावदशाओं और विधाओं को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं।

"भारत में लघुचित्रों की परम्परा ऐसी है, जो कई शताब्दियों तक जीवित रही। उसका प्रारम्भ ११वीं शताब्दी में हुआ और उसका तारतम्य सीधे १९ वीं शताब्दी तक वना रहा। वह गुजरात और राजस्थान के मरुस्थली प्रदेशों से लेकर, जम्मू और हिमाचल प्रदेश की हिमाच्छादित पहाड़ियों तक, उत्तर भारत के एक विशाल भाग में प्रचलित रही। इस शैली के कुछ अत्यन्त उत्कृष्ट चित्रों की विषय-वस्तु रागों पर आधारित है। इन चित्रों की कलात्मक विधा और शिल्प ने अगणित विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है, और उनको लेकर काफी चर्चाएं हुई हैं। इस उत्कृष्ट ग्रन्थ में, क्लॉस एवेलिंग ने इस शैली के वहुत से चित्रों का चयन करके उन्हें वड़ी विद्वत्तापूर्ण व्याख्या और कलात्मक विवरण के साथ पुनः प्रकाशित किया है। उनमें से कई के रंगीन चित्र छापे गये हैं। यह एक ऐसी पुस्तक है, जो कला और संगीत के सभी प्रेमियों को आनन्दित करेगी, चाहे उनकी परम्परा जो भी हो और वे कहीं के रहने वाले हों।"

उंगलियों पर उसी तरह गिना करते थे, जैसे आज ताल और लय की गणना की जाती है, या माला के—यह भी तो एक अन्य प्रकार की 'माला' ही हुई!—मनकों के सहारे भगवन्नाम का जप किया जाता है। एक ऐसे क्षुब्ध गुरु की कल्पना करना कठिन नहीं है, जो किसी समय अपने भुलक्कड़ विद्यार्थी को राग-समूहों के विषय में समझाते हुए, उनकी तुलना किसी राजा और उसकी रानियों से करता रहा होगा। इस प्रकार, वह गौण रागों को 'रागिनियां', अर्थात् राग की पत्नियां, नाम दे देता होगा। यह उपमा उस समय सचमुच उपलब्ध भी थी। आखिर, संगीतकारों की तो यह मान्यता थी ही कि उनके संगीत के दो रूप हैं: ध्वनि-रूप और दृश्यमान या शारीरिक रूप। वे प्रत्येक राग का सम्बन्ध एक अधिष्ठात्री देवी से जोड़ते थे और हर संगीत-आयोजन में भाग लेने या संगीत का अभ्यास करने से पहले वे दैवी शक्ति का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उसकी प्रार्थना किया करते थे। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक राग और रागिनी को किसी-न-किसी ऋतुचर्या के साथ सम्बद्ध कर दिया गया था, जैसे वसन्त ऋतु में गायी जाने वाली रागिनी का नाम 'वसन्त' था; वर्षा ऋतु के आगमन पर 'मेघमल्हार' या ब्राह्म मुहूर्त्त में 'ललित' गाया जाता था। जिन राग-रागिनियों को आज शास्त्रीय संगीत-गोष्ठी का श्रृंगार माना जाता है, उनका प्रादुर्भाव किसी क्षेत्र-विशेष के लोकगीत से (जैसे कि 'गूजरी' गुजरात से); या गदरायी फसल को हिरणों द्वारा चरे जाने से बचाती हुई कृषक-बालाओं के गीतों के रूप में (जैसे कि 'टोड़ी'); या सावरी नामक पर्वतीय आदिम जाति के संपेरों की धुन के रूप में (जैसे कि 'आसावरी') हुआ था। इस प्रकार, एक 'रागमाला' साधारणतया ३६ रागिनियों की कड़ी बन गयी, जिसे ६ राग-परिवारों में वर्गीकृत कर दिया गया; प्रत्येक परिवार का मुखिया एक राग होता था, जिसे वर्ष की ६ भारतीय ऋतुओं में से किसी एक ऋतु के साथ सम्बद्ध किया गया था।

लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व, कविता को विशेष लोकप्रियता प्राप्त थी; यहां तक कि सुसंस्कृत एवं कलानुरागी शासक भी एक कला के रूप में इसका अभ्यास करते थे। धार्मिक और लौकिक, दोनों ही, प्रकार की विषय-वस्तुएं, समान रूप से, पद्य में भली प्रकार अभिव्यक्त की जाती थीं। हिन्दू लोग अपने महाकाव्यों और पौराणिक आख्यानों में रस लेते थे; धर्मपरायण जैन लोग **'कल्पसूत्र'** की प्रतियों का संग्रह करते-फिरते थे; मुसलमान लोग साहस और जोखिम की कहानियां तथा प्रेमगाथाएं रचने में हिन्दुओं से होड़ कर रहे थे। इसमें कोई विशष आश्चर्य नहीं कि नयी विषय-वस्तुओं की खोज करते हुए, कवियों ने संगीतज्ञों द्वारा पुराने रागों में निवद्ध स्तोत्रों को पुन: नये शाब्दिक परिधान में आभूषित किया, और उन राग-रागिनियों को अपने श्रोताओं की जीवन-पद्धति के विशिष्ट दृश्यों, मनोदशाओं, क्रियाकलापों और रोमानी स्थितियों (काम-दशाओं) में संजोकर दाम्पत्य की अभिजात तथा दैवी धारणाओं से विजड़ित किया। वे राग-रागिनियों में निवद्ध अपनी कविताओं को रात में अलाव तापते लोगों के बीच गाकर सुनाते थे; उन्हीं गोष्ठियों में, दरवारी इतिहासकार या चारण भी अपनी वीररस की रणगाथाओं का पाठ करते थे। कदाचित् दरवारी कवियों की भावी पीढ़ियों के लाभार्थ वे इन कविताओं को तालपत्रों पर भी लिख छोड़ते थे, हालांकि वे तालपत्र काल-प्रवाह में कब समा गये, कुछ पता नहीं।

जब १५वीं और १६वीं शताब्दी में, फारस से भारत में कागज तथा लघुचित्रों का आयात किया जाने लगा, तब लघुचित्र-कला एक प्रमुख भारतीय कला बन गयी और उसे बहुत लोकप्रियता मिली। जिस प्रकार किसी समय कवियों ने सोचा था कि संगीतकारों के स्तोत्रों को अभिव्यक्त करने के लिए वे उनसे अधिक प्रशिक्षित और पटु हैं, उसी प्रकार अब चित्रकारों ने रागमाला काव्य में सन्निहित कल्पनाओं को अपना लिया और उन्हें चित्रकला के रूप में वस्तुत: दृश्यमान बना दिया।

'रागमाला' चित्रों के चित्राधार आज भी उन परिवारों की सम्पत्ति हैं, जिनके पूर्वजों ने उनका निर्माण कराया था। परन्तु, अब धीरे-धीरे इन चित्रों तक जनता की पहुंच होती जा रही है; भारत, यूरोप और अमेरिका के संग्रहालयों तथा निजी कला-संकलनों में ये चित्र देखे जा सकते हैं।

वह कौन सी विशेषता थी, जिसने प्रारम्भिक संरक्षक या आश्रयदाता को इस विषय-वस्तु की ओर आकृष्ट किया? बात यह है कि अधिकांश 'रागमाला' चित्राधारों के संरक्षक हिन्दू श्रीमन्त तथा धनी व्यापारी थे, जो संगीत, काव्य और चित्रकला के प्रेमी थे। उन्हें लघुचित्रों में इन तीनों कलाओं की अभिव्यक्ति होती दिखायी दी। शाही दरवार में लघुचित्रों पर जो ध्यान दिया जा रहा था, उससे स्पर्द्धा करते हुए, मुगलों के पक्षधर हिन्दू राजाओं ने भी इस कला को संरक्षण प्रदान किया—विभिन्न स्थानीय चित्र-शैलियों पर पड़े सशक्त मुगल-प्रभाव से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है। जो हिन्दू मुगल-विरोधी थे, उनको 'रागमाला' चित्रों की विशुद्ध देसी, हिन्दू, विषय-वस्तु में संतोष और एक प्रकार का राष्ट्रप्रेम-जनित सुख प्राप्त होता था।

परन्तु, सबसे महत्व की बात यह थी कि 'रागमाला' नारियों की प्रिय कला थी। अपने योद्धा या व्यापारी पतियों से वियुक्त होकर, वे प्रति वर्ष पर्याप्त लम्बी अवधियों तक घर में अकेली रहा करती थीं। वियोग की उस अवधि में, 'रागमाला' उनके प्रणय-बन्धन तथा पातिव्रत का सुसंस्कृत एवं सुरुचिपूर्ण अनुस्मारक बन जाती थी। इन विरह-विदग्धा नारियों को इन चित्रों में पत्नी-जीवन के उसी रोमानी और पवित्र रूप के दर्शन होते थे, जिसे पति अपनी पत्नियों में देखते थे या देखना चाहते थे। अपने पातिव्रत धर्म का निर्वाह करने के लिए इन धनी स्त्रियों को अपने परिपक्व यौवन में दीर्घकाल तक संयम और इन्द्रिय-निग्रह से परिपूर्ण जो जीवन व्यतीत करना पड़ता था, उसके बदले समाज-स्वीकृत कल्पना के स्तर पर

'१६वीं शताब्दी में, यूरोपीय 'सभ्यता' के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण 'रागमाला' चित्रकला एक जीवन्त कला नहीं रह गयी थी।'

मारू रागिनी, मेवाड़, १६५०; ५"×७"; नैशनल म्युजियम, नई दिल्ली। मारू उन ६ नामों में से एक है, जिन्हें मेवाड़ के कलाकारों ने ४२ पर्णकों का एक चित्राधार तैयार करने के लिए सामान्य तौर पर प्रयुक्त ३६ नामों में जोड़ दिया था। इस चित्र का दृश्य ढोला और मारू की लोकप्रिय प्रेमकथा पर आधारित है, जो कड़े विरोधों के बावजूद, एक अन्धे, किन्तु चतुर, ऊंट की सहायता से एक-दूसरे से मिलने में सफल हो गये हैं। (अगले पृष्ठ पर)

॥मारूरागिणी॥हस्तालिंगितपार्श्वस्थप्रियाचुंबनमानसः॥उष्ट्रारोहि विह
॥त्तास्थो मारुरागो प्रदाव्रजन॥६२॥
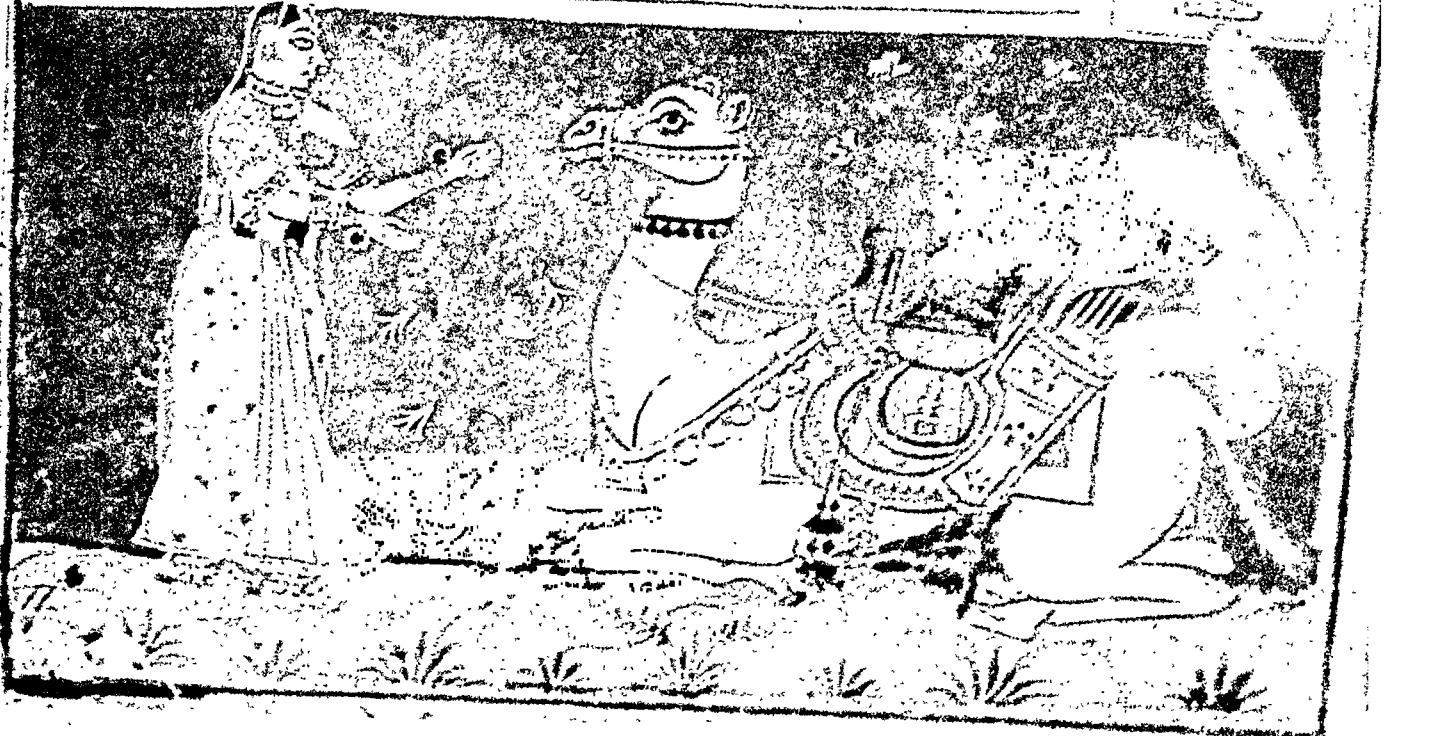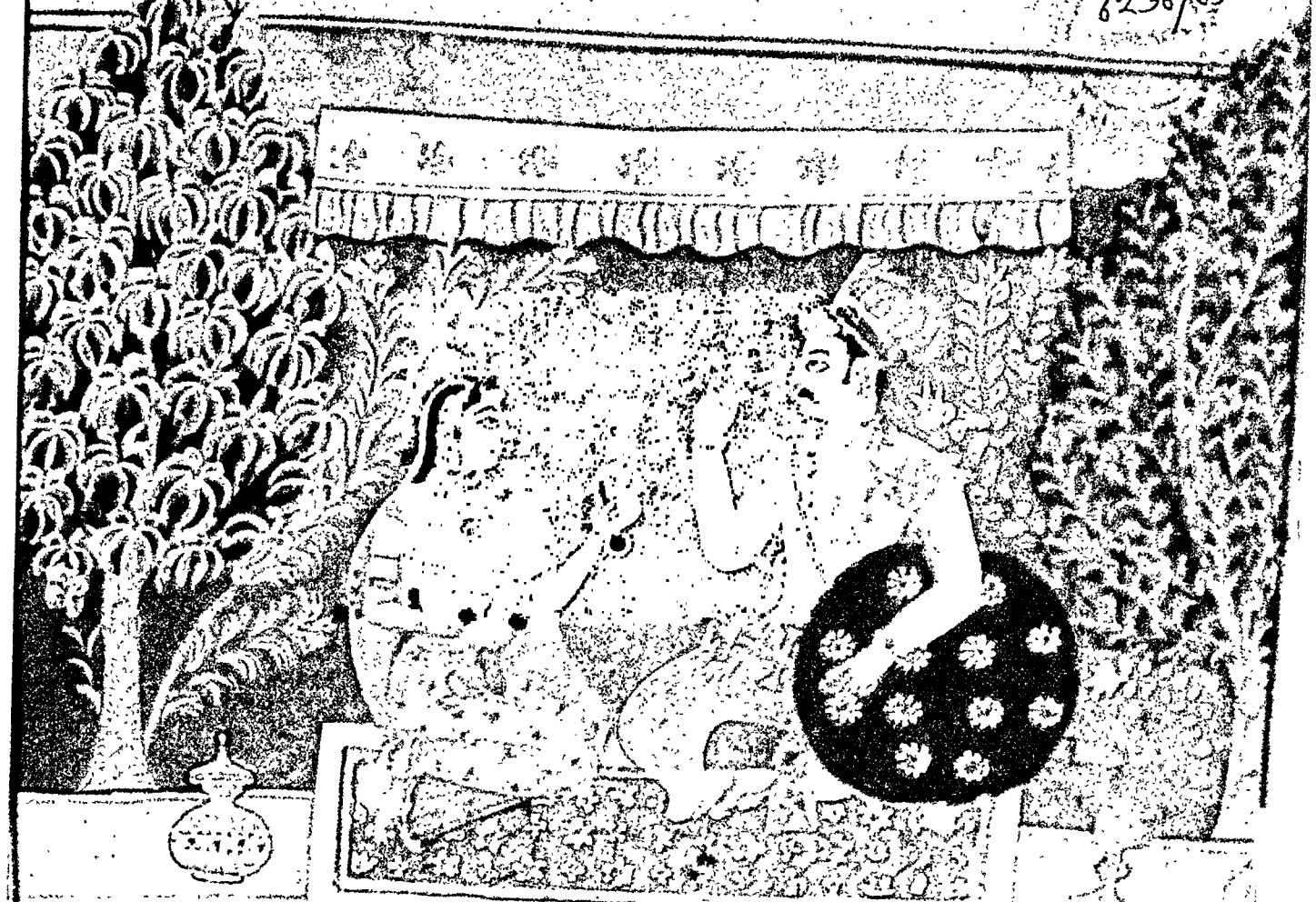
यह चित्रमाला, वस्तुतः, उनकी यौन भावना का ही प्रच्छन्न प्रतिनिधित्व करती थी।

'रागमाला' चित्रों में जिस विषय-वस्तु का सबसे अधिक और बहुधा चित्रण किया गया, वह थी एकाकिनी विरहिणी नायिका—वियोग श्रृंगार। 'रागिनी' के रूप में, वह विरह की अवधि को अपने पति का रूप-चित्र अंकित करती हुई ('धनश्री रागिनी'); सम्भवतः किसी प्रणय-सन्देश की प्रतीक्षा में, कमल की पंखुरियाँ चुनती हुई ('मालश्री'); मयूरों ('ककुभ') या हिरणों ('टोड़ी') से घिरी वन में भटकती हुई; अपने पति के सुरक्षित घर लौट आने के लिए भगवान् शिव से प्रार्थना करती हुई ('भैरवी'); या ब्रह्म के आगे वलि चढ़ाती हुई ('खम्भावती'); इन प्रार्थनाओं की तीव्रता के कारण आदर्श पत्नी पार्वती की भांति तपस्विनी वनती हुई ('देवगांधार', 'वंगाली', 'कामोद', 'सेतमल्हार'); और, अन्त में, अपने पति के आसन्न प्रत्यावर्तन का संवाद सुन कर फूलदान में फूल सजाती हुई ('गुणकली') तथा परम्परागत नौ आभूषणों को धारण करती हुई ('विलावल') अपने वियोग की घड़ियों को किसी तरह काटती है।

विरहिणी नायिका के वाद, जिस विषय-वस्तु का वार-वार चित्रण मिलता है, वह है संयोग श्रृंगार। जब नायक लौट कर घर आता है, तव पहले तो नायिका उससे रूठने का अभिनय करती है, क्योंकि वह विलास के लिए अनिच्छुक दिखायी देता है और उसके तन पर कुछ ऐसे प्रणय-चिह्न दिखायी दे जाते हैं, जो यह भेद खोल देते हैं कि नायक इससे पूर्व किसी दूसरी स्त्री से रमण करके आ रहा है ('रामकली'); परन्तु, उसके पश्चात्, नृत्य करके ('वसन्त', 'मेघ मल्हार'), हिंडोले पर झूल कर ('हिण्डोल'), संगीत-गोष्ठी के आयोजन द्वारा ('श्री', 'मालकोश'), प्रणयोन्मादक रात्रि के लिए तैयारी करके ('वैरागी', 'मालवी', 'दीपक') पुनर्मिलन का आनन्द मनाया जाता है। उसके वाद जो कुछ होता है, उसका चित्रण चित्रकार संकोचवश नहीं करता, परन्तु कल्पना करने के लिए पर्याप्त संकेत दे देता है। उषा काल का आगमन रति-क्रीड़ा के अन्त की सूचना देता है ('विभास')। नायक अपने हाथों में पुष्पमालाएं लिये हुए अनिच्छापूर्वक रंग-कक्ष से वाहर जाता है—उसकी प्रिया अव भी सो रही होती है।

राजस्थान, गंगा की घाटी वाले प्रदेश और दक्षिण में रचित चित्रों में इन सभी चित्र-विषयों का समावेश हुआ है। उनका चित्रांकनीय मूलस्रोत एक अकेली कविता में मिलता है, जिसका रचयिता कश्यप नामक एक अपेक्षाकृत अज्ञात कवि है, जो कदाचित् १५वीं शताब्दी में या १६वीं शताब्दी के आरम्भ में कभी हुआ होगा। निस्सन्देह, कश्यप ने अपनी कविता के भाव अपने से भी हजार वर्ष पहले के किन्हीं स्रोतों से ग्रहण किये होंगे। 'रागमाला' शैली के जो भी चित्र कराल काल के थपेड़ों में नष्ट होने से वच गये हैं, उनमें से लगभग ८० प्रतिशत उस परम्परा से सम्वद्ध हैं, जिसे मैंने 'राजस्थानी परम्परा' नाम दिया है।

१७वीं और १८वीं शताब्दी में, 'रागमाला' चित्रों की चित्रकला-सम्वन्धी एक अन्य परम्परा या 'कलम' के दर्शन होते हैं; यह परम्परा आमेर से आरम्भ हुई थी। इसमें भी ६ 'रागों' और ३० 'रागिनियों' का चित्रांकन किया गया था।

१६वीं शताब्दी में, रीवां (बुन्देलखण्ड) दरवार में रहने वाले एक ब्राह्मण ने, जिसका नाम मेषकर्ण था, एक और 'रागमाला' कविता लिखी थी, जिसमें उसने ४८ रागपुत्रों का वर्णन किया है। परन्तु मेषकर्ण के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है कि केवल कुछ ही 'रागमालाएं' उत्तरी भारत के मैदानी भागों और उपर्युक्त क्षेत्रों में चित्रित हुईं, क्योंकि ८४ या उससे भी अधिक चित्रों का चित्राधार तैयार कराना अधिकांश कला-संरक्षकों के साधन और धैर्य की सीमा से परे रहा होगा। फिर भी, इतना निश्चित है कि इन कुछ में ही वह चित्राधार भी शामिल है, जो 'रागमाला' चित्रों के ज्ञात चित्राधारों में सवसे वड़ा है। एक समय तो इसमें २५१ पर्णक थे। इसे १७६८ में कोटा में चित्रित किया गया था। इन चित्रों का चित्रकार डालू नामक एक कलाकार था। वह कल्पना-शक्ति का कितना धनी और कितना कुशल चितेरा रहा होगा, इसका अनुमान केवल इसी वात से लगाया जा सकता है कि उसने ८४ 'रागों' और 'रागिनियों' तथा 'रागपुत्रों' की श्रृंखला में ६० 'रागपुत्रियों' और ६६ 'राग-पुत्रवधुओं' को भी जोड़ दिया। साथ ही, उसने संगीत-स्वरों के ६ प्रतिचित्र प्रस्तुत किये, आवरण-पृष्ठ वनाये और चित्रपृष्ठों को अलंकृत किया (ये चित्र 'सरस्वती भण्डार', उदयपुर, के संकलन में सुरक्षित हैं)।

फिर भी, वसौली (जम्मू-कश्मीर) और कांगड़ा से लेकर टिहरी-गढ़वाल तक के पहाड़ी क्षेत्र में चित्रित सभी 'रागमालाओं' का मुख्य स्रोत मेषकर्ण की कविता ही थी। स्पष्ट है कि पहाड़ी चित्रकारों के पास ८४ पर्णकों वाले चित्राधार तैयार करने का न केवल अवकाश था, वल्कि उन्हें प्रोत्साहन तथा संरक्षण देने वाले आश्रयदाता भी थे। उन्होंने चित्रों की सहायता से 'रागिनियों' को प्रतिमूर्त करने की अरोचक कला को रोचक एवं आकर्षक बनाने के लिए कुछ विदग्ध, सुकल्पित, विधियों का प्रयोग किया; जवकि राजकुल की नारियों के तौर-तरीकों से कुछ-कुछ अपरिचित होने के कारण मेषकर्ण ने 'रागों' और 'रागपुत्रों' को एक भिन्न, विशिष्ट, रीति से चित्रांकित करने पर वल दिया था। कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें इन पहाड़ी चितेरों ने संगीतपरक नाम की ध्वनि से श्लेषार्थ निकालने की चेष्टा की थी। 'सिन्धुरी रागिनी' के चित्र में जलक्रीड़ा करती हुई कुमारियों का चित्रण हुआ है; 'कुंकुनी रागिनी' एक ऐसी नारी के रूप में चित्रित हुई है, जिसने हाथ में एक कुक्कुट ले रखा है; 'चन्द्र-पुत्र' में एक चन्द्र-पूजक को प्रतिमूर्त्त किया गया है; 'भास्कर-पुत्र' को प्रतिमूर्त्त करने में सूर्योदय के समय एक कृषक दम्पत्ति को गोदोहन करते दिखाया गया है; 'हर्ष-पुत्र' के चित्र में एक नव-दम्पत्ति को ताम्वूल-सेवन करते चित्रित किया गया है; और 'विनोद-पुत्र' में एक भद्रजन को दो कामिनियों का आलिंगन करते प्रदर्शित किया गया है। 'रागमाला' चित्रों के कुछ अन्य नमूनों में, चित्रकारों ने मेषकर्ण की एक दूसरी कविता का उपयोग किया था, जिसमें उसने संगीत की प्रत्येक राग-रागिनी को किसी पशुस्वर, प्राकृतिक ध्वनि या मानवीय क्रिया के साथ सम्वद्ध कर दिया है। इस प्रकार, एक विल्ली को 'पातमञ्जरी रागिनी' का अनुसरण करते दिखाया गया है; 'आभीरी रागिनी' सर्पों को दूध पिलाती है; कुरंग 'गूजरी रागिनी' का गायन सुनते हैं; एक श्वान 'सवेरी रागिनी' के साथ खेलता है, और 'सारंग रागिनी' दधिमंथन करती है।

* * * * *

१६वीं शताब्दी में, यूरोपीय 'सभ्यता' के बढ़ते हुए प्रभाव, सामन्ती व्यवस्था और संस्कृति में क्रमागत गिरावट, सामान्य रूप से सभी परम्परागत कलाओं के अभ्यास में होने वाले ह्रास तथा कतिपय अन्य कारणों से 'रागमाला' चित्रकला एक जीवन्त कला नहीं रह गयी थी।

२०वीं शताब्दी में, दृश्य एवं अभिनेय कलाओं की अनेक परम्परागत विधाओं की ओर विश्व भर के विद्वानों, कलानुरागियों और भारत-मित्रों का ध्यान अधिकाधिक आकृष्ट होने लगा था। इन विधाओं और भारत के भीतर राष्ट्रवाद की उद्वुद्ध चेतना को रवीन्द्रनाथ ठाकुर और आनन्द के० कुमारस्वामी जैसे भारतीय संस्कृति एवं उत्तराधिकार के अग्रणी प्रवक्ताओं से महत्वपूर्ण मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ।

इस सामान्य प्रवृत्ति के साथ ही, उन 'रागमाला' चित्रों का भी महत्व और दुर्लभता वढ़ गयी है, जो प्रकीर्ण या चित्राधार के रूप में, काल-प्रवाह के थपेड़े झेलकर वच रहे हैं। यद्यपि उनके शनैः-शनैः विलुप्त होते जाने का एक वड़ा कारण उनकी भौतिक सुकुमारता रही है और रहेगी, तथापि संग्रह और विपणन की त्रुटिपूर्ण विधियों के कारण भी इन चित्रों के कई नमूने प्राप्त होंगे, और फिर विलुप्त हो जायेंगे। हमें आशा करनी चाहिए कि विश्व की कलानिधि में भारतीय कलाकारों के इस अनुपम योगदान को सुयोग्य और उत्तरदायी संस्थाएं तथा व्यक्ति हमारे लिए संभाल कर रखेंगे। ■■

राजा राव की दृष्टि में अमेरिका
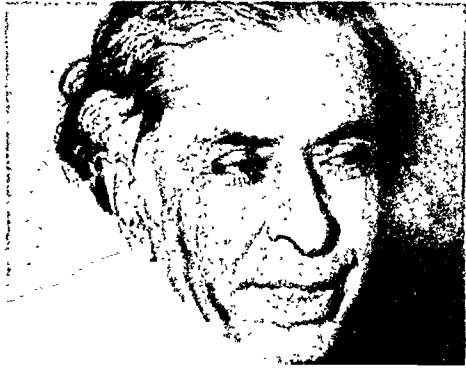
विख्यात भारतीय दार्शनिक, राजा राव, का विश्वास है कि अमेरिकी युवजन अपने सत्यान्वेषण की प्रक्रिया में भारतीय विचारधारा के बहुत समीप हैं। वह कहते हैं: "अमेरिका के पास अकूत वैभव है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि एक बार इस राष्ट्र ने अपनी आत्मा को पहचान लिया, तो उसकी महानता में चार चांद लग जायेंगे। अमेरिका में एक महान् सभ्यता का अभ्युदय हो रहा है—एक ऐसी सभ्यता का, जो मानव की सर्वोत्कृष्ट विभूतियों की सच्ची अभिव्यक्ति होगी।"

एलिज़ाबेथ वोहल

छायाकार : फ्रैंक वोहल

भारत के यशस्वी उपन्यासकार एवं दार्शनिक, राजा राव, अमेरिका में एक ऐसे नवजागरण के अभ्युदय की कल्पना करते हैं, जो एक नूतन सभ्यता को जन्म देगा—एक ऐसी सभ्यता को, जिसकी गणना विश्व की सर्वोत्कृष्ट सभ्यताओं में की जायेगी।

आज, जब अमेरिका अपने राष्ट्रीय जीवन की तीसरी शताब्दी में प्रवेश कर रहा है, राजा राव का पूर्वानुमान है कि १९वीं शताब्दी में जिस तरह की कलात्मक और दार्शनिक उपलब्धि की लहर न्यू इंग्लैण्ड में आयी थी, कुछ उसी से मिलता-जुलता एक आध्यात्मिक और बौद्धिक जीवन अमेरिका में भी 'पल्लवित-पुष्पित' होगा। इमर्सन, लांगफेलो और थोरो की सन्तानें, ये अमेरिकी, अपने परम्परागत उत्तराधिकार का पुनर्ग्रहण करने ही वाले हैं।

वाशिंगटन, डी० सी०, के 'वुडरो विल्सन अन्तर्राष्ट्रीय मनीषी केन्द्र' में स्थित सादी साज-सज्जा वाले अपने कार्यालय में, एक साक्षात्कार के दौरान, राजा राव ने हाल ही में कहा था : "मेरा विश्वास है कि सच्चा अमेरिकी चरित्र तो अब उभर रहा है। एक मूलतः नये प्रकार का मानव विकसित हो रहा है। वह एक ऐसा मानव है, जिसकी रुचि भौतिक पदार्थों की अपेक्षा विचारों में अधिक है; जिसमें मतान्ध नैतिकता अपेक्षाकृत कम और विशुद्ध आचारिकता अधिक है; और जो अनिवार्यतः विध्वंसक न होते हुए भी, स्वभाव की दृष्टि से अधिक अराजक है।"

यह मूल्यांकन किया गया है एक ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो गूढ़ एवं प्रखर बौद्धिक प्रतिभा का धनी है, जिसे उपन्यासकार शान्ता राव ने 'आधुनिक भारत का कदाचित् अधिकतम प्रतिभावान—और, निश्चय ही, सर्वाधिक रोचक—लेखक' कहा है। **'दि सरपेण्ट ऐण्ड दि रोप'** नामक अपने उपन्यास के लिए साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत, राजा राव की सर्वत्र सराहना हुई है और उनके प्रशंसकों में एण्ड्रे मालरो और लारेन्स ड्यूरेल जैसे कितने ही अग्रणी पाश्चात्य साहित्यकार भी शामिल हैं।

राजा राव को अतिशय प्रतिष्ठा प्राप्त है, किन्तु वह आश्चर्यजनक रूप से लघुकाय व्यक्ति हैं। हल्के-फुल्के, मुश्किल से पांच फुट लम्बे
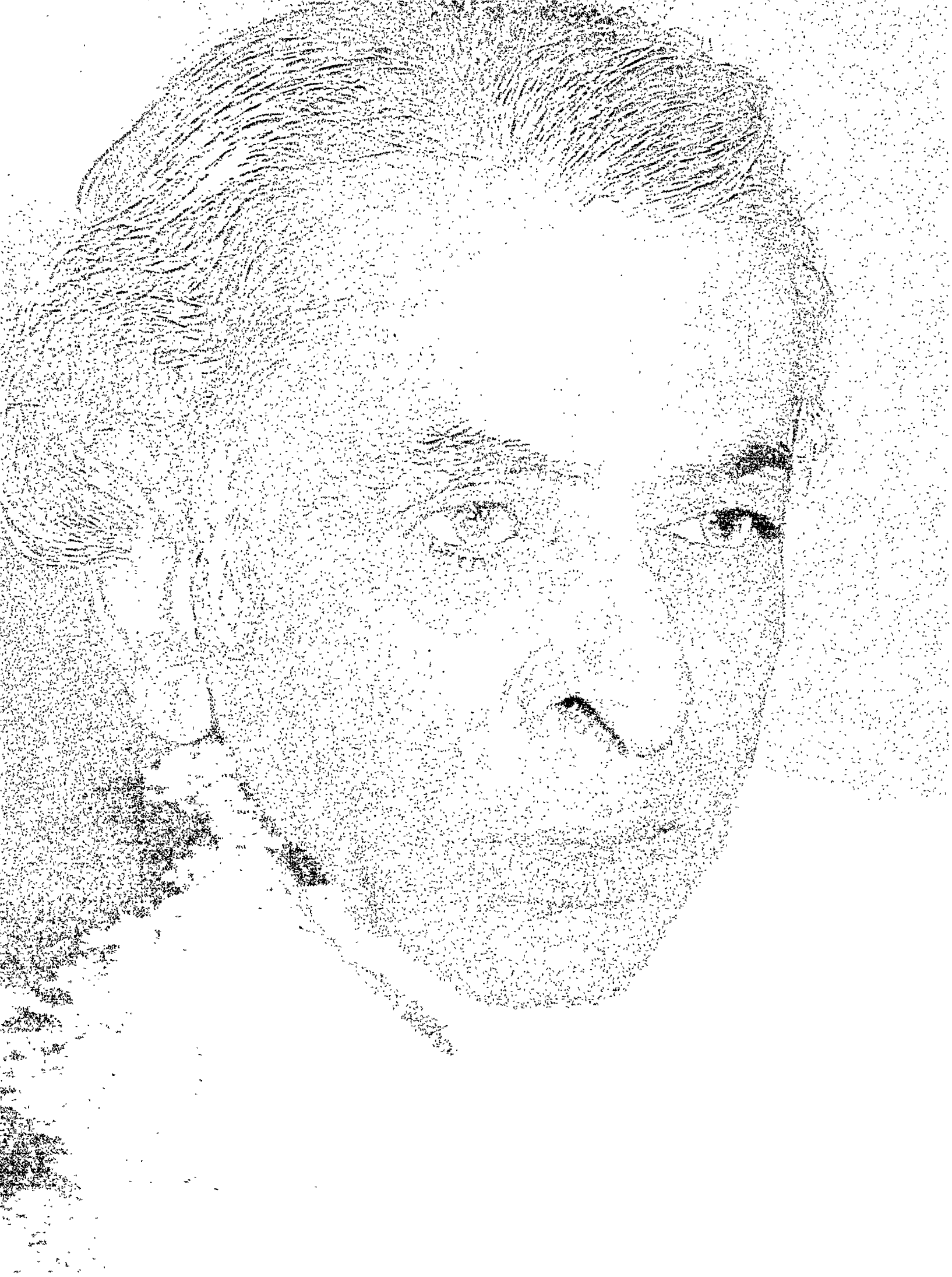
हैं वह। लेकिन ललाट से पीछे की ओर संवारे गये घने श्वेत केश से शोभित अपने विशाल एवं तेजोद्दीप्त मस्तिष्क तथा असाधारण रूप से भावपूर्ण मुखमण्डल के कारण वह देखने में लघुकाय नहीं प्रतीत होते। उनकी मुखाकृति से आभिजात्य टपकता है। प्रत्येक स्थिति में, चाहे वह ध्यानपूर्वक, बड़े मनोयोग से, किसी की बात सुन रहे हों, किसी समस्या पर एकाग्रचित्त होकर गम्भीर चिन्तन कर रहे हों, अथवा किसी विशेष वाक्पटुतापूर्ण उक्ति पर मन-ही-मन प्रसन्नता से मुस्करा रहे हों, उनकी मुखमुद्रा उनकी मनोदशा को सशक्त रूप से अभिव्यंजित कर देती है।

राजा राव को अपने बौद्धिक जीवन में, अपने चिन्तन-मनन के क्षणों में, किसी प्रकार का विक्षेप पसन्द नहीं। ऐसे समय में, यदि कोई उनसे मिलने आ जाये, तो वह शील-संकोच को परे हटा कर आगन्तुक से साफ कह देंगे कि वह नहीं मिल सकते, क्योंकि वह 'चिन्तन कर रहे हैं।' लेकिन टेक्सास विश्वविद्यालय में, जहां वह दर्शनशास्त्र के अतिथि-प्राध्यापक हैं, वह विद्यार्थियों के साथ अपने धैर्य प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध हैं। अपने विद्यार्थियों के सम्मुख वह घण्टों अपने विचारों की, जिनमें नये अमेरिका के बारे में उनके स्वप्न भी सम्मिलित हैं, व्याख्या करते नहीं थकते।

राजा राव ने अपनी स्मृति को कुरेदते हुए, कहा: "मैं पहले-पहल १६५० में अमेरिका आया, क्योंकि फ्रांस में मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा था कि अमेरिका महत्वपूर्ण होता जा रहा है। उस समय भी इस देश ने मुझ पर गहरी छाप छोड़ी थी। मुझे इसकी महानता का बोध हो चुका था और मैं ऐसा अनुभव करने लगा था कि यहां कुछ भी असम्भव नहीं है; यहां प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता और क्षमता प्रदर्शित करने का अवसर मिल सकता है।"

उन्होंने आगे कहा: "लेकिन सच कहूं तो तब मुझे यह देश बौद्धिक दृष्टि से स्फूर्तिप्रद या उत्तेजक नहीं लगा था।" उन्होंने बताया कि उन दिनों विश्वविद्यालयों में भूतपूर्व सैनिकों की भरमार रहा करती थी। द्वितीय महायुद्ध के कारण उनकी शिक्षा का जो सिलसिला टूट गया था, उसको जोड़ने की वे कोशिश कर रहे थे। अभाव और तंगी का जीवन बिताने और कष्ट झेलने के बाद, अब ये लोग सुरक्षा तथा सुविधा पाने के लिए लालायित थे। लेकिन अपने जीवन में सामान्यता और सुव्यवस्था लाने के लिए उनके इस आग्रह में भारतीय दार्शनिक को कोई दिलचस्पी न थी।

परन्तु, एक दशाब्द से कुछ अधिक समय के बाद, जब उन्होंने दर्शनशास्त्र के अध्यापन के लिए टेक्सास विश्वविद्यालय का प्रस्ताव स्वीकार किया ("मेरी पहली नौकरी थी वह," विनोद में उन्होंने कहा।) और पुन: अमेरिका आये, तब उन्होंने अमेरिकी युवकों को मानसिक उद्वेलन की स्थिति में पाया। उन्होंने कहा: "अमेरिका के युवक सम्भवत: आज संसार के अधिकतम कुतूहलजनक युवजन हैं। मैं अपने छात्रों पर मुग्ध हूं—वे स्पष्टवक्ता हैं, तो साथ ही गम्भीर भी हैं।"

राजा राव को विश्वास हो चुका है कि अमेरिका के अग्रणी युवा-वर्ग की रुचि मुख्यत: दार्शनिक सत्य की खोज में है। वह विपुल वैभव और समृद्धि के प्रति अमेरिकी युवकों की उदासीनता और आधारभूत मान्यताओं के अनुसार जीने की उनकी उत्कण्ठा की सराहना करते हैं।

त्वरित इंगितों एवं भंगिमाओं से अपनी बात पर बल देते हुए, राव ने कहा: "अमेरिकी लोगों को भौतिकवादी माना जाता है, लेकिन वे, निश्चय ही, ऐसे नहीं हैं। अमेरिकावासी अभौतिक होता है। उसकी रुचि केवल जीवन के सारतत्वों में होती है। यही कारण है कि वह भोग्य वस्तुओं का इतनी शीघ्रता और सहजता से परित्याग कर देता है।"

लेकिन, राव के इस कथन को चुनौती देते हुए, उनसे पूछा गया: क्या यह सही नहीं है कि अमेरिकी लोग सम्पत्ति का परित्याग इतनी सरलता से इसलिए कर देते हैं कि वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, और जब चाहें, नयी वस्तुएं प्राप्त कर सकते हैं?

राव ने तपाक से उत्तर दिया: "नहीं, बिल्कुल नहीं। यह बात इससे कहीं अधिक जटिल है। जब अंग्रेज धनी थे, तब वे वस्तुओं से प्यार करते थे और उन्हें अपनी सम्पत्ति की चिन्ता रहती थी। लेकिन अमेरिकी युवकों को मूलत: धन-दौलत में कोई दिलचस्पी नहीं होती। निस्सन्देह, वे आराम से जिन्दगी बिताना चाहते हैं, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि वे जीवन के स्वरूप को उत्कृष्ट बनाने, उसकी गुणवत्ता को विकसित करने, की ओर अधिक ध्यान देते हैं। वे जीने को महत्व देते हैं। उनकी रुचि अस्तित्व का आनन्द प्राप्त करने में है।" पुस्तकों से लदी अपनी मेज के पार बैठे, मुस्कराते हुए, उन्होंने कहा: "उन्हें तो अब केवल जीने की कला सीखनी है।"

अमेरिकी लोगों की स्वाभाविक अभौतिकता एवं दार्शनिक प्रवृत्ति का और अधिक प्रमाण देते हुए, राजा राव ने अमेरिकी साहित्य की ओर संकेत किया। उनकी दृष्टि में, राल्फ वाल्डो इमर्सन, हेनरी डेविड थोरो और वाल्ट ह्विटमैन ऐसे लेखक थे, जो दार्शनिक सत्य की खोज में भौतिक चिन्ताओं से ऊपर उठे थे। वह मानते हैं कि यह मात्र एक संयोग नहीं है कि अमेरिकी साहित्य की यह त्रिमूर्ति भारतीय विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित थी।

राव ने कहा: "जिसे अमेरिका को जानना हो, वह ह्विटमैन को अवश्य पढ़े। अपने साहित्य में ह्विटमैन उसी अमेरिका को टटोल रहे थे, जिसका विकास आज हो रहा है। वह इस देश के चरित्र को बड़ी गहराई से समझते थे।" उन्होंने कहा कि औद्योगीकरण की अवधि में अमेरिकी लोगों की दार्शनिक प्रवृत्ति कुछ दब सी गयी। राव, जिनका मैसूर-स्थित ब्राह्मण परिवार अपनी पाण्डित्य-परम्परा को तीन सौ वर्षों से भी अधिक प्राचीन मानता है, अधिकांश अमेरिकी जनता की भौतिक दशा को समुन्नत करने के लिए किये गये भगीरथ प्रयत्न को एक 'दुर्घटना' मानते हैं।

उन्होंने कहा: "एक पीढ़ी पूर्व के आपके पूर्वजों की तुलना में अमेरिकी लोकतन्त्र की स्थापना करने वाले 'फाउण्डिंग फादर्स' की प्रवृत्ति बहुत-कुछ हिप्पियों जैसी थी। टामस जैफर्सन के युग में, लोगों को वस्तुओं की, भौतिक पदार्थों की, उतनी चिन्ता नहीं थी, जितनी जीवन-पद्धति की उत्कृष्टता की थी। वे प्लेटो,

अरस्तू और सिसरो के ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। वह प्रवृत्ति अमेरिका में आज भी है, परन्तु १८९० से लेकर १९५० तक की पीढ़ियों में वह उभर कर सामने नहीं आयी। असल में, वे अमेरिका की दिग्भ्रमित पीढ़ियां थीं।"

उन्होंने अन्त में कहा : "आज का अमेरिका १८वीं शताब्दी के उन फ्रांसीसी दार्शनिकों के लिए एक सही उत्तर है, जो समृद्धि, समानता तथा स्वतन्त्रता के पोषक थे। अमेरिका में ये तीनों ही बातें हैं, लेकिन हम जानते हैं कि ये ही सब-कुछ नहीं हैं।"

राव के कथनानुसार, यह स्वयंसिद्ध सत्य कि मनुष्य केवल रोटी के सहारे ही नहीं जीता, अमेरिका में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला रहा है। उन्होंने कहा : "अमेरिका में अतुल ऐश्वर्य है, परन्तु अब वह अन्तर्मुखी हो रहा है, क्योंकि सच्चा ऐश्वर्य तो सदा मनुष्य के अन्तःकरण में मिलता है। अमेरिका को अपने आत्म-लोक में वापस जाना होगा, और वह अपने आत्म-लोक में वापस जा भी रहा है। एक बार यदि इस राष्ट्र ने अपनी आत्मा को पहचान लिया, तो यह सचमुच एक गौरवशाली राष्ट्र बन जायेगा। अमेरिका में एक परमोत्कृष्ट सभ्यता का निर्माण हो रहा है। निस्सन्देह, प्रत्येक उत्कृष्ट सभ्यता की भांति, यह भी मानव की योग्यता और क्षमता की सच्ची अभिव्यक्ति बन जायेगी।"

राजा राव का विश्वास है कि जिस अमेरिकी क्रान्ति की भविष्यवाणी वह कर रहे हैं, वह कोई कपोल-कल्पना नहीं है; उसके लिए यथार्थ वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियां विद्यमान हैं। उन्होंने हाल में हुए पारिस्थितिकी सम्बन्धी कुछ अध्ययनों की ओर संकेत करते हुए, कहा कि ये अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि भौतिक सम्पदा का अर्जन अबाध रूप से जारी नहीं रह सकता, क्योंकि पृथ्वी पर इसके लिए पर्याप्त साधन-स्रोत उपलब्ध नहीं हैं। उन्होंने कहा : "सही अर्थ में, प्रत्येक व्यक्ति को मनचाही वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि इतनी वस्तुएं हैं ही नहीं, जो सबको यथेच्छ उपलब्ध हो सकें। मनुष्य को अपनी संतुष्टि के लिए अन्य उपायों का आश्रय लेना होगा।"

राजा राव का विश्वास है कि यदि पृथ्वी पर असीमित साधन-स्रोत उपलब्ध होते, तो भी मानवीय सुखों में समग्रतः सचमुच कोई वृद्धि नहीं हो पाती। इस दार्शनिक का मत है कि भौतिक सम्पदा मनुष्य को सच्चे आनन्द से दूर हटा ले जाती है।

उन्होंने कहा : "आनन्द तभी होता है, जब भौतिक पदार्थों में आपकी अनुरक्ति कम होती है। यह कोई विशुद्धाचारवादी नहीं, बल्कि उसका विरोधी दृष्टिकोण है। आप किसी ऐसी वस्तु का, जिसे आप चाहते हैं, त्याग नहीं कर रहे हैं—आप तो मात्र अनासक्त हैं, आपकी तो केवल रुचि नहीं है। भौतिक पदार्थों में, इस नाते कि वे भौतिक पदार्थ हैं, आपकी अनुरक्ति, आपकी रुचि, जितनी ही कम होगी, आपको उतने ही अधिक आनन्द की अनुभूति होगी।"

राजा राव की मान्यता है कि अमेरिकी लोग सम्पदा के आधिक्य से ऊब उठे हैं। उन्हें अपनी धारणा की पुष्टि के लिए साक्ष्य सर्वत्र मिल जाता है—यहां तक कि वाशिंगटन के अपने प्रिय उपाहार-गृह में भी, जहां बाहर 'हां' अंकित एक पट्टी लगी है, जो यह सूचित करती है कि यहां ग्राहकों को केवल शाकाहार दिया जाता है। उन्होंने कहा : "लोगों में सादे, प्राकृतिक, भोजन के प्रति रुचि बढ़ रही है और शाकाहारिता के पक्ष में तीव्र आन्दोलन हो रहा है। यह सब कुछ अमेरिकियों की बदलती जीवन-दृष्टि से सम्बद्ध है।"

अमेरिका की युवा पीढ़ी द्वारा गाये जाने वाले संगीत में भी राजा राव को "सच्चे प्रेम की ही चर्चा अधिक मिलती है, पुराने भावुकतामय प्रेम की कम।" साथ हीं, उसमें ऐहिक जीवन एवं सुखों की "अनित्यता अथवा दुःख" का एक नया स्वर भी मिलता है।

राव ने आगे कहा : "अमेरिकी युवकों के चलने-फिरने का ढंग तक भिन्न हो गया है। बहुत-से अमेरिकी प्रौढ़ एवं वृद्ध एक क्षण को भी चुपचाप, शान्त, नहीं बैठ सकते—उनको तो कुछ-न-कुछ किये बिना जैसे चैन ही नहीं पड़ता। लेकिन युवकों में कोई हड़बड़ी नहीं दिखायी देती। वे सोचने-विचारने में अधिक समय लगाते हैं।"

राव ने कहा कि पिछले कुछ वर्षों में अमेरिका के लोगों में भारत और एशिया के प्रति रुचि की जो लहर आयी है, वह अमेरिका में उद्बुद्ध हो रही नयी सांस्कृतिक चेतना का ही एक अन्य रूप है। एक ऐसे स्वर में, जिसमें क्षमा-याचना जैसी कोई चीज नहीं थी, उन्होंने कहा : "मुझे आशंका है कि कहीं मेरी यह बात आपको अति-राष्ट्रवादी न जान पड़े। परन्तु मेरा विश्वास है कि भूलभूत मानव-संस्कृति को अनिवार्यतः भारत की ओर उन्मुख होना पड़ेगा। भारतवासी संवेदनशीलता और रुचि-लालित्य के उस स्तर को स्पर्श कर

"अमेरिका के युवक सम्भवतः आज संसार के अधिकतम कुतूहलजनक युवजन हैं।....वे स्पष्टवक्ता हैं, तो साथ ही गम्भीर भी हैं।"

“आज का अमेरिका १८वीं शताब्दी के उन फ्रांसीसी दार्शनिकों के लिए एक सही उत्तर है, जो समृद्धि, समानता तथा स्वतन्त्रता के पोषक थे।”

चुके हैं, जिसके आगे संसार कभी नहीं जा सका है। आप चाहें तो यों भी कह सकते हैं कि कई दृष्टियों से भारत ही संस्कृति है।”

राजा राव १९२९ में पेरिस गये थे। तभी से वह पश्चिम के अध्येता बने हुए हैं, उसे जानने-समझने के लिए प्रयत्नशील हैं। उन्होंने बताया कि उन्हें इसकी आशा नहीं है कि बहुत-से अमेरिकी भारत के विषय में पूर्णरूप से निष्णात हो जायेंगे और वहां की जानने योग्य सारी बातें जान जायेंगे। उन्होंने कहा : “और, यह बात उतनी महत्वपूर्ण भी नहीं कि वे भारत के बारे में, वस्तुतः, कितना जानते हैं। अमेरिका की तरुण पीढ़ी भारतीय विचारों एवं मान्यताओं के बहुत समीप है, लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि भारतीय विचारधारा में उसकी रुचि है। भारत के विषय में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग धारणा है, प्रत्येक का एक अपना भारत है।”

अपने चेहरे पर चुनौती का भाव लिये हुए, उन्होंने पूछा : “यदि आप भारत जायें, तो आपको भारत की एक झांकी मिलेगी—लेकिन क्या वास्तव में भारत वही है? जिस भारत की बात मैं कर रहा हूं, उसका न कोई भूगोल है, न कोई इतिहास। इन दोनों की संकुचित परिधि से मेरा भारत परे है।”

राव का विश्वास है कि अमेरिकी लोगों द्वारा भारतीय पोशाक पहनना या सितार के संगीत में रस लेना भी, एक तरह से, भारतीय दार्शनिक मूल्यों के प्रति उनकी अन्तःप्रेरित अभिशंसा की ही अभिव्यक्ति है। उन्होंने कहा : “उनके भीतर जो 'मण्डल' हैं, वे इन बाह्याचारों की ओर आकृष्ट होते हैं।” फिर भी, वह यह नहीं मानते कि अमेरिकी लोगों का भारतीकरण हो जाना चाहिए, या कि भारतीयों को अमेरिकी जीवन-पद्धति का अनुसरण करना चाहिए। उनके शब्दों में, “किसी संस्कृति को अपनाना असम्भव है। संस्कृति कोई लबादा नहीं है, जिसे जब चाहा उतार दिया, या ओढ़ लिया। संस्कृति तो मनुष्य के भीतर से स्वतःस्फुरित होनी चाहिए —सहज रूप से विकसित होनी चाहिए। आपको चाहिए कि अपनी संस्कृति की ओर ही लौटें और उसे स्वतः विकसित होने दें।”

राजा राव ने कहा कि दोनों राष्ट्रों के पास एक-दूसरे को देने के लिए बहुत-कुछ है। अमेरिका का महान् योगदान है उसका प्रौद्योगिक नैपुण्य, जिसकी प्रशंसा इस भारतीय दार्शनिक ने अपने अनूठे ढंग से यों की : “प्रौद्योगिकी की सफलता पर मैं मुग्ध हूं।” उन्होंने कहा : “मैंने समीपवर्ती स्मिथसोनियन संग्रहालय में, अटलांटिक महासागर के आर-पार उड़ान करने वाले प्रथम विमान, 'स्पिरिट आव् सेण्ट लुई', अथवा प्रथम मानवों को चन्द्रमा तक ले जाने वाले चन्द्रयान, 'ल्यूनर माड्यूल', को देखा है, और उनकी सराहना में घण्टों बिताये हैं।”

राव के विचार में, योग और संगणक में परस्पर कोई विरोध नहीं है। कारण यह है कि प्रौद्योगिकी “ज्ञानार्जन की आवश्यकता पैदा करती है, और ज्ञान में ही मानव की मुक्ति है। संसार में एक नये प्रकार की चेतना का प्रादुर्भाव हो रहा है। धर्म का स्थान दर्शन ले रहा है। मानव-जाति के निस्तार की आशा एकमात्र इसी पर टिकी हुई है।”

किन्तु, राजा राव प्रौद्योगिक प्रगतियों को वास्तविक प्रगति का लक्षण नहीं मानते। वास्तव में, वह प्रगति सम्बन्धी पाश्चात्य धारणा को ही भ्रान्तिमूलक मानते हैं। अपने दुबले-पतले हाथ के एक झटके से इस धारणा को ठुकराते हुए, उन्होंने कहा : “जहां तक बुद्धि का सम्बन्ध है, मनुष्य का उसकी दृष्टि से कोई विकास नहीं होता। प्रगति एक निरर्थक धारणा है—प्रगति का लक्ष्य क्या है? उसका महत्व क्या है? सूचना-संग्रह मात्र सूचना-संग्रह है। उससे होता-जाता क्या है? अगर मैं पढ़ा-लिखा न होता, तो भी मैं बहुत बुद्धिमान मानव हो सकता था!”

प्रगति और प्रौद्योगिकी के सम्बन्ध में राजा राव के विचारों में, सम्भव है, कुछ विरोधाभास दिखलायी पड़े। लेकिन यह सन्देह उस समय निर्मूल हो जाता है, जब हम दार्शनिक की इस दृढ़ धारणा से परिचित हो जाते हैं कि सत्य का अन्वेषण ही मानव-जाति का एकमात्र युक्तिसंगत कर्तव्य है। उन्होंने अपनी बात पर बल देते हुए, कहा : “अगर सुकरात न हुए होते, तो पाश्चात्य सभ्यता का कोई अस्तित्व ही न होता।” उन्होंने बताया कि उस चिन्तक ने, जिसने संसार की सर्वाधिक प्रौद्योगिकी-प्रधान संस्कृति को रूपायित करने में योग दिया था, “दूसरों को सत्यान्वेषण के लिए प्रेरित किया।” राव ने बताया कि विवेक अथवा ज्ञानशक्ति का विकास चाहे प्रौद्योगिकी के माध्यम से हो, अथवा अन्य किन्हीं साधनों से, किन्तु अन्ततः उससे सत्य की शोध में सहायता अवश्य मिलती है; लेकिन सत्य, जो मानव का चरम लक्ष्य है, अपरिवर्त्य है।”

राजा राव ने आगे कहा : “पूर्ण मानव अवैयक्तिक प्राणी होता है, वह मानववादी नहीं होता। वह सत्य की भावना के अनुरूप जीने की चेष्टा करता है। आपके महान् राष्ट्रपति सामान्यतः इस तथ्य को समझते थे। जेफर्सन, लिंकन और विल्सन सभी सत्य के लिए समर्पित थे। वे मूलभूत मूल्यों की, जीवन के सार-तत्व की, खोज करने में विश्वास करते थे और अपने-आपसे पूछते थे कि जो कुछ वे कर रहे हैं, वह क्या उन मूल्यों की कसौटी पर खरा उतरता है?”

लेखक अपनी कला के माध्यम से सत्य की महत्ता के प्रति अपनी आस्था को ही व्यक्त करता है। मानना पड़ेगा कि राजा राव के उपन्यासों को समझना टेढ़ी खीर है, किन्तु इस लेखक को अपने पाठकों की कठिनाइयों की कोई चिन्ता नहीं। उन्होंने स्वीकार किया : “मेरी रुचि तो सत्यान्वेषी की समस्याओं का विवेचन करने में है। जिस रचना में मुझे आनन्द आता है, उसी को मैं प्रकाशित करता हूं। मेरा विश्वास है कि व्यक्ति को सत्य की, चाहे वह किसी भी रूप में हो, खोज करनी चाहिए और उसकी कीमत चुकानी चाहिए—उसके लिए कष्ट सहना पड़े, तो हंसते-हंसते सहना चाहिए।”

इस भारतीय उपन्यासकार ने, जिसने, एक बार कहा था कि “मैं एक ऐतिहासिक संयोगवश ही अंग्रेजी में लिखता हूं,” अपनी कृतियों को अपनी व्यक्तिगत दार्शनिक खोज का वृत्तान्त कहा है।

उन्होंने कहा : “सभी लेखक केवल आत्मकथा लिखते हैं। मेरी प्रत्येक पुस्तक में, मेरे जीवन के किसी-न-किसी पक्ष पर बल दिया गया है; इस तरह, वे पर्याप्त अंश तक मेरे जीवन के सच्चे वृत्तान्त हैं; हालांकि जहां तक तथ्यों का सम्बन्ध है, उनमें उतनी सत्यता नहीं होती। **'दि सरपेण्ट ऐण्ड दि रोप'** में, मैं 'राम' हूं। यही लीजिये, पुस्तक में जिस राम का वर्णन है, उससे मैं भिन्न प्रकार का व्यक्ति हूं, क्योंकि उसने अभी तक यह निश्चय नहीं किया है कि उसका साध्य क्या है। मेरी पुस्तक, **'दि रैट ऐण्ड शेक्सपियर'**, उस दार्शनिक खोज का निष्कर्ष है।”

ऐसा लगता है कि राव ने अब अपने जीवन के एक अन्य अवस्थान का आरम्भ किया है—वह है उनका अमेरिकी जीवन। उन्होंने एक अमेरिकी महिला से विवाह कर लिया है। उनकी पत्नी हैं अभिनेत्री कैथेरीन राव। उनके एक छोटा बच्चा भी है। वे प्रति वर्ष कुछ महीने अमेरिका में अवश्य बिताते हैं। क्या हम आशा करें कि नवीन अमेरिकी चेतना उनके किसी अगले उपन्यास का विषय बनेगी?

राव ने, कन्धे उचका कर, इस प्रश्न का उत्तर दिया : “अभी तो यह कहना कठिन है। एक पुस्तक लिखने में मुझे दस साल तक लग जाते हैं। अमेरिका पर कोई पुस्तक? हां, हो सकता है।”

ऐसा लगता है कि राजा राव की दृष्टि में, जिन्हें भारत सरकार ने 'पद्म भूषण' की उपाधि से विभूषित किया है, अपनी भावी साहित्यिक उपलब्धियां भी, अन्ततः, कोई महत्व नहीं रखतीं। अमेरिका, भारत और स्वयं अपने लिए वह जिस बात को महत्वपूर्ण समझते हैं, वह है उनका यह दृढ़ विश्वास कि “यदि मनुष्य सत्यान्वेषण में लगन से जुट जाय, तो उसे, निश्चय ही, सुख की प्राप्ति होगी।” ■■

लेखक के विषय में : एलिज़ाबेथ बोहल एक स्वतन्त्र लेखिका हैं। वह भारत में फुलब्राइट स्कालर के रूप में एक वर्ष तक रह चुकी हैं। अपने विधिज्ञ एवं छविकार पति, श्री फ्रैंक बोहल, के साथ वह १९७१ में यहां पुनः पधारी थीं।

रिचर्ड निक्सन की राजनीतिक विचारधारा

आगामी चार वर्षों में राष्ट्रपति निक्सन किन लक्ष्यों को सिद्ध करने की आशा करते हैं? उनकी राजनीतिक विचारधारा की आधारशिलाएँ क्या हैं? 'वाशिंगटन स्टार-न्यूज़' के साथ पिछले वर्ष (१९७२ में) एक भेंट-वार्ता में, राष्ट्रपति ने बताया कि इन प्रश्नों के पूर्ण उत्तर ७ नवम्बर के निर्वाचन से पूर्व किये गये उनके १५ भाषणों में उपलब्ध हैं। उन्होंने कहा कि इन भाषणों में उन्होंने उन आस्थाओं और सिद्धान्तों का सम्यक् विवेचन किया था, जो आगे के चार वर्षों में उनका पथ-निर्देशन करेंगे। उनके इन भाषणों की विषय-वस्तुओं को क्रमानुसार संकलित किया गया है। कुछ उद्धरण यहां प्रस्तुत हैं।

शान्ति का पथ

लगभग ४ वर्ष पूर्व, अपने उद्घाटन-भाषण में मैंने कहा था कि शान्ति-निर्माता का पद ही वह सबसे बड़ा गौरव है, जो इतिहास किसी को प्रदान कर सकता है। किन्तु, मैंने यह भी कहा था कि कामना करने मात्र से शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इसके लिए तो धैर्य के साथ, कुछ दिनों तक ही नहीं, बल्कि वर्षों-वर्षों तक, लम्बे राजनयिक प्रयास जारी रखने के अलावा, कोई अन्य उपाय नहीं है।

पिछले चार वर्षों से, यह राष्ट्र विश्व के प्रत्येक कोने में बड़े धैर्य के साथ लम्बे राजनयिक प्रयासों में संलग्न है। साथ ही, हम उस शक्ति को भी बनाये हुए हैं, जिसने हमारे राजनयिक प्रयासों को विश्वसनीय और शान्ति को सम्भव बनाया है। फलस्वरूप, हमने उस चीज का, जिसे मैंने प्रायः 'शान्ति की संरचना' कहा है, निर्माण करने की दिशा में पर्याप्त प्रगति की है। शान्ति की यह संरचना, यह ढांचा, अविवेकपूर्ण भावुकता के खिसकते रेत पर नहीं, बल्कि समसामान्य हितों और पारस्परिक समझौतों की सुदृढ़ आधारशिला पर आधारित है।

'शान्ति की संरचना' एक ऐसा पद है, जो आज के विश्व में शान्ति के स्वरूप के विषय में एक महत्वपूर्ण सत्य का उद्बोधक है। शान्ति का प्रादुर्भाव उसकी कामना करने मात्र से नहीं हो सकता। उसे तो मैत्रीपूर्ण सन्धि-शृंखलाओं के माध्यम से, प्रतिबद्धताओं का सम्मान करते हुए, धैर्यपूर्वक वार्ताएं चला कर, सैन्य शक्तियों को सन्तुलित करके, आर्थिक परस्परावलम्बन को प्रश्रय देकर, कोई ऐसा समझौता करके जो अन्य समझौतों का द्वार उन्मुक्त कर सके, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार की ऐसी प्रणालियां विकसित करके जिन्हें अन्य शक्तियां स्वीकार कर सकें, अनेक दिशाओं से और कई मोर्चों पर, अतीव सावधानी के साथ और कठिन परिश्रम द्वारा, निर्मित करना होगा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शान्ति का निर्माण इस प्रकार होगा, ताकि वे लोग भी, जो उसे नष्ट करने के लोभ से प्रेरित हों, उसे सुरक्षित रखने में ही अपना हित देख सकें।...

आइये, हम भावी सन्तानों को उनके जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में 'शान्तिमय विश्व में शान्तिमय अमेरिका' का उपहार प्रदान करें। और, यह शान्ति ऐसी हो, जो आत्म-समर्पण के बजाय, सम्मान और गौरव पर आधारित हो; जो युद्धों के बीच आने वाले अन्तराल के बजाय, सभी राष्ट्रों के बीच चिरस्थायी मैत्री और सहयोग की अवधि की प्रतीक हो—एक ऐसी अवधि की, जिसमें मानव-जाति हमारे समसामान्य शत्रुओं, दुःख, दरिद्रता और रोग, के विरुद्ध नये सहकारिता-सूत्र में आबद्ध हो।

हाल में, वियतनाम में वार्ता द्वारा समझौते की दिशा में जो प्रगति हुई है, वह इसी प्रकार की शान्ति की ओर निर्दिष्ट है। यही बात उस नये सम्बन्ध पर भी चरितार्थ होती है, जो सोवियत संघ और चीन के साथ अमेरिका विकसित कर रहा है। लेकिन अभी और भी बहुत-कुछ करना शेष है। उदाहरण के लिए, आणविक शस्त्रास्त्रों का और अधिक परिसीमन, यूरोप में विद्यमान तनाव की स्थिति में ढिलायी, मध्यपूर्व में दुःखद वैमनस्य एवं मतभेदों का निराकरण, हमारे मैत्री-संगठनों का सतत दृढ़ीकरण, व्यापार की नयी दिशाओं का सृजन और हमारी स्वयंसेवी सशस्त्र सेनाओं का, जो आने वाले वर्षों में अमेरिका की शान्ति-स्थापक सेनाओं की अपरिहार्य धुरी होंगी, निरन्तर विकास—ये सभी दिशाएं हमारे प्रयास को निमन्त्रित करती हैं।...

सर्वोपरि बात यह है कि मैं शान्तिमय विश्व के लिए आधारशिला का निर्माण-कार्य पूरा कर देना चाहता हूं, ताकि अगली पीढ़ी इस शताब्दी की वह पहली पीढ़ी बन सके, जिसे युद्ध या युद्ध के भय के बगैर जीवन-यापन करने का सौभाग्य प्राप्त हो।...

हम विश्व में सर्वत्र शान्ति के द्वार उन्मुक्त कर रहे हैं—ऐसे द्वार, जो पहले बन्द थे। जहां पहले केवल वैमनस्य का राज था, वहां *हम समान हितों के क्षेत्र विकसित कर रहे हैं।* यह सब कुछ अभी हमारे प्रयास का आरम्भिक बिन्दु मात्र है। और, इसमें सन्देह नहीं कि यह शान्ति की पीढ़ी का प्रारम्भिक बिन्दु सिद्ध हो सकता है।...

जब हम वास्तविक संसार पर दृष्टिपात करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने जीवनकाल में हमें संकटों और खतरों से विहीन विश्व का लक्ष्य प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सकेगा। इतिहास का कोई भी अध्येता जानता है कि खतरा सदैव मानव-जाति के समसामान्य प्रारब्ध का अंग रहा है। आज के विश्व से परिचित कोई भी व्यक्ति यह जानता है कि विश्व में विशुद्ध सद्भावना की प्रवृत्ति अचानक ही उदित नहीं हो जाती। फिर भी, हम अपने अथक प्रयास द्वारा खतरे को कम

कर सकते हैं। हम उसे सीमाओं में बांध कर आगे बढ़ने से रोक सकते हैं। हम सम्बन्धों और परस्परावलम्बन की ऐसी श्रृंखला का निर्माण कर सकते हैं, जो आक्रमण को अवरुद्ध और युद्धजनित लाभ उठाने की भावना को निष्क्रिय कर सके।

हम सभी राष्ट्रों को एक जैसा ही नहीं बना सकते, और इसके लिए प्रयत्न करना भी उचित नहीं है। हम विश्व के सभी लोगों को ऐसे रंग में नहीं रंग सकते, ताकि वे एक-दूसरे को प्यार करने लगें। किन्तु, हम ऐसी स्थितियां अवश्य उत्पन्न कर सकते हैं, जिनके अन्तर्गत एक-दूसरे के साथ शान्तिमय ढंग पर उनके रहने की सम्भावना पहले से अधिक हो।

सैन्य शक्ति

राष्ट्रपति निक्सन अमेरिकी प्रतिरक्षा शक्ति को, जिसमें आणविक और परम्परागत, दोनों ही प्रकार की आयुध-क्षमताएं शामिल हैं, एक ऐसे स्तर पर बनाये रखने के लिए कृतसंकल्प हैं, जो विश्व में अद्वितीय हो। वह इस खतरे के प्रति भी जागरूक हैं कि प्रतिरक्षा पर राष्ट्रीय साधनों का हद से अधिक अंश खर्च हो सकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने अमेरिकी स्थलसेना की जनशक्ति में प्रायः एक-तिहाई की कटौती की है। किन्तु, अमेरिका की नभ और नौ-सेनाओं की वर्तमान वरिष्ठता को वह कदापि कम नहीं होने देंगे। उनके चुनाव-भाषणों के जो अंश यहां उद्धृत किये जा रहे हैं, उनमें राष्ट्रपति ने इस सम्बन्ध में अपने तर्क और अपनी योजनाएं प्रस्तुत की हैं।

शान्ति शक्ति से ही सम्भव है। किन्तु, आज कुछ लोग इस विचार को शीतयुद्धकालीन चिन्तन का अवशेष मान कर इसकी निन्दा करते हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो सैनिक व्यय को अनैतिक एवं अपव्यय मान कर इसका उपहास करते हैं। हमारे विरोधियों ने... तो शक्तिशाली होकर वार्ता चलाने की महान् द्विपक्षीय परम्परा तक को अमेरिकी शब्दकोश का सबसे मंहगा और सर्वाधिक अहित करने वाला मुहावरा कहा है। अगर कभी ऐसा दिन आया, जब अमेरिका के राष्ट्रपति को कमजोर की तरह समझौता-वार्ता करनी पड़ी, तो वह दिन न केवल अमेरिका के लिए, बल्कि समूचे विश्व के लिए भी, दुर्भाग्य का दिन सिद्ध होगा।...

हमें बताया जायेगा कि अगर हम अपने सैनिक व्यय में कटौती कर दें, तो देश के भीतर हम जो कुछ करना चाहते हैं, उस सबके लिए वित्त की व्यवस्था बिना किसी कष्ट के सम्भव हो सकती है। हमें यह भी बताया जायेगा कि मांगने मात्र से हमें मुंहमांगी शान्ति मिल सकती है; कि यदि हम सद्भाव और सद्-विश्वास का प्रदर्शन भर कर दें, तो हमारे प्रतिपक्षी भी वैसा करने को तत्पर होंगे, और उसके बाद, हमें कुछ और करने की आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी। इस प्रकार की बातें खतरनाक और अविवेकपूर्ण हैं।...

निस्सन्देह, हमने विश्व-शान्ति की दिशा में प्रगति की है—सोवियत संघ तथा जनवादी चीन गणराज्य के साथ नये सम्बन्ध कायम किये हैं। लेकिन, यह सब कुछ न तो इस विवेकहीन और भावुकतापूर्ण मान्यता के बल पर सम्भव हुआ है कि महत्वपूर्ण बात केवल सद्भावना है, और न ही इस मान्यता के बल पर, कि हम अपनी सैन्य शक्ति घटा सकते हैं, क्योंकि युद्ध करने का हमारा कोई इरादा नहीं है और इसलिए हम मान लेते हैं कि अन्य राष्ट्रों का भी ऐसा कोई इरादा नहीं। यदि शान्ति की दिशा में हमने सचमुच प्रगति की है, तो इसके कारण कुछ और ही हैं। हमने सिद्ध कर दिया है कि सैन्य बल में हम किसी को ऐसा अवसर नहीं देंगे कि वह हमें पछाड़ सके। साथ ही, हमने अन्य देशों के साथ अपने तथा उनके राष्ट्रीय हितों के आधार पर सौदे एवं समझौते किये हैं।...

जब कोई राष्ट्रपति अमेरिकी जनता के प्रति अपने दायित्व पर विचार करता है, तो उसे सर्वप्रथम यह सोचना पड़ता है कि यह देश शक्तिशाली रहे; इस देश की राष्ट्रीय प्रतिरक्षा-व्यवस्था ऐसी हो, जो विश्व में किसी से पीछे न रहे।

राष्ट्रपति पर यह दायित्व भी है कि प्रतिरक्षा पर राष्ट्र के सीमित साधनों का वह उतना ही अंश व्यय करे, जितना नितान्त आवश्यक हो, क्योंकि वह जानता है कि उसे अन्य अनिवार्य मानवीय आवश्यकताएं भी पूरी करनी हैं।

आज विश्व का कोई भी राष्ट्र अमेरिका से अधिक शक्तिशाली नहीं है। सम्प्रति, न केवल हमारी पारमाणविक प्रतिरोधक शक्तियां शान्ति बनाये रखने में अपनी भूमिका निभाने के लिए पर्याप्त एवं सक्षम हैं, वरन् हमारी पारम्परिक सेनाएं और उनके आयुध भी शक्तिशाली एवं आधुनिकतम हैं और वे किसी भी प्रतिपक्षी का पूर्ण साहस के साथ एवं विश्वसनीय ढंग से प्रतिरोध करने में समर्थ हैं।

पिछले चार वर्षों में, हमने वियतनाम युद्ध को सम्मानप्रद ढंग से समाप्त कराने और बड़ी शक्तियों के बीच तनाव घटाने की दिशा में प्रगति की है। इस कारण हम सैनिक संस्थानों का भी आकार पर्याप्त रूप में घटाने में सफल हुए हैं।

सन् १६६८ के स्तर की तुलना में, हमने अपने सैनिकों की कुल संख्या में लगभग एक-तिहाई की कटौती कर दी है।... 'निक्सन सिद्धान्त' के अधीन, हमने अपने मित्रों को बड़ी सफलता के साथ इस बात के लिए तैयार किया कि स्वतन्त्र विश्व के प्रतिरक्षा-व्यय का भार वे अब अतीत की अपेक्षा अधिक अंश तक वहन करें।...

यह सब कार्य कुछ इस प्रकार सम्पन्न हुआ कि न तो हमारी सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हुआ और न ही हमारे मित्रों को यह शिकायत करने का मौका मिला कि उनके साथ कोई विश्वासघात किया गया।...

जनवरी १६६६ में, जब मैंने राष्ट्रपति पद का कार्यभार संभाला, मुझे पता चला कि... परमाणु-शक्ति के क्षेत्र में (अमेरिका) अब दुर्द्धर्ष वरिष्ठता की स्थिति में नहीं रह गया था।... किन्तु, आज पारमाणविक आयुध-क्षमता की दृष्टि से अमेरिका और सोवियत संघ समान स्तर पर हैं।

अतः, अब यह विश्वास करना अवास्तविक होगा कि यदि पारमाणविक प्रत्याक्रमण ही एकमात्र विकल्प हो, तो हम किसी ऐसे छोटे राष्ट्र पर हुए आक्रमण का निवारण कर सकेंगे, जिसके अस्तित्व का हमारे अस्तित्व पर प्रत्यक्षतः कोई प्रभाव न पड़ता हो, क्योंकि तब ऐसा करने का अर्थ, अन्ततः, स्वयं अमेरिका के लिए पारमाणविक आत्महत्या के समान होगा।

उस दशा में, पारस्परिक विनाश असीम होगा, और उभय पक्ष इस तथ्य को भलीभांति समझते हैं। वैसी परिस्थितियों में, कोई भी सम्भाव्य आक्रान्ता हमारे मित्रों को दिये गये सुरक्षा सम्बन्धी अमेरिकी वचनों और प्रतिबद्धताओं का सम्मान नहीं करेगा।

इसका एक उदाहरण मध्यपूर्व है। १६७० की शरद ऋतु में...अमेरिकी नौसेना की वरिष्ठता के बल पर ही शान्ति सुरक्षित रह सकी।...परमाणु-आयुध के प्रयोग की धमकी यहां सर्वथा निरर्थक सिद्ध होती। यही कारण है कि इजरायल और उन अन्य छोटे राष्ट्रों के हित में, जिनकी रक्षा करने के लिए हम प्रतिबद्ध हैं, तथा स्वयं अपनी रक्षा की दृष्टि से, यह कदापि उचित न होगा कि झूठी मितव्ययिता के नाम पर हम जल और नभ में अपनी वरिष्ठता को समाप्त कर दें।

अब समय आ गया है कि हम खड़े हो जायें, और अपने देश के उन लोगों को, जो कहते

हैं कि अमेरिकी शक्ति विश्व को संत्रस्त करने वाली शक्ति है, जो कहते हैं कि हमारी विदेश नीति स्वार्थी और दोषपूर्ण है, मुंहतोड़ और भरपूर उत्तर दें।...

मैं इस देश को सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली बनाये रखूंगा।...

पीठ दिखा कर शान्ति के अवगुण्ठन में बन्द हो जाने जैसी किसी चीज की कल्पना नहीं की जा सकती। और, न ही किसी ऐसी शान्ति की कल्पना की जा सकती, जो व्यवस्थाविहीन हो। यदि अमेरिका अपनी प्रतिरक्षा-शक्ति में सहसा कटौती करके स्वतन्त्र संसार की एक महाशक्ति के रूप में अपने दायित्वों का निर्वाह करना त्याग देता है, तो हमारे लिए यह पीठ दिखाने जैसी बात होगी।

ऐसा करके तो हम विश्व में ऐसी रिक्तता उत्पन्न कर देंगे, जिसमें शान्ति और व्यवस्था का टिक पाना दूभर हो जायेगा, और रिक्तता को भरने के लिए केवल अशान्ति और अव्यवस्था ही मैदान में रह जायेंगी।

वार्ता का युग

राष्ट्रपति निक्सन का विश्वास है कि विगत चार वर्षों में एक 'वार्ता के युग' में प्रवेश करने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। यह एक ऐसी अवधि होगी, जिसमें इस विश्व के अधिकांश राष्ट्र अपने पारस्परिक मतभेदों को लेकर युद्ध करने के बजाय, भरसक समझौता-वार्ताओं द्वारा उन्हें दूर करने का प्रयत्न करेंगे। वह मानते हैं कि ऐसी वार्ताएं न केवल वाशिंगटन, मास्को और पेकिंग के बीच, बल्कि दोनों जर्मनी, दोनों कोरिया, भारतीय उप-महाद्वीप के देशों, 'नाटो' तथा 'वारसा सन्धि-संघटन' के बीच भी चल रही हैं। उनके भाषण के जो उद्धरण यहां प्रस्तुत हैं, उनमें राष्ट्रपति निक्सन ने वार्ता के युग और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के अगले चरण के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

चार वर्ष पूर्व, मैंने यह आश्वासन दिया था कि हम 'संघर्ष के युग' से निकल कर 'वार्त्ता के युग' में प्रवेश करेंगे।

हमने सोवियत संघ के साथ पिछले चार वर्षों में जितने महत्वपूर्ण समझौते किये, उतने द्वितीय महायुद्ध के बाद से लेकर इन चार वर्षों से पूर्व तक की समस्त अवधि में उसके साथ नहीं किये गये थे। हमने चीन और अमेरिका के बीच पिछले २५ वर्षों से चले आ रहे पारस्परिक अलगाव की स्थिति को समाप्त किया है।

समूचे संसार में, समझौता-वार्ताओं की नयी लहर चल पड़ी है। उत्तर और दक्षिण कोरिया एक-दूसरे के साथ समझौता-वार्त्ता चला रहे हैं। पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी में भी परस्पर वार्तालाप चल रहा है। मध्यपूर्व में दो वर्षों से भी अधिक समय से युद्ध-विराम लागू है। भारत और पाकिस्तान के नेताओं के मध्य वार्तालाप चल रहा है। यूरोप, 'नाटो' तथा 'वारसा सन्धि-संघटन' के राष्ट्र अगले वर्ष यूरोपीय प्रतिरक्षा सम्मेलन में भाग लेने जा रहे हैं, तथा मध्य यूरोप में पारस्परिक आधार पर सशस्त्र सेनाओं में कमी करने के विषय में समझौता-वार्ता चलाने की तैयारियां की जा रही हैं।

इन सभी बातों से पता चलता है कि एक ऐसे संसार के निर्माण की दिशा में ठोस प्रगति हो रही है, जिसमें मतभेदों पर आपस में लड़ने के बजाय, समझौता-वार्ता द्वारा उन्हें दूर करने पर बल दिया जायेगा।

द्वितीय महायुद्ध के बाद से लेकर अब तक कोई ऐसा वर्ष नहीं आया, जिसमें विश्व-शान्ति की दिशा में उतनी सफलताएं प्राप्त की गयी हों, जितनी सन् १९७२ में प्राप्त हुई हैं। यह प्रगति अपने-आप नहीं हो गयी।...

द्वितीय महायुद्ध के बाद से ही संसार के विभिन्न देशों के लोग और उनके नेता पारमाणविक विभीषिका का संकट समाप्त करने तथा प्रलयकारी पारमाणविक शस्त्रास्त्र-प्रतिस्पर्धा पर नियन्त्रण प्राप्त करने का स्वप्न देखते रहे हैं। लेकिन, उनके सतत प्रयासों के बावजूद, १९७२ के पूर्व यह प्रतिस्पर्धा अपने उग्र रूप में बराबर चलती रही।

गत मई माह में, मास्को में, हमारे तथा सोवियत संघ के बीच पारमाणविक शस्त्रास्त्रों को सीमित करने के लिए सर्वप्रथम समझौता सम्पन्न हुआ।... यह एक ऐतिहासिक सफलता का प्रारम्भिक बिन्दु था। इसने भय का वातावरण दूर किया और पारमाणविक शस्त्रास्त्रों के भण्डार में निरन्तर हो रही खतरनाक वृद्धि को रोक दिया। साथही, इसने पारमाणविक शस्त्रास्त्रों के भण्डारों पर और अधिक ठोस नियन्त्रण लागू करने के विषय में समझौता-वार्ता चलाने का मार्ग प्रशस्त किया।

किन्तु, जब हम वार्ताएं चलाने का उपक्रम कर रहे हैं, तो हमें यह भी याद रखना होगा कि कोई भी देश उस चीज के लिए कोई मूल्य देने को प्रस्तुत नहीं होगा, जिसका कोई दूसरा देश यों ही, मुफ्त में, परित्याग कर रहा हो।...यदि अमेरिका ने एकपक्षीय आधार पर प्रक्षेपणास्त्रों को नष्ट करने वाले विशेष प्रकार के प्रक्षेपणास्त्रों ('ए बी एम') का परित्याग करने का फैसला कर लिया होता, जैसा कि कुछ लोगों ने सुझाव दिया था, तो (पारमाणविक शस्त्रास्त्रों के परिसीमन के विषय में) वह समझौता करने में हम कदापि सफल न हुए होते।

यदि हम इस समय इस प्रकार का कदम उठा लें, तो सोवियत संघ के साथ सामरिक शस्त्रास्त्र परिसीमन-वार्ता के दूसरे चरण में शस्त्रास्त्रों को आगे और परिसीमित करने की सम्भावना पूरी तरह नष्ट हो जायेगी। यदि हम पश्चिमी यूरोप के 'नाटो' मित्रराष्ट्रों की सहायता के लिए सुलभ की गयी सशस्त्र सेनाओं में एकपक्षीय आधार पर कमी कर दें, जैसा कि प्रस्ताव किया गया है, तो हम पूर्वी यूरोप में सोवियत सशस्त्र सेनाओं को पारस्परिक आधार पर और सन्तुलित रूप में कम करने की सम्भावना को भी नष्ट कर देंगे।...

हमारे सामने शान्ति स्थापित करने का एक व्यापक और अधूरा कार्यक्रम पड़ा हुआ है। यह कार्यक्रम नयी पहल लेने, नयी समझौता-वार्ताएं चलाने और नये सम्बन्ध स्थापित करने का है। पहले की तरह ही हमें इन दिशाओं में कल्पना और सूझ-बूझ के साथ ठोस प्रगति जारी रखनी होगी। जैसे-जैसे हम इस कार्यक्रम को लेकर आगे बढ़ेंगे, वैसे-ही-वैसे हम यह अनुभव करेंगे कि शान्तिपूर्ण सहयोग का असीम क्षेत्र हमारे सम्मुख अछूता पड़ा है।...

हम शक्तिशाली हैं; हम सतत सतर्क और तत्पर हैं। और, यही कारण है कि शस्त्रास्त्रों में कमी करने, सोवियत संघ और जनवादी चीन गणराज्य के साथ सम्बन्ध सुधारने तथा शान्ति के युग का सूत्रपात करने की दिशा में हमने नाटकीय प्रगति की है।

विदेश व्यापार

राष्ट्रपति निक्सन यह आशा करते हैं कि आने वाले महीनों में अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच के दो क्षेत्रों—मुद्रा-प्रणाली में सुधार और विदेश व्यापार के विस्तार—में महत्वपूर्ण प्रगति होगी। ऐसे राष्ट्र, जो अभी कुछ ही वर्ष पहले तक एक-दूसरे के शत्रु बने हुए थे, अब व्यापार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण साझेदार बन रहे हैं। यह एक ऐसी प्रगति है, जिससे, निश्चय ही, शान्ति और सम्पन्नता को प्रोत्साहन मिलेगा। जहां तक अमेरिका का सम्बन्ध है, वहां एक नयी कृषि-नीति के फलस्वरूप इस प्रक्रिया को बल मिल रहा है। यहां श्री निक्सन के चुनाव-प्रचार सम्बन्धी भाषणों के कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं, जिनसे इस विषय पर उनके विचारों पर प्रकाश पड़ता है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-क्षेत्र में बार-बार उत्पन्न होने वाले, आवर्त्ती, संकटों के एक दशाब्द के बाद, हमने (१९७१ में) ऐसे साहसपूर्ण कदम उठाये, जिनका उद्देश्य डालर की स्थिति को सुदृढ़ करना और एक ऐसी परिष्कृत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-प्रणाली का निर्माण करना था, जो न केवल अमेरिका के लिए, बल्कि समस्त विश्व के लिए भी, औचित्यपूर्ण हो।

इन कार्यवाहियों के फलस्वरूप, ठीक इसी प्रकार की एक प्रणाली के निर्माण की ठोस और सुदृढ़ प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। इस प्रकार, अब वह स्थिति उत्पन्न कर दी गयी है, जिसमें इतिहास के कुछ अधिकतम महत्वपूर्ण मौद्रिक और व्यापारिक सुधार लागू करने की दिशा में अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास किये जा सकते हैं। आने वाले वर्षों में, जब हम इन सुधारों को पूरी तरह लागू कर लेंगे, तो हम विश्वव्यापी सम्पन्नता के एक नये युग का सूत्रपात कर सकेंगे, जो इस समय न केवल हमारे परम्परागत व्यापारिक साझेदारों के साथ, बल्कि ऐसे राष्ट्रों के साथ भी, जो हमारे शत्रु रहे हैं, विकसित हो रहे शान्तिपूर्ण व्यापार के त्वरित विस्तार के कारण और भी बढ़ जायेगी।

चार साल पहले, प्रत्येक व्यक्ति उन कड़े सरकारी कृषि-कार्यक्रमों से ऊब सा गया था, जिनके कारण देश के किसानों को बंधीकसी स्थितियों में रहने के लिए बाध्य होना पड़ रहा था। अतः, हम एक ऐसी विधि खोज निकालने के लिए उत्सुक थे, जो हमारे किसानों को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान कर सके। हमने कृषि-क्षेत्र को संकुचित करने के बजाय, उसे निरन्तर विस्तृत करने का प्रयत्न किया। हमने अनिवार्य नियन्त्रणों के बजाय, स्वेच्छा पर आधारित कृषि-कार्यक्रम को अधिमान्यता दी। हमने सरकारी प्रभुत्व के नीचे दबी कृषि के बजाय, बाजार की ओर उन्मुख कृषि को प्रश्रय दिया।...

कृषि को विस्तारशील बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि हमारी कृषिजन्य वस्तुओं के लिए विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीय बाजार उपलब्ध हों। जब हमने प्रशासन का कार्यभार संभाला, उस समय हमारी कृषिजन्य वस्तुओं के निर्यात जड़वत स्थिरता की अवस्था में थे। लेकिन, अब ये निर्यात वर्ष-प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर नये और ऊंचे कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं।

पिछले प्रशासन के अन्तर्गत, हमारी कृषिजन्य वस्तुओं का वार्षिक निर्यात ५७० करोड़ डालर के स्तर पर पहुंच गया था। यह स्तर १९७२ में ऊपर उठ कर पहली बार ८०० करोड़ डालर तक पहुंच जायेगा। हम इस ऊर्ध्वशील प्रवृत्ति को कायम रखेंगे, ताकि हमारी कृषिजन्य वस्तुओं का वार्षिक निर्यात १,००० करोड़ डालर के स्तर पर, जो हमारा लक्ष्य है, पहुंच जाये।

प्रतिवर्ष १०० करोड़ डालर की खरीद करने वाला हमारा पहला ग्राहक जापान के रूप में हमें मिल चुका है।

हमने पिछले प्रशासन द्वारा महासागरीय जहाजरानी पर लागू किये गये प्रतिबन्धात्मक नियमों को हटा कर साम्यवादी देशों में नये बाजारों के द्वार उन्मुक्त किये हैं। इसी कार्यवाही के फलस्वरूप, पिछले शीतकाल में हमने सोवियत संघ को १५ करोड़ डालर के चारे वाले अनाज बेचे। इसी कार्यवाही के फलस्वरूप, सोवियत संघ के साथ त्रिवर्षीय अन्न-विक्रय समझौता सम्भव हुआ, जिस पर जुलाई में हस्ताक्षर हुए। यह सौदा शान्तिकाल का अपनी किस्म का सबसे बड़ा सौदा था। इतनी ही महत्वपूर्ण बात यह भी है कि महान् शक्तियों के बीच, जो कुछ ही वर्ष पहले एक-दूसरे की शत्रु थीं, शान्तिपूर्ण सम्बन्धों को सुदृढ़ करने के लिए हमारी कृषि नीति और हमारी विदेश नीति जिस प्रकार एक-दूसरे से सहयोग कर रही हैं, उसका यह समझौता एक ज्वलन्त उदाहरण है।

अमेरिका और साम्यवादी चीन के बीच नया सम्बन्ध, जो इस वर्ष (१९७२ में) कुछ समय पहले मेरी पेकिंग-यात्रा से प्रारम्भ हुआ, एक अन्य स्थिति है, जिसमें हमारे किसान न केवल शान्ति में योग दे रहे हैं, बल्कि शान्ति से लाभान्वित भी हो रहे हैं। साम्यवादी चीन को हमने अनाज का जो विक्रय किया है, वह हमारे दोनों देशों के बीच व्यापार की विपुल सम्भावनाओं की तुलना में नगण्य है।
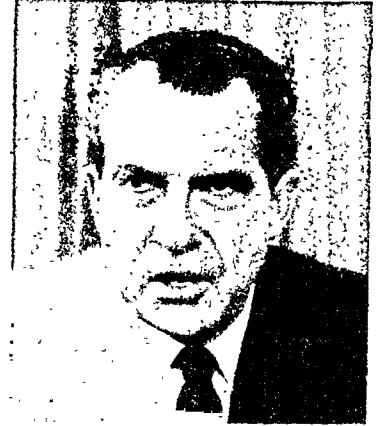
सरकार का पुनर्गठन

अमेरिका में पिछले ४० वर्षों से 'सरकार को विशालकाय' बनाने, वाशिंगटन में नौकरशाही को विस्तृत करने, की प्रवृत्ति पनपती चली आ रही है। राष्ट्रपति निक्सन का विश्वास है कि इस प्रवृत्ति को सुधारने की आवश्यकता है। उनका अभिप्राय यह है कि सत्ता के प्रवाह की दिशा को पलट कर, उसे राज्यों और स्थानीय निकायों की ओर, और व्यक्तिगत नागरिकों तक, सम्प्रेषित कर देना चाहिये। यहां उनके भाषणों के जो उद्धरण प्रस्तुत हैं, उनसे सरकार या शासन-सत्ता के

सम्बन्ध में राष्ट्रपति के विचारों पर प्रकाश पड़ता है ।

(हमारा) लक्ष्य एक स्वतन्त्र और स्वशासित अमेरिका होना चाहिये—एक ऐसा अमेरिका, जिसकी—संघीय, राज्यीय और स्थानीय स्तरों पर सक्रिय—प्रतिनिधि-सरकार की अनुपम प्रणाली सन् १९७६ में जनता की इच्छा को मूर्त्त रूप देने का ऐसा उत्कृष्ट साधन, जनता की आवश्यकताओं का ऐसा विनीत अनुचर तथा जनता की स्वतन्त्रताओं का ऐसा प्रबल संरक्षक सिद्ध हो, जैसा वह सन् १७७६ में हमारे राष्ट्र की स्थापना के बाद किसी भी समय नहीं रही ।

इस उच्च मापदण्ड तक पहुंचने के लिए—एक नयी, शान्तिपूर्ण, अमेरिकी क्रान्ति के स्तर पर—व्यापक सुधार करने होंगे । संघीय राजस्व में हमारे नगरों और राज्यों को भी हिस्सा देने का प्रयोग शीघ्र आरम्भ होने वाला है। निस्सन्देह, यह कदम सत्ता को वाशिंगटन से जनता की ओर प्रवाहित करने का प्रथम महान् प्रयास सिद्ध होगा, क्योंकि सत्ता का मूलस्रोत स्वयं जनता ही है। आगामी वर्षों में भी हमें सत्ता को सतत इसी दिशा में प्रवाहित रखना होगा ।

अमेरिका का निर्माण शासन-तन्त्र द्वारा नहीं, प्रत्युत् जनता की प्रतिभा द्वारा हुआ है । इसी लिए, सन् १९७६ के लिए हमारा लक्ष्य एक ऐसा बहुत्ववादी उन्मुक्त अमेरिका होना चाहिए, जहां सरकार व्यक्ति पर आधिपत्य जमाने के बजाय, उसे स्वतन्त्र करेगी, और इस देश में, एक छोर से दूसरे छोर तक, निजी उद्यमों, स्वैच्छिक संस्थाओं और व्यक्तियों में शक्ति, सृजनात्मक सेवा और नागरिक दायित्व की एक नयी लहर का मार्ग प्रशस्त करेगी ।...

(सरकार को) चाहिये कि वह प्रत्येक कार्य को वाशिंगटन से निदेशित करके पहल लेने की प्रवृत्ति का गला घोंटने के बजाय, नये अवसरों के द्वार उन्मुक्त करे, प्रोत्साहन प्रदान करे और पहल को बढ़ावा दे ।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि संघ सरकार वहां भी, जहां किसी समस्या को केवल वही हल कर सकती है, अपने दायित्व से मुंह मोड़ लेगी । इसका अर्थ केवल यह है कि पिछले ४० वर्षों से हो रहे संघ सरकार के अभूतपूर्व विस्तार के बाद, अब समय आ गया है कि सन्तुलन को फिर से कायम किया जाये—अमेरिका में, एक छोर से दूसरे छोर तक, सर्वत्र, राज्यों तथा स्थानीय निकायों को, और उससे भी बढ़ कर, यहां के लोगों को, अधिकाधिक व्यक्ति, अधिकाधिक सत्ता और दायित्व हस्तान्तरित किये जायें ।

श्रम-संहिता

राष्ट्रपति निक्सन की मान्यता है कि अमेरिका की घरेलू कल्याण-व्यवस्था को सुधारना आवश्यक है। वह 'श्रम-संहिता' पर विशेष बल देते हैं। उनका विश्वास है कि अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था को विकसित कर, उसके वर्तमान रूप में लाने का श्रेय एकमात्र व्यक्तिगत प्रयास को ही है; और जो लोग श्रम करते हैं, उन्हें मुक्तहस्त होकर पुरस्कृत किया जाना चाहिए। उन्होंने इन विचारों को अपने चुनाव-भाषणों के दौरान स्पष्ट किया, जिनके तत्सम्बन्धी अंश यहां उद्धृत हैं।

हम पर यह दायित्व है कि हम अपनी सन्तानों के लिए कुछ ऐसी व्यवस्था करें, जो उत्तरोत्तर बढ़ते हुए मूल्यों और कल्याण-अनुदानों के समर्थन के लिए निरन्तर बढ़ते हुए करभार की अपेक्षा श्रेष्ठतर हो । उनके प्रति हम पर यह दायित्व है कि हम कल्याण-व्यवस्था में ऐसा सुधार करें, जिससे इस व्यवस्था पर आश्रित रहने के बजाय, श्रम करना अधिक लाभप्रद प्रतीत हो । पिछले कई वर्षों से इस दिशा में जो प्रगति हुई है, उसे हमें जारी रखना और इन निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना होगा ।...

यदि अमेरिका आज विश्व का आर्थिक चमत्कार बना हुआ है, तो इसका श्रेय उन बातों को नहीं है, जिन्हें सरकार ने जनता के लिए किया है, बल्कि उन समस्त बातों को है, जिन्हें जनता ने स्वयं अपने लिए किया है । यही कारण है कि जब कुछ राजनीतिक नेता आय के पुनर्वितरण की मांग करते हैं—यह चाहते हैं कि श्रम करने वालों की अपेक्षा श्रम न करने वालों को अधिक पुरस्कृत किया जाये—तब यह प्रशासन अमेरिका के नये बहुमत का समर्थन करता है । हम जानते हैं कि कठोर परिश्रम करने वाले व्यक्तियों के त्याग और श्रम से ही अमेरिका का निर्माण हुआ है। हम श्रम को हतोत्साहित और निठल्लेपन को पुरस्कृत करने वालों के विरोधी हैं ।

अमेरिका ऐसा देश नहीं, जहां खैरात बँटती है। यह तो महान् अवसरों और सम्भावनाओं का देश है । हममें से प्रत्येक को आगे बढ़ने के लिए उचित अवसर प्राप्त करने का अधिकार है। परन्तु किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि वह सब कुछ बिना श्रम के और मुफ्त मिलने की आशा करे—निठल्लू बना रहे और दूसरों के श्रम का लाभ उठाये ।...

हमारा विश्वास है कि व्यक्ति की योग्यता एवं उच्चाभिलाषा द्वारा ही उसकी आय का निर्धारण होना चाहिये ।...

हमारा विश्वास है कि जब सरकार व्यक्तियों के जीवन में अत्यधिक हस्तक्षेप आरम्भ कर देती है, जब वह स्वतन्त्र सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया में अनावश्यक रूप से टांग अड़ाना शुरू कर देती है, तब वह निजी उद्यम-प्रणाली को पंगु कर देती है, जिस पर ही श्रमिक का कल्याण निर्भर करता है ।...

हमारे सामने 'श्रम-संहिता' और नयी 'कल्याण-संहिता' में से किसी एक को चुनने का प्रश्न उपस्थित है—'श्रम-संहिता', जिससे इस राष्ट्र के चरित्र का निर्माण हुआ है और नयी 'कल्याण-संहिता', जो अमेरिकी चरित्र को दुर्बल बना सकती है ।

आइये, हम इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करें ।

श्रम-संहिता हमें बतलाती है कि 'बिना त्याग का पुरस्कार' जैसी किसी चीज का अस्तित्व नहीं, और जीवन में प्रत्येक मूल्यवान् वस्तु को प्राप्त करने के लिए थोड़ा बहुत प्रयत्न और त्याग करना अनिवार्य है । श्रम-संहिता के अनुसार, अपनी समस्त इच्छाओं की तत्काल तुष्टि की आशा करना अनुचित और गलत है, जबकि कठोर परिश्रम के बाद उचित पुरस्कार पाने की अपेक्षा करना सही और उचित है ।...

दूसरी ओर, कल्याण-संहिता कहती है कि एक ऐसा रास्ता भी उपलब्ध है, जो अपेक्षाकृत अधिक सुगम है । उसके अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुखमय जीवन की व्यवस्था तत्काल की जा सकती है, और यह करिश्मा सरकार दिखा सकती है । यह संहिता जरूरतमन्दों की सहायता करने विषयक हमारी उचित चिन्ता से कहीं आगे बढ़ कर बात करती है ।...

हमारा चुनाव...स्पष्ट है: श्रम-संहिता चरित्र का निर्माण करती और आत्मनिर्भरता की भावना को पुष्ट करती है; कल्याण-संहिता चरित्र का हनन करके हमें पराश्रयता के घातक दुश्चक्र में फंसाती है ।

मैं तो यही कहूंगा कि यदि अमेरिका को अपने उच्चतम आदर्शों के अनुरूप बनना है, तो उसे उसी रास्ते पर चलना होगा, जिसमें व्यक्ति की योग्यता के लिए स्थान है । ...दृष्टिकोण में यह अन्तर कुछ अंशों का भेद नहीं, बल्कि सिद्धान्तों में अन्तर का द्योतक है। श्रम-संहिता पर आधारित 'श्रेष्ठ जीवन' पर यकीन करने वालों तथा कल्याण-संहिता के अधीन 'सुगम जीवन' के लिए मिथ्या प्रयत्न करने वालों के दृष्टिकोण में जो यह मौलिक अन्तर है, उस पर पर्दा डालने से कोई लाभ नहीं । ■■

विदेशी निजी विनियोजन और विकास

इस लेख में, जो पिछले वर्ष (१९७२ में) अमेरिका के राष्ट्रीय विदेश व्यापार सम्मेलन में दिये गये एक भाषण पर आधारित है, लेखक ने विकासोन्मुख देशों में विदेशी पूंजी के विनियोजन के विषय में अमेरिकी सरकार की नीति की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है।

सिडनी वीनट्रॉब

पहले मैं विकासोन्मुख देशों में निजी विदेशी पूंजी के विनियोजन और विकास के बारे में अमेरिकी नीति के तत्वों और उनके औचित्य का संक्षेप में उल्लेख करना चाहता हूं। फिर, उन विविध विषयों की चर्चा करूंगा, जिनका उल्लेख विदेशी निजी पूंजी-विनियोजन को विकासोन्मुख देशों के लिए हानिकर समझने वाले लोग यदाकदा करते रहते हैं।

अपने तर्कों को सही सन्दर्भ में देने के लिए, यह आवश्यक है कि मैं अमेरिका द्वारा विदेशों में प्रत्यक्ष रूप से विनियोजित पूंजी के कुछ सकल आंकड़े प्रस्तुत करूं।

१९७१ में, अमेरिकी फर्मों द्वारा विदेशों में विनियोजित पूंजी की शुद्ध राशि ७.९ अरब डालर थी, *जिसके कारण अमेरिका के प्रत्यक्ष* विदेशी पूंजी-विनियोजन की राशि, खातों के अनुसार, ८६ अरब डालर हो गयी। १९७१ में, निर्धारित शुद्ध पूंजी-विनियोजन की राशि का दो-तिहाई विकसित देशों में गया और एक-तिहाई विकासोन्मुख देशों के हिस्से में आया।

१९७१ के अन्त में, ८६ अरब डालर के विदेशी पूंजी-विनियोजन का ४१.३ प्रतिशत, यानी ३५.५ अरब डालर निर्माण उद्योगों में; २८.२ प्रतिशत यानी, २४.३ अरब डालर पेट्रोलियम उद्योग में; ७.८ प्रतिशत, यानी ६.७ अरब डालर खनन उद्योग में; और २२.७ प्रतिशत, यानी १९.५ अरब डालर अन्य कार्यों में लगा था।

१९६७ के अन्त से १९७१ के अन्त तक के चार वर्षों में, विदेशों में अमेरिकी पूंजी के विनियोजन की वृद्धि-दर विकसित देशों के लिए ३२.७ प्रतिशत और विकासोन्मुख देशों के लिए २६.९ प्रतिशत रही है। विकासोन्मुख देशों में —पश्चिम एशिया को छोड़ कर, क्योंकि पेट्रोल उद्योग में पूंजी-विनियोजन विशिष्ट कोटि का होता है—अफ्रीका के लिए वृद्धि की दर ६२.१ प्रतिशत, एशिया के लिए ४८.५ प्रतिशत और लैटिन अमेरिका के लिए २२.५ प्रतिशत रही। लैटिन अमेरिका में, केवल कुछ ही देशों को पूंजी-विनियोजन में वृद्धि का लाभ पहुंचा।

इस सम्बन्ध में, अमेरिकी सरकार की अधिकृत नीति का सारांश यह है कि उन्हीं विकासोन्मुख देशों में अमेरिकी पूंजी के विनियोजन को प्रोत्साहन दिया जायेगा, जो इसके लिए उत्सुक होंगे। इसके स्वाभाविक परिणामस्वरूप, अमेरिकी सरकार उन स्थानों में अमेरिकी पूंजी *के विनियोजन को प्रोत्साहन नहीं देगी*, जहां उसकी मांग नहीं है। यदि किसी दूसरे देश का दार्शनिक दृष्टिकोण विदेशी पूंजी-विनियोजन का विरोधी है, तो हुआ करे। दुर्लभ पूंजी के लिए विनियोजन के अवसरों की कमी नहीं है।

हमारी पूंजी के विनियोजन के लिए उत्सुक देशों में ही अपनी पूंजी लगाने की बात करते समय, मेरे मस्तिष्क में उस प्रकार के कार्यक्रम घूम रहे हैं, जैसे ओवरसीज प्राइवेट इन्वेस्टमेण्ट कार्पोरेशन (समुद्रपारीय निजी पूंजी-विनियोजन निगम) द्वारा संचालित हैं। इन कार्यक्रमों की विशेषता यह है कि वे विकासोन्मुख मित्र देशों में कुछ प्रकार के पूंजी-विनियोजनों में निहित जोखिमों को विभिन्न प्रकार की बीमा-व्यवस्थाओं द्वारा कम कर सकते हैं, और साथ ही, गारण्टियों और वित्तीय व्यवस्था की योजनाओं द्वारा पूंजी-विनियोजन को बढ़ावा दे सकते हैं।

निस्सन्देह, विदेशी पूंजी के संग्राहक देशों को

ऐसे आधारभूत नियम बनाने का पूरा अधिकार है, जिनके अनुसार वे निजी विदेशी पूंजी स्वीकार करेंगे; और विनियोक्ता इन नियमों को जांच कर तय करेगा कि ये नियम उसे अनुकूल पड़ते हैं या नहीं, अथवा उसे पूंजी-विनियोजन के अन्य अवसर तलाश करने चाहियें। लेकिन, जब एक बार नियम बन गये और पूंजी लग गयी, तब संग्राहक देश का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह नियमों के अनुसार चले, या फिर, यदि उसे अपने पिछले नियमों में परिवर्तन करना आवश्यक प्रतीत हो, तो क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करे।

सभी देशों को, भले ही यह समझदारी का काम हो या नहीं, विदेशी सम्पत्ति अधिगृहीत करने का अधिकार है, बशर्ते यह अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य से और बिना भेदभाव के किया जाये। अधिग्रहण के साथ-ही-साथ अविलम्ब, पर्याप्त और सहज रूप में प्राप्य मुआवजा देने का भी दायित्व उनका ही है।

कुछ देशों में अधिग्रहण और क्षतिपूर्ति से सम्बद्ध प्रश्न समय-समय पर विवाद के विषय बनते रहे हैं। मेरी राय में, सभी सम्बद्ध पक्षों पर इस बात का दायित्व है कि वे विवादों को न्यूनतम रखने का प्रयत्न करें। विनियोक्ताओं को उन मनोवैज्ञानिक तत्वों के प्रति सचेत रहना चाहिये, जो उनके पूंजी-विनियोजन, उनके व्यवसाय-संचालन और उनकी इस स्थिति से कि वे आर्थिक प्रभाव से सम्पन्न विदेशी हैं, सम्बद्ध हैं। विदेशी पूंजी प्राप्त करने वाले संग्राहक देशों और विनियोक्ता सरकारों को विवाद निपटाने की अधिक निष्पक्ष प्रक्रिया का सहारा लेना चाहिए। जब दोनों में से कोई भी सरकार अपने देशवासियों की राष्ट्रवादी भावनाओं को मुख्यत: इस उद्देश्य से भड़काती है कि विवाद का निष्पक्ष रूप से निपटारा न हो सके, तो इससे कोई लाभ नहीं होता। जब संग्राहक सरकार सम्पत्ति का अधिग्रहण कर लेती है और क्षतिपूर्ति नहीं करती, तो उसे उस दशा में शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं रह जाता, जब विनियोक्ता अपनी रक्षा के लिए आवश्यक उपाय करता है।

मेरे विचार से पूर्वोक्त स्थिति अमेरिकी नीति के सबसे महत्वपूर्ण पहलू को उजागर करती है, जो यह है कि जहां मांग होगी, वहीं हम पूंजी-विनियोजन को प्रोत्साहित करेंगे; हम विनियोजन सम्बन्धी विवादों से बचेंगे, लेकिन हम जानते हैं कि मृत्यु और करों की तरह उन्हें कभी-न-कभी भुगतना ही पड़ेगा; इसलिए, हम ऐसे विवादों के निपटारे के लिए निष्पक्ष प्रक्रिया की, ऐसी प्रक्रिया की जो भावनात्मक आवेश को उभरने न दे, व्यवस्था करना चाहेंगे। यद्यपि मुझे इनमें से एक बात भी अनुचित नहीं लगती, तथापि मैं जानता हूं कि उन विकासोन्मुख देशों के लोग इन मर्यादाओं का विरोध करेंगे, जो निजी विदेशी पूंजी के विरोधी हैं, या जो निष्पक्ष अथवा तृतीय पक्ष के माध्यम से विवादों के निपटारे की व्यवस्था के पक्ष में नहीं हैं।

विकासोन्मुख देशों में आर्थिक और सामाजिक विकास के उद्देश्यों को बढ़ावा देने में अमेरिका का बहुत योग रहा है। हम दूसरे विश्वयुद्ध के बाद, स्वातंत्र्योत्तर-काल में, विकास-सहायता देने की प्रविधि विकसित करने में अग्रणी रहे हैं। हम निर्धन देशों को सम्पन्नतर बनाना चाहते हैं; अपने इस संकल्प को प्रदर्शित करने के लिए हमने अरबों डालर के अनुदान, ऋण और प्राविधिक सहायताएँ दी हैं। स्पष्टत:, हमारी यह दिलचस्पी पूर्णत: परोपकार की भावना से प्रेरित नहीं है। सम्पन्नतर देशों में श्रेष्ठतर मण्डियां उपलब्ध होती हैं, और हमें मालूम है कि दूसरों की तुलना में अधिक सम्पन्न देशों और अत्यधिक निर्धन देशों के बीच निरन्तर संघर्ष की स्थिति में स्थायी स्थिरता की सम्भावना नगण्य होगी।

हमने कभी यह नहीं माना कि सहायता स्वयमेव राष्ट्रों को विकसित कर देगी, या कि सहायता ही साधनों के हस्तांतरण का हर दशा में सर्वोत्तम साधन है। जिन विकासोन्मुख देशों ने आधुनिक विकास की प्रक्रिया को सबसे अच्छी तरह अपनाया है, उनकी प्रवृत्ति वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात द्वारा अपने पांव पर खड़े होने की रही है। निर्यात में वृद्धि और सर्वतोन्मुखी विकास में घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध है। यह बात भी देखी गयी है कि अन्य विनियोक्ताओं की तुलना में विदेशी विनियोक्ता निर्यात की ओर अधिक ध्यान देते हैं। विदेशी विनियोक्ताओं को निर्यात का अनुभव होता है और वे निर्यात की मण्डियों से लाभ उठाने के लिए प्राय: विदेशी संजाल की व्यवस्था करते हैं।

विदेशी विनियोक्ता अपने कारोबार को सफलता के स्तर तक पहुंचाना चाहता है। इसके लिए उसे न केवल पूंजी लगानी पड़ती है, वरन् प्रबन्ध-व्यवस्था और प्राविधिक जानकारी की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। स्थानीय प्रबन्धकों और श्रमिकों को प्रशिक्षित करना कारोबार की उन्नति और दीर्घ जीवन के लिए आवश्यक है। आज के संसार में, अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए विदेशी विनियोक्ता को विभिन्न क्षेत्रों के स्थानीय परिवेश में काम करने की सीख लेना जरूरी है। साथ ही, उसे देशी विनियोक्ताओं की ही तरह, बल्कि उससे भी एक कदम आगे बढ़ कर, स्थानीय परम्पराओं को वरण करना होगा।

संक्षेप में, अमेरिका को विश्वास है कि विदेशी निजी पूंजी-विनियोजन विकास की गति बढ़ा सकता है। वह कितना कारगर हो सकता है, यह अंशत: विनियोक्ता पर, लेकिन मुख्य रूप से संग्राहक देश की सकल आर्थिक और राजनीतिक नीतियों पर, निर्भर करता है।

मैं समझता हूं कि उपरोक्त धारणाएं, सामान्य होने के बावजूद, आम तौर पर स्वीकार्य होंगी। विदेशी पूंजी के आलोचक लागत-लाभ की गणना को अपनी आलोचना का आधार बनाते हैं। यदि मैं यहां कुछ विशिष्ट लागतों का, जिनका प्राय: आलोचकों द्वारा उल्लेख किया जाता है, विश्लेषण करूं, तो शायद वह इस सन्दर्भ में उपयोगी सिद्ध होगा :

विदेशी पूंजी-विनियोजन की वित्तीय लागतें उसके वित्तीय लाभों से अधिक बैठती हैं। अपने सरलतम और बहुप्रचारित रूप में, यह तर्क विकासोन्मुख देशों के भुगतान-सन्तुलन के दो आंकड़ों का उल्लेख करता है। वे हैं : विदेशों से निजी पूंजी-विनियोजन का अन्तर्वाह, और लाभांश के रूप में दी जाने वाली राशियों का अपवाह। आंकड़ों से पता चलता है कि कभी-कभी लाभांश का अपवाह पूंजी के अन्तर्वाह से अधिक बैठ जाता है। मैं नहीं समझता कि इस आलोचना में अधिक जान है, क्योंकि इसमें जानबूझ कर विदेशी पूंजी के कारण निर्यात में हुई वृद्धि और आयात में हुई कटौती को अनदेखा कर दिया जाता है। इसके अलावा, पूंजी-विनियोजन के कई दूसरे ऐसे पहलुओं की भी उपेक्षा कर दी जाती है, जिनका भुगतान-सन्तुलन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। उदाहरण के लिए, विदेशी निजी पूंजी-विनियोजन के परिणामस्वरूप, अन्य बातों के अलावा, प्रौद्योगिकी और प्रबन्ध-कौशल का हस्तान्तरण होता है, रोजगार के नये-नये अवसर उत्पन्न होते हैं, और स्थानीय क्रयशक्ति में वृद्धि होती है। और ये सभी बातें संग्राहक देश के लोगों की आय और खुशहाली को प्रभावित करती हैं। निस्सन्देह, विनियोक्ता लाभ कमाना चाहता है; और इसमें भी सन्देह नहीं कि वह अपेक्षा करेगा कि कालान्तर में उसे अविच्छिन्न रूप से मिलने वाले लाभ की कुल राशि प्रारम्भिक पूंजी-विनियोजन की राशि से अधिक बैठे। जब वह पूंजी का पुन: विनियोजन करता है, तो आशा करता है कि इस विनियोजन से भी उसे लाभ प्राप्त होगा।

विकासोन्मुख देशों को हस्तान्तरित प्रौद्योगिकी प्राय: निकृष्ट कोटि की होती है। यह एक दिलचस्प तर्क है, लेकिन सरल नहीं है, क्योंकि अनेक अर्थशास्त्री इसके विपरीत तर्क देने को प्रस्तुत होंगे। वे कह सकते हैं कि आयातित पूंजी प्राय: आवश्यक सीमा से अधिक उत्कृष्ट होती है, कि इसके कारण श्रमशक्ति के उपयोग में हद से अधिक कमी होती है, और इस तरह विकासोन्मुख देश श्रमशक्ति का, जो दूसरे देशों की तुलना में उन्हें उपलब्ध अधिक अनुकूल स्थिति का एक महत्वपूर्ण तत्व है, पूरा लाभ नहीं उठा पाते। निजी विदेशी पूंजी के संग्राहक देश स्वयं अपनी ही नीतियों—जैसे ब्याज की दर के निर्धारण, आयातित पूंजी पर तटकरीय नियन्त्रण, आदि—द्वारा विदेशी पूंजी को ऐसी उत्पादन-विधियों की ओर निर्दिष्ट

कर सकते हैं, जो थोड़ी-बहुत श्रम-गहन या पूंजी-गहन हों। इस प्रकार, इन देशों को आयातित प्रौद्योगिकी के स्तर के बारे में अपनी बात मनवाने की काफी गुंजाइश रहती है। विनियोक्ता तो लाभ की दर की ओर देखता है और उसकी प्रवृत्ति प्रायः कम परिष्कृत के बजाय, अधिक परिष्कृत प्रौद्योगिकी के हस्तान्तरण के ही पक्ष में रहेगी। अतएव, मुझे विश्वास नहीं है कि यह आलोचना जांच-पड़ताल की कसौटी पर खरी उतरेगी।

निर्णय-केन्द्र संग्राहक देश के बाहर स्थित होता है, इसलिए विकास की योजना पर उसका नियन्त्रण नहीं रह पाता। इस तर्क में कई अनुपूरक तर्क निहित हैं। उदाहरण के लिए, विनियोक्ता विश्व भर में फैले अपने अनेक उद्यमों के लाभ को अधिकतम करने की भावना से उत्प्रेरित होगा, जबकि हो सकता है कि संग्राहक देश को मुख्य रूप से अपने यहां रोजगार में वृद्धि की ही चिन्ता हो, और इस प्रकार, दोनों पक्षों के लक्ष्यों में परस्पर विरोध हो सकता है; इसी प्रकार, हो सकता है कि विनियोक्ता स्थानीय बाजार के लिए ही उत्पादन करना चाहे, जबकि संग्राहक देश निर्यात पर बल दे रहा हो। इस प्रकार के भावात्मक-बौद्धिक तर्क विकसित और विकासोन्मुख, दोनों ही देशों में प्रायः सुने जाते हैं और उन्हें यथावत स्वीकार कर लिया जाता है, हालांकि वे अन्तिम रूप से प्रमाणित नहीं हुए हैं। मेरा अपना अनुभव यह है कि ये तर्क उद्यम के स्वामित्व और देश के नीति-निर्देशन के बीच स्पष्ट भेद नहीं कर पाते हैं, क्योंकि संग्राहक देश का अपने आर्थिक विकास के स्वरूप पर पर्याप्त नियन्त्रण होता है, भले ही किसी विशेष आर्थिक गतिविधि पर उसका स्वामित्व न हो। उत्पादन-क्षमता का स्तर निर्धारित करना, उद्यम का स्थान तय करना, स्थानीय तौर पर निर्मित उत्पादों का प्रतिमान निर्धारित करना—ये नीति-नियन्त्रण के कुछ उदाहरण हैं। मैं ऐसा कोई अन्तर्निहित तथ्य नहीं देख पाता, जिसके कारण समग्र विकास योजना के ढांचे में विदेशी विनियोक्ता पर देशी विनियोक्ता की तुलना में सरकारी निर्देशन का अंकुश कम रहे। यह सच है कि यदि सरकार के निर्देश अधिक कठोर हों, तो देशी विनियोक्ता की तुलना में विदेशी विनियोक्ता अधिक आसानी से अपना कारोबार समेट सकता है, लेकिन मैं यह मान कर चल रहा हूं कि संग्राहक सरकारें, जो विदेशी निजी पूंजी-विनियोजन को प्रोत्साहित करती हैं, उनकी लाभकारिता नष्ट नहीं करना चाहतीं।

कुछ विदेशी विनियोक्ता सरकारों को पलटने की कोशिश में रहते हैं। यदि ऐसा होता है, तो विनियोक्ता की सरकार के साथ भी अनुचित व्यवहार किया जा रहा है। किसी समय इस तर्क में अधिक सत्यता रही होगी, लेकिन शायद अब उसमें अधिक जान नहीं है। ऐसी बात नहीं कि स्थानीय विनियोक्ता सरकारों को पलटने की कोशिश से परे हों। जहां तक विदेशी विनियोक्ताओं का प्रश्न है, मुझे सन्देह है कि उनके सरकार-विरोधी कार्य इतने खतरनाक या व्यापक होते हैं, जितने कि इस आरोप में निर्दिष्ट हैं। मुझे तो इस बात में और भी सन्देह है कि ऐसे प्रयास, यदि किये भी जाते हैं, तो सफल हो सकते हैं।

विदेशी विनियोक्ता स्थानीय मानदण्डों को नहीं समझ पाते। स्थानीय प्रतिद्वन्द्वी विनियोक्ता तो बार-बार यह आरोप लगाते ही हैं, संग्राहक सरकारें भी ऐसा करने में नहीं चूकतीं। मुझे यह आलोचना खोखली मालूम होती है। हो सकता है कि कभी यह तर्क सही रहा हो। किन्तु अब एक सफल विदेशी विनियोक्ता पर यह आरोप सही अर्थों में नहीं लग पायेगा।

विदेशी विनियोक्ता स्थानीय उद्यमियों को प्रशिक्षित करने का यथेष्ट प्रयास नहीं करते। आधुनिक विदेशी विनियोक्ता के लिए ऐसा करना मूर्खतापूर्ण होगा। यहां भी, मुझे लगता है कि यह आरोप आज के सफल विनियोक्ता पर लागू होने के बजाय, अतीतकाल में अधिक संगत रहा होगा।

विदेशी विनियोक्ता स्थानीय मुद्रा-बाजार से ऋण लेते हैं और स्थानीय विनियोक्ताओं के लिए कठिनाइयां पैदा करते हैं। यह सही है कि विदेशी विनियोक्ता अपने साथ तो पूंजी लाते ही हैं, स्थानीय पूंजी का भी उपयोग करना चाहते हैं। किन्तु यह सम्पूर्ण प्रक्रिया स्थानीय पूंजी के स्रोतों को क्षीण करने की जगह, उन्हें विकसित करने में सहायक होती है, जिससे हो सकता है कि लागत की तुलना में लाभ ही अधिक हो, जबकि आरोप इसके ठीक विपरीत है। वस्तुतः, इस विषय पर आवेश में आकर विचार करने के बजाय, उचित यह होगा कि इसका सम्यक् विश्लेषण किया जाय।

यदि विदेशी विनियोक्ता नया व्यवसाय प्रारम्भ करते हों, तो हमें कोई आपत्ति नहीं। लेकिन जब वे पहले से विद्यमान लाभकारी उद्यमों की ही व्यवस्था हस्तगत करते हैं, तो उनका योगदान नगण्य हो जाता है। यह तर्क प्रायः विकसित और विकासोन्मुख, दोनों श्रेणी के देशों में दिया जाता है। यह तर्क-श्रृंखला इस प्रकार चलती है: हस्तान्तरण से सम्प्रति विद्यमान प्रबन्धकीय प्रतिभा में कोई वृद्धि नहीं होती, किसी नयी प्रौद्योगिकी का प्रयोग नहीं किया जाता, और वही काम होता रहता है जो पहले स्थानीय लोग स्वतः किया करते थे। यदि उद्यमों को हस्तगत करने में केवल यही बातें सन्निहित होतीं, तो निश्चय ही ऐसे हस्तान्तरण के विरुद्ध प्रस्तुत तर्क अकाट्य होते। किन्तु, शायद ही कभी बात यहीं तक सीमित रहती हो। उद्यमों के ऐसे हस्तान्तरण के फलस्वरूप, बहुधा—शायद हमेशा ही—उत्पादन का विस्तार होता है, नयी प्रविधियां अपनायी जाती हैं, निर्यात के अतिरिक्त द्वार खुलते हैं और रोजगार बढ़ता है, जो अन्यथा सम्भव न होता। हस्तान्तरण के पक्ष और विपक्ष में शायद सामान्य रूप से कोइ निर्णय देना उचित न होगा। वस्तुतः, उचित यही होगा कि प्रत्येक मामले पर अलग-अलग विचार किया जाय।

मैं स्वीकार करता हूं कि मैंने एक बहुत बड़े विषय को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत किया है। किन्तु मैंने इस विषय को बिना तोड़े-मरोड़े, सरलतम रूप में, प्रस्तुत करने का यत्न किया है। पूंजी दुर्लभ वस्तु है—अपने उपयोग के अवसरों की तुलना में तो कहीं अधिक दुर्लभ है। निजी पूंजी, चाहे देश में हो या विदेश में, वहीं जायेगी, जहां यथासम्भव अधिकतम लाभ मिलने की सम्भावना होगी और जोखिम कम-से-कम होंगे। जहां नयी पूंजी जायेगी, वहां प्रबन्धकीय प्रतिभा भी अवश्य जायेगी, जो पूंजी से भी अधिक दुर्लभ है। एक सरकार और एक राष्ट्र के रूप में, अमेरिकावासियों ने पूंजी और प्रतिभा को विकासशील देशों में जाने के लिए प्रोत्साहित किया है, क्योंकि वे आर्थिक विकास, रोजगार और सामाजिक उत्थान की गति बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

कई लाभकारी वस्तुओं की तरह ही, निजी पूंजी-विनियोजन भी कई बार समस्याएं खड़ी कर सकता है—ऐसी समस्याएं, जो प्रायः सभी संग्राहक देशों में विदेशी पूंजी के परिणामस्वरूप उत्पन्न उच्चतर आय और विदेशी स्वामित्व वाले उद्योग के विरुद्ध विद्रोह करने वाले स्थानीय स्वाभिमान के बीच विद्यमान संघर्ष से सम्बद्ध हैं। हमारा विचार है कि सद्भावना द्वारा इन संघर्षों को सीमित रखा जा सकता है और उनके अतीव हानिकारक प्रभावों को कम किया जा सकता है। ■■

लेखक के विषय में: सिडनी वीनट्रॉब अमेरिका के अन्तर्राष्ट्रीय वित्त और विकास सम्बन्धी उप-सहायक विदेश मन्त्री हैं।

दायें : डायोडों के एक पुंज पर लगाये गये रोगन को सुखाने के लिए अति-रक्त दीप का प्रयोग किया जाता है। डायोड दो संवाहक तारों से युक्त ट्रांजिस्टर होते हैं।

सबसे नीचे, दायें : त्रुटिपूर्ण ट्रांजिस्टर-सेट प्रदर्शित हैं। काण्टिनेण्टल डिवाइस की कठोर गुण-नियन्त्रण प्रणाली के अधीन, नित्य हजारों संघटक या पुर्जे रद्द कर दिये जाते हैं।

सबसे नीचे, बायें : एक सिलिकोन ट्रांजिस्टर का सूक्ष्म-छायाचित्र। पर्दे पर प्रक्षिप्त डिजाइन ट्रांजिस्टर की पपड़ी (चिप) कहलाती है।

सबसे नीचे, बीच में : सिलिकोन की टिकियों को भट्ठी की अति-तप्त नली में पकाते हैं।

नीचे : जो वस्तु साही की तरह दीखती है, वह डायोड के संघटकों का समूह है।
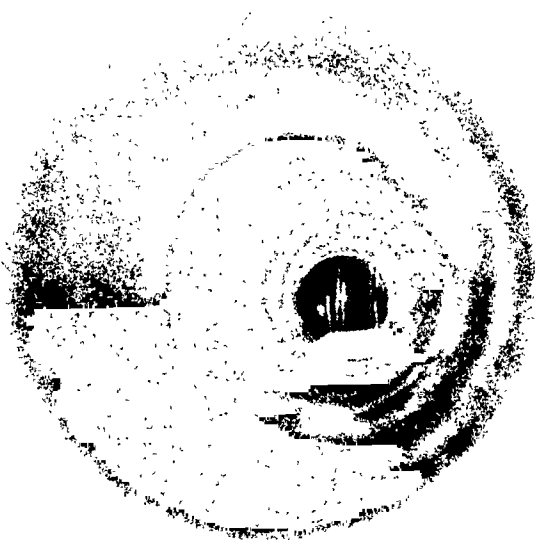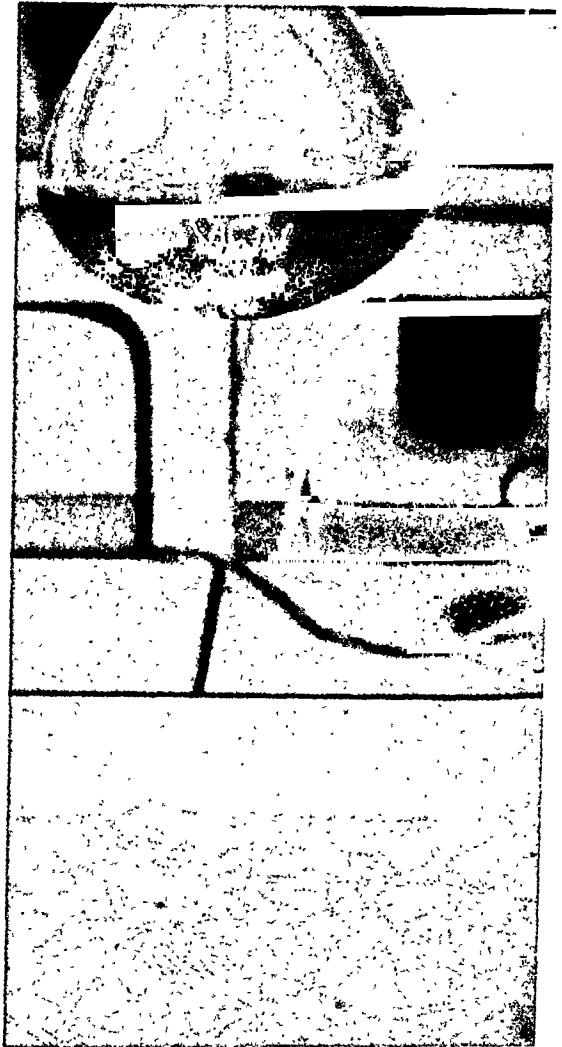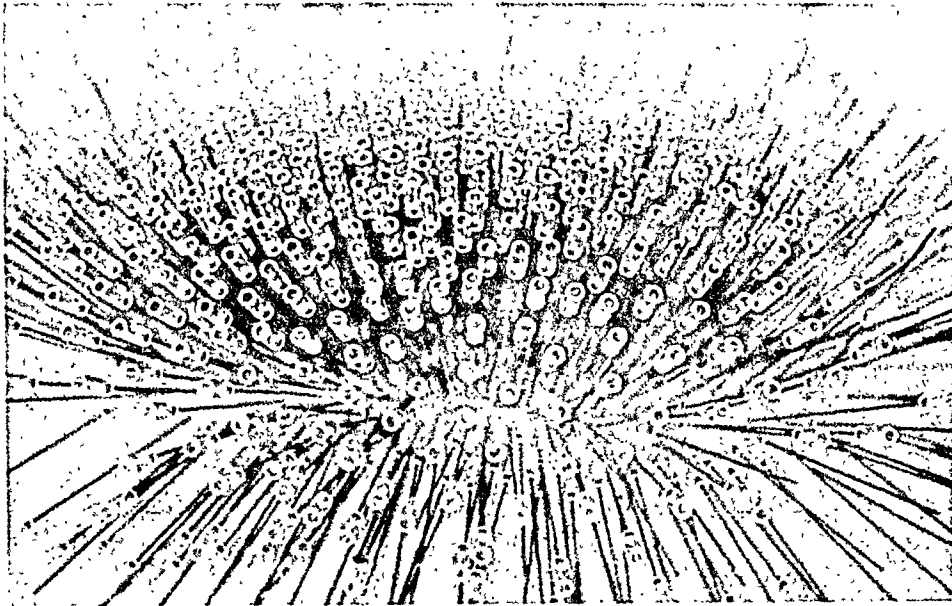
ट्रांज़िस्टरों का अद्भुत संसार
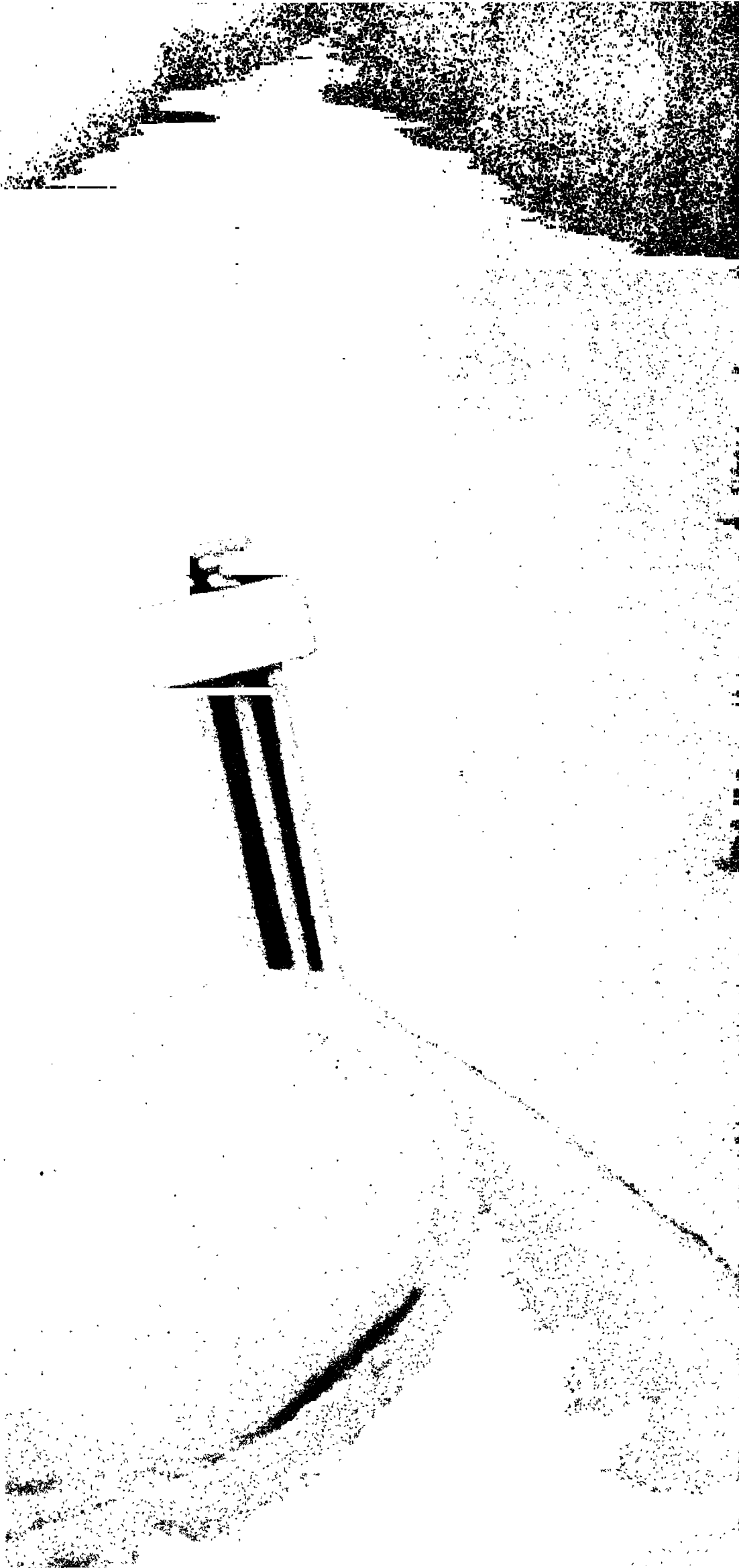
जहाँ सामान्य मानवीय आकार-प्रकार पर्वताकार प्रतीत हों, वह स्थान अति लघुकाय, नन्हें-मुन्ने, प्राणियों का ही संसार कहा जायेगा। ट्रांजिस्टरों का संसार ऐसा ही है, क्योंकि यहाँ आपका वास्ता सिलिकोन की टिकियों से पड़ता है, जिनकी मोटाई एक इंच के १५,००० वें भाग, यानी पूर्ण बिन्दु के दशमांश, के बराबर है। और, अन्तिम उत्पाद—तैयार ट्रांजिस्टर—प्रायः मटर के आकार से बड़ा नहीं होता, जो कालान्तर में उत्तरोत्तर छोटा ही होता जायेगा। काण्टिनेण्टल डिवाइस इण्डिया, लिमिटेड, के नयी दिल्ली स्थित कारखाने में लिये गये इन चित्रों में, जो इन पृष्ठों पर प्रस्तुत हैं, ट्रांजिस्टर के हिस्सों के विलक्षण प्रतिरूप धातु की चमक और भट्ठी की तमक से मिल कर एक अद्भुत संसार की सृष्टि कर रहे हैं। ट्रांजिस्टर की क्षमताएं भी इतनी ही प्रभावोत्पादक हैं, जो वस्तुतः अन्तहीन हैं। इनके बिना, मनुष्य चाँद पर नहीं पहुंच सकता था। न तो आज के अति सुसंहत संगणकों का उद्योग विकसित हो पाता और न ही चश्मे की कमानी में लग सकने वाले श्रवण-सहायक यन्त्र बन पाते। इस चमत्कारी, अत्यन्त लघु, उपकरण का भविष्य अविश्वसनीय सम्भावनाओं से युक्त है, क्योंकि इसका आकार जितना छोटा होता जाता है, आधुनिक प्रौद्योगिकी में उसकी भूमिका उतनी ही गुरुतर होती जाती है।

कैमरे की लेंस के सामने प्रस्तुत, त्रिसूत्री सीसों से संयुक्त एक ट्रांजिस्टर, जो उपयोग में लाये जाने के लिए बन कर पूरी तरह तैयार है।

वी. एस. नन्दा

छायाचित्र : अविनाश पसरीचा

सूक्ष्म चमत्कारी उपकरण तैयार करने वाले कोमल हाथ

सूक्ष्म कर्मशीलता, निपुणता और धैर्य —ये सूत्रवत शब्द काण्टिनेण्टल डिवाइस की प्रविधि-प्रवीणा बालाओं का मार्ग-निर्देशन करते हैं। अपने सूक्ष्मवीक्षण यन्त्रों के सामने बैठी ये तरुणियाँ सावधानीपूर्वक छोटे-छोटे टुकड़ों का परीक्षण, उपचारण और संयोजन करती हैं, और मकड़ी के जाले की तरह बारीक और हलके तारों को जोड़ती हैं। इस तरह तैयार किये गये लाखों ट्रांजिस्टर सफरी रेडियो सेटों, संचार-उपकरणों और यन्त्र-निर्माण जगत में व्यापक रूप से प्रयुक्त होते हैं।

ट्रांजिस्टर क्या है? कुछ पदार्थ, जैसे धातुएं, बिजली के उत्तम संवाहक होते हैं। कुछ अन्य पदार्थ, जैसे काँच और रबर, कुसंवाहक होते हैं। जर्मेनियम और सिलिकोन नामक तत्व इनके बीच की श्रेणी के हैं, इसलिए अर्द्ध-संवाहक कहे जाते हैं। ट्रांजिस्टर की न्यष्टि का निर्माण एक तीन परतों वाले स्फटिक से होता है, जो अर्द्ध-संवाहक है। यदि इस स्फटिक को विशेष रूप से उपचारित और तारों से संयोजित कर दिया जाये, तो वह संदेश को ५० से ४०,००० गुना तक सम्वर्द्धित कर सकता है।
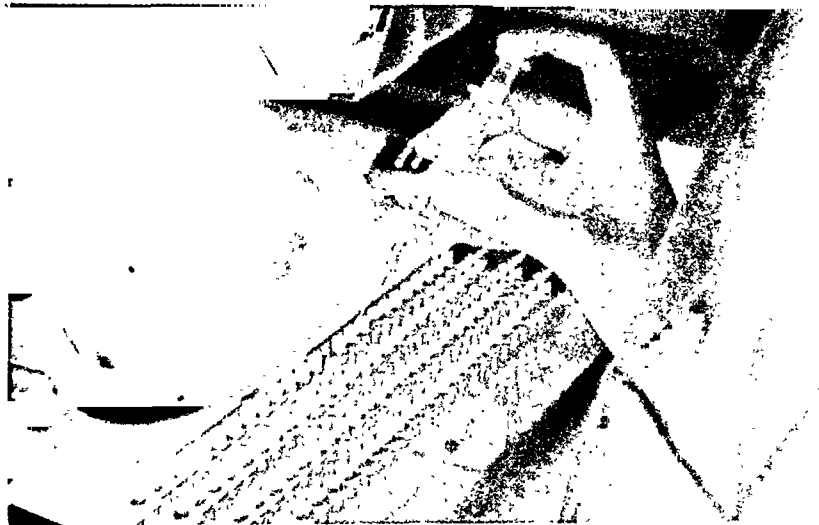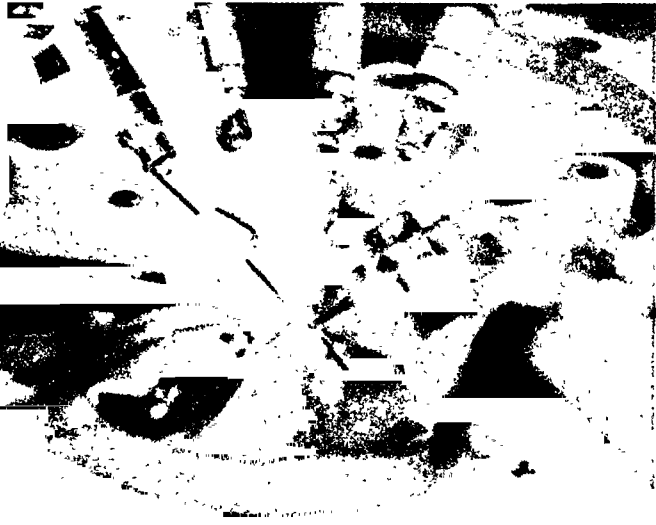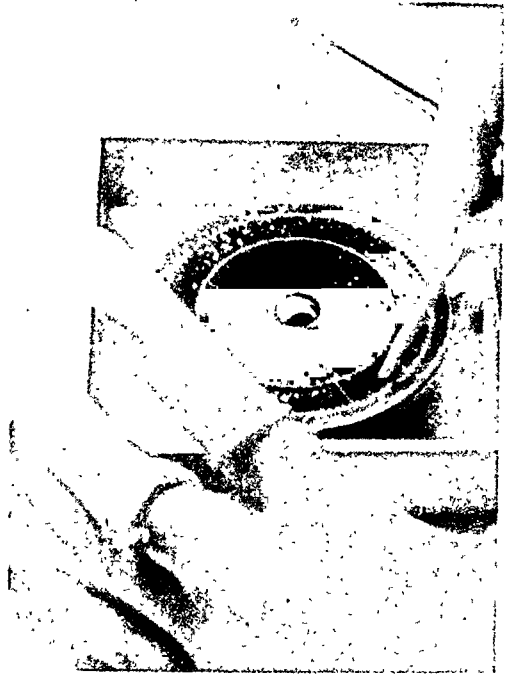
सबसे ऊपर : ट्रांजिस्टर के प्रत्येक सांचे का चाक्षुष्-निरीक्षण किया जाता है और उसे सही स्थिति में रखा जाता है।

ऊपर, बायें : ट्रांजिस्टर की एक पपड़ी (चिप) के वैद्युतिक प्राचल या कार्य-निष्पादन गुण की जांच की जा रही है।

ऊपर, दायें : ट्रांजिस्टरों के निर्माण के दौरान जांच की एक उत्तरवर्ती अवस्था दिखायी गयी है।

दायें : सिलिकोन टिकियों को सूक्ष्म नियन्त्रण-व्यवस्था से युक्त भट्ठियों में विधायित या उपचारित करने के लिए १,२०० अंश सेण्टीग्रेड का तापमान निरन्तर बनाये रखना पड़ता है, जबकि भट्ठी को चालू रखने के लिए वातानुकूलित परिवेश बनाये रखना अनिवार्य है।

सबसे ऊपर : मुहरवन्द डायोड की जांच की जा रही है—निर्माण के दौरान प्रत्येक हिस्से के विभिन्न गुणों की ८७ बार जांच की जाती है।

बीच में : ट्रांजिस्टरों के निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न सुकोमल उंगलियां।

सबसे नीचे : विधायन के लिए ट्रांजिस्टर-सेट रैक में संजो रखे गये हैं।

दिल्ली की नरैना औद्योगिक बस्ती में, मुख्य राजमार्ग से कुछ गज़ हट कर, एक विशाल आधुनिक भवन है। इसका प्रभावशाली अग्रभाग, जो घास की एक तंग पट्टी से घिरा हुआ है, भीतर की गतिविधियों के बारे में कोई आभास नहीं देता। लेकिन, जैसे ही आप एक उपकक्ष में अपने जूते उतार कर रबर के तल्ले वाली साफ स्लीपर और श्वेत लबादा पहनते हैं, आप में जिज्ञासा और आश्चर्य की भावना भरने लगती है। क्या आप कोई विचित्र, पवित्र, अनुष्ठान देखने जा रहे हैं?

एक द्वार खुलता है और आप एक विशाल वातानुकूलित हाल में प्रविष्ट होते हैं, जो किसी भी अस्पताल के स्वच्छतम शल्यक्रिया-कक्ष से भी अधिक स्वच्छ है। सफेद कोट पहने दर्जनों बालिकाएं, जिनमें अधिकांश अभी किशोरावस्था में हैं, सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र के सामने बैठी पदार्थ के नन्हें-नन्हें टुकड़ों का परीक्षण, उपचारण और संयोजन कर रही हैं। सफेद रंग के ही वस्त्र पहने कुछ पुरुष निरीक्षक उनके काम को निर्देशित और समन्वित करते दिखायी दे रहे हैं। इस कार्यशाला में, जहां शान्तिमय कार्यक्षमता और व्यवस्थाप्रियता का वातावरण व्याप्त है, गहन एकाग्रता और अधिकतम परिशुद्धता ही काम की कसौटी है। जो कुछ आप देख रहे हैं, वह ट्रांजिस्टरों और डायोडों के निर्माता, काण्टिनेण्टल डिवाइस इण्डिया, लिमिटेड, की नित्यचर्या है।

जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था कि भारत बैलगाड़ी के युग से निकल कर बाइसिकिल के युग में प्रवेश कर रहा है। निस्सन्देह, बैलगाड़ी और बाइसिकिल आज भी हमारे जन-जीवन के अंग हैं, किन्तु अब यह देश औद्योगिक और प्रौद्योगिक प्रगति के क्षेत्र में विकसित देशों की बराबरी की ओर बढ़ रहा है; और, कई अन्य उद्योगों की तरह दिल्ली का यह उद्योग भी, जिसका उल्लेख अभी किया गया है, अर्थ-व्यवस्था को नया स्वरूप देने में हाथ बँटा रहा है। औद्योगिक क्षेत्र की उल्लेखनीय प्रगति में विदेशी कम्पनियों के सहयोग से बहुत सहायता मिली है। भारतीय उद्यमियों ने अनेक संयुक्त उद्योग स्थापित किये हैं, जिनमें विदेशों की प्राविधिक जानकारी और पूंजी ने स्थानीय साधनों तथा प्रबन्धकीय और संगठनात्मक प्रतिभा से संयोजित होकर उद्योगों को कार्य-कुशलता और लाभकारिता प्रदान की है।

इसी तरह के एक प्रबुद्ध भारतीय उद्यमी हैं दिल्ली के गुरप्रीत सिंह। हाथोर्न, कैलिफोर्निया, की टेलीडाइन सेमीकण्डक्टर कम्पनी के सहयोग से उन्होंने सिलिकोन ट्रांजिस्टर और डायोड बनाने के लिए काण्टिनेण्टल डिवाइस नामक एक भारतीय कम्पनी स्थापित की है। इन सूक्ष्म विद्युदाणविक (इलेक्ट्रानिक) संघटकों या पुर्जों का निर्माण करने के लिए उन्नत प्रौद्योगिकी और विशिष्ट प्रकार की प्रविधियों की आवश्यकता होती है। इसलिए, जब गुरप्रीत सिंह ने विद्युदणु-उद्योग की इस शाखा में हाथ डालने का निर्णय किया, तो उन्होंने अमेरिका में एक सहयोगी तलाशा और वह मिल भी गया। अमेरिका में ही, २५ वर्ष पूर्व, तीन नोबेल पुरस्कार-विजेता अमेरिकियों ने ट्रांजिस्टर की खोज की थी। वे थे—वाल्टर ब्रैटेन, जॉन बारडीन और विलियम शाकली।

ट्रांजिस्टर, जैसा कि बहुधा लोग जानते हैं, वैकुअम ट्यूब का स्थानापन्न है। इसकी सहायता से विद्युत् धारा के प्रवाह और उसकी शक्ति को, यान्त्रिक स्विचों या भारी और स्वल्पगति उपकरणों की सहायता के बिना ही, नियन्त्रित किया जा सकता है। अपने आकार की लघुता की दृष्टि से ट्रांजिस्टर एक चमत्कार ही है—वह मटर के दाने से बड़ा नहीं होता। किन्तु, उसमें निविष्ट शक्ति को ४०,००० गुना तक बढ़ा देने की क्षमता होती है। डायोड भी प्रायः ट्रांजिस्टर की ही तरह काम करता है; अन्तर केवल यह है कि उसकी क्षमता अधिक सीमित होती है।

काण्टिनेण्टल डिवाइस कम्पनी में, जो १९६४ में आरम्भ हुई थी, कच्ची सामग्री के विधायन या उपचारण के लिए प्राविधिक निर्देशन देने में अमेरिकी सहायता विशेष रूप से मूल्यवान सिद्ध हुई है। इससे भारतीय कम्पनी को अमेरिका के शोधकार्य और अधुनातन निर्माण-विधियों का भी लाभ मिला है। अमेरिका के प्रविधि-विशेषज्ञों ने दिल्ली कारखाने का निर्माण-कार्य अपनी देखरेख में कराया, लेकिन पूरा कारखाना आरम्भ से ही भारतीय इन्जिनियरों द्वारा संचालित होता रहा है।

कार्यशाला का अधिकतर साज-सामान, जिसमें बिजली की भट्टियां भी शामिल हैं, कारखाने के इन्जिनियरों द्वारा तैयार आकल्पनाओं के आधार पर भारत में ही बना है। इस कम्पनी में लगभग ४०० व्यक्ति काम करते हैं। उनमें ३८ इन्जिनियर, जिनमें से कुछ ने अमेरिका में प्रशिक्षण प्राप्त किया है, और २०० महिला कर्मचारी भी शामिल हैं। अति लघु आकार की सामग्रियों के रख-रखाव और सूक्ष्म विधायन के लिए, जो कि ट्रांजिस्टर की निर्माण-प्रक्रिया के अंग हैं, पुरुषों की जगह स्त्रियों को प्राथमिकता दी जाती है।

काण्टिनेण्टल डिवाइस भारत में सिलिकोन ट्रांजिस्टर बनाने वाली पहली कम्पनी थी और इस समय भी ट्रांजिस्टर और डायोड के उत्पादन में 'भारत इलेक्ट्रानिक्स' के बाद उसी का स्थान है। आधारभूत अर्द्ध-संवाहक के रूप में सिलिकोन जर्मेनियम नामक धातु से, जो पहले ट्रांजिस्टर बनाने के काम आती थी, कई अर्थों में श्रेष्ठतर है। शुद्ध स्फटिक की २ इंच व्यास वाली गोल छड़ों की शक्ल में इसका आयात किया जाता है। फिर, तराश कर अत्यन्त पतली टिकियां (वेफर) तैयार की जाती हैं, जिनकी मोटाई एक इंच के १५,००० वें भाग के बराबर होती है। प्रत्येक टिकिया से ५०० से २०,००० तक की संख्या में ट्रांजिस्टरों के निर्माण के लिए सामग्री प्राप्त होती है।

निर्माण की प्रविधियां बहुत पेचीदा हैं। टिकिया की सतह को बहुत सावधानी से तैयार करना पड़ता है, और दूषण से बचाना पड़ता है—धूल का लघुतम कण भी स्फटिक की रचना और उसकी गुणात्मकता को प्रभावित कर सकता है। इसीलिए अधिकतम स्वच्छता आवश्यक है। उच्च कोटि की सतह प्राप्त करने के लिए विद्युत्-रासायनिक विधि से उसे निक्षारित किया जाता है, ताकि सभी क्षतिग्रस्त पदार्थ निकल जायें।

काण्टिनेण्टल डिवाइस की कार्यशाला सम्बन्धी समस्याएं जिन प्रक्रियाओं से जुड़ी हुई हैं, उनमें ट्रांजिस्टरों के लिए सन्तोषजनक धनात्मक-ऋणात्मक संगमों का निर्माण करने; टिकियों पर जमे आवरण की मोटाई नापने; सम्पर्क-बिन्दुओं या जोड़ों की ढलायी करने, उन पर अल्युमिनियम की कलई चढ़ाने और उन्हें तारों से जोड़ने; और, सबसे बढ़ कर, उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर निरीक्षण और गुणात्मक नियन्त्रण की व्यवस्था करने जैसे कार्य शामिल हैं। निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में, अनेक बार, विद्युदाणविक प्रक्रिया-नियन्त्रकों का प्रयोग किया जाता है। फिर भी, जैसा कि गुरप्रीत सिंह ने बताया, "लाखों ऐसी जगहें हैं, जहां हमसे गलती हो सकती है।" अन्तिम परीक्षण के समय, तैयार माल के प्रत्येक समूह के नमूने लेकर उनकी पुनः व्यापक जांच-पड़ताल और सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है, और तापमान को तेजी से घटा-बढ़ा कर उन्हें तापीय आघात पहुंचाया जाता है। उच्च कोटि की विश्वसनीयता वाले उपकरणों के टिकाऊपन का विशेष परीक्षण किया जाता है, ताकि इस बारे में आश्वस्त हुआ जा सके कि वे लाखों घण्टों तक सक्षमतापूर्वक कार्य करते रहेंगे।

सम्भव है कि साधारण व्यक्ति को ये जटिल विशिष्ट कार्य-विधियां और प्रविधियां सहज रूप से समझ में न आयें, लेकिन पेशे से इन्जिनियर न होते हुए भी प्रबन्ध-निदेशक गुरप्रीत सिंह उनसे पूर्णतः परिचित प्रतीत होते हैं। उन्होंने स्नातक की उपाधि के लिए सेण्ट स्टीफेन्स कालेज, दिल्ली, में अर्थशास्त्र का, और स्नातकोत्तर उपाधि के लिए वाशिंगटन विश्वविद्यालय, सेण्ट लुई, मिसौरी, में 'व्यावसायिक प्रशासन' विषय का अध्ययन किया था। ट्रांजिस्टरों और उनके निर्माण का ज्ञान उन्होंने पूर्णतः स्वाध्याय से अर्जित किया है। अब भी, जब कभी उन्हें थोड़ा-सा अवकाश मिल जाता है, वह विद्युदणु-विज्ञान (इलेक्ट्रानिक्स) सम्बन्धी प्राविधिक प्रकाशन पढ़ते रहते हैं। लम्बे कद, आकर्षक व्यक्तित्व और ३९-वर्ष की आयु वाले गुरप्रीत सिंह, जिनके केश समय से पहले ही सफेद हो चले हैं, उत्कट स्फूर्ति, असामान्य सतर्कता और असीम दूरदृष्टि से सम्पन्न प्रतीत होते हैं।

यद्यपि उनकी कम्पनी इस समय साल में कुल मिला कर एक करोड़ रुपये का माल बेच लेती है, फिर भी गुरप्रीत सिंह आत्मतुष्ट नहीं हैं। उनके पास विस्तार की महत्वाकांक्षी योजनाएं हैं। हाल ही में उन्होंने एक अन्य अमेरिकी कम्पनी, हैमलिन इन्कार्पोरेटेड, से रीड-स्विच और रीड-रिले बनाने के लिए सहकार-समझौता किया है। ये उपकरण इलेक्ट्रानिक की-बोर्डों, टेलीफोन स्विच-बोर्डों और चोरीसूचक अलार्मों में प्रयुक्त होते हैं। इन उपकरणों का उत्पादन शीघ्र ही, सम्भवतः, अगले दो-तीन महीनों में, आरम्भ हो जायेगा।
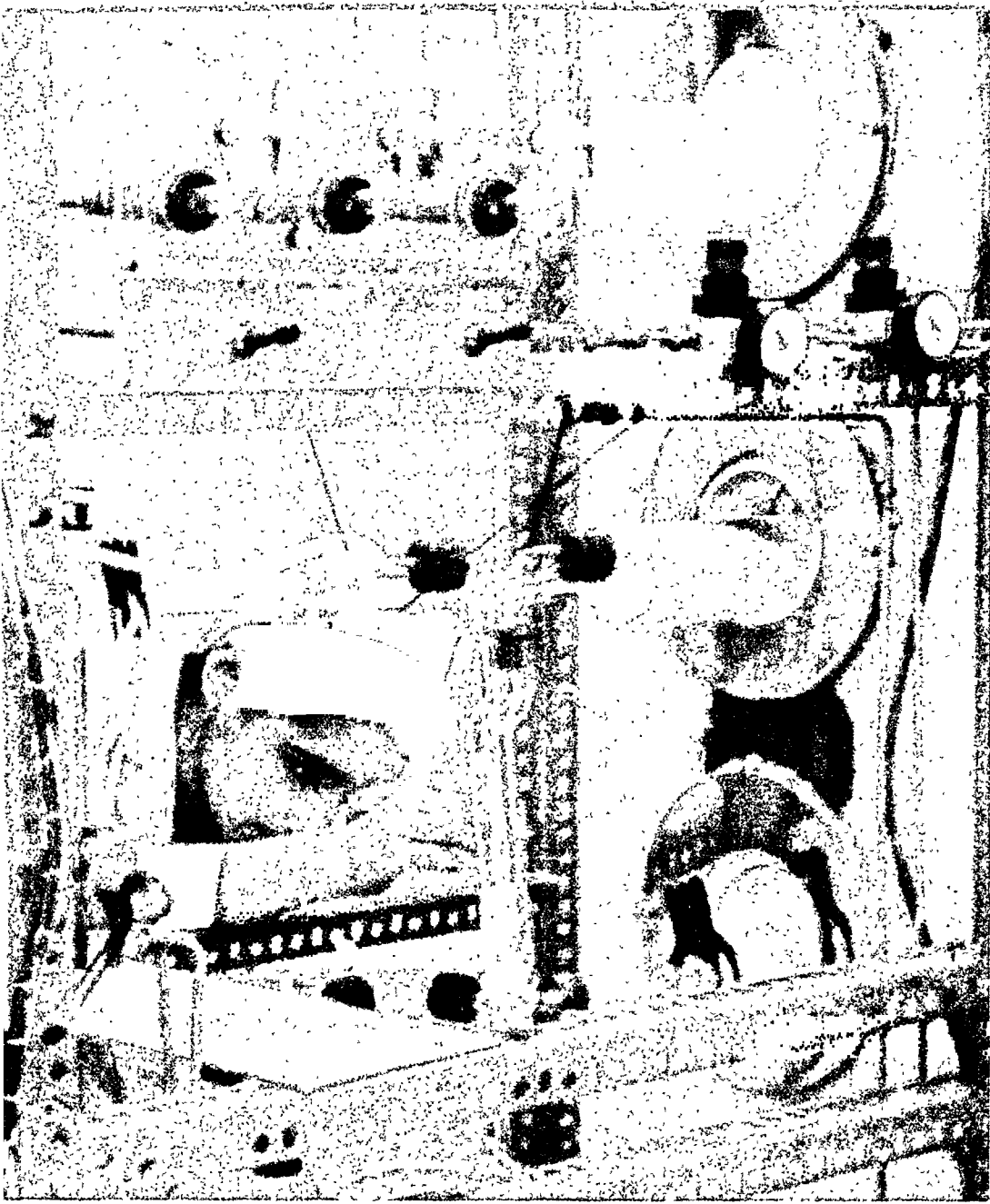
गुरप्रीत सिंह ने अपनी फर्म की स्थापना अमेरिका की एक फर्म, टेलीडाइन सेमीकण्डक्टर कम्पनी, के सहयोग से की है, जो ट्रांजिस्टर सम्बन्धी प्रौद्योगिकी और उत्पादन के क्षेत्र में अधुनातन अमेरिकी प्रगति से उनका सम्पर्क बनाये रखती है।

बायें : जटिल यन्त्र द्वारा भट्ठी की नलिकाओं में विजातीय द्रव्यों के प्रवाह की जांच की जा रही है।

नीचे : प्रबन्ध-निदेशक गुरप्रीत सिंह।

इस समय काण्टिनेण्टल डिवाइस देश में ट्रांजिस्टरों और डायोडों की एक-चौथाई आवश्यकता पूरी करती है। इनकी खपत मुख्यतः मनोरंजन, संचार और उपकरण-संयोजन के क्षेत्रों में होती है। इसके ग्राहकों में, प्रतिरक्षा विभाग, भारतीय टेलिफोन उद्योग, भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र, थुम्बा विषुवतीय राकेट-प्रक्षेपण केन्द्र के अतिरिक्त, फिलिप्स, मर्फी और बुश समेत अनेक संगणक, टेलिविजन और रेडियो-निर्माता भी शामिल हैं। कारखाने से बन कर निकलते समय ट्रांजिस्टरों का मूल्य, श्रेणी और गुण के अनुसार, प्रति इकाई १.५० से लेकर ४० रुपये तक होता है। वर्तमान उत्पादन का ३० से ४० प्रतिशत भाग निर्यात के लिए प्रयुक्त हो रहा है। इसका काफी बड़ा अंश अमेरिका को और कुछ जापान तथा नीदरलैंड को भेजा जाता है। इस तथ्य में, कि कम्पनी के उत्पादों का निर्यात अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों को होता है, जो प्रत्यक्ष विरोधाभास निहित है, उसकी व्याख्या करते हुए, गुरप्रीत सिंह ने बताया कि श्रम पर व्यय सम्बन्धी उनकी लागत विदेशी निर्माताओं की तुलना में बहुत कम बैठती है, इसलिए वह अपने कारखाने की अतिरिक्त उत्पादन-क्षमता का लाभ उठाने में समर्थ हैं।

यह आधुनिक व्यवसाय अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति भी सचेत है। कर्मचारियों की सामान्य भलाई का ध्यान रखने के अलावा, गुरप्रीत सिंह और उनके सह-निदेशकों ने भारत के युवा विद्युत्-अभियन्ताओं को प्रोत्साहन देने के लिए एक छात्रवृत्ति की व्यवस्था की है। इस योजना के अधीन, पांचों भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों में से प्रत्येक से विद्युदणु-विज्ञान के एक वरिष्ठ छात्र को उसकी शिक्षा के अन्तिम वर्ष में दो सौ रुपये मासिक की छात्रवृत्ति मिलती है।

गुरप्रीत सिंह के लिए, जैसा कि वह स्वयं कहते हैं, विद्युदणु-विज्ञान उनके जीवन का तौर-तरीका बन गया है। वह भारत में इस उद्योग के भविष्य के बारे में पूरी तरह आश्वस्त हैं। वह कहते हैं: "तीव्र गति से परिवर्तित हो रही प्रौद्योगिकी के संसार में, विद्युदणु-उद्योग अधिकतम गतिशील उद्योगों में एक है। यदि प्रशिक्षित इन्जिनियरी प्रतिभा उपलब्ध होती रहे, तो भारत में इस उद्योग के विकास की सम्भावनाएं अपार हैं।" ■■

लेखक के विषय में : 'स्पैन' के भूतपूर्व प्रबन्ध-सम्पादक, बी० एस० नन्दा, एक स्वतन्त्र श्रमजीवी पत्रकार हैं, जिनके लेख 'इलस्ट्रेटेड वीकली' तथा अनेक अन्य भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः प्रकाशित होते रहते हैं।

भारत-अमेरिकी व्यापार पर राजदूत मोयनिहन के विचार

राष्ट्रपति निक्सन ने देश की व्यापारिक स्थिति में सुधार के लिए अप्रैल १६७३ में जिस समय अमेरिकी कांग्रेस में अपने प्रस्ताव पेश किये, उससे केवल दो दिन पूर्व, अमेरिकी राजदूत डैनियल पी० मोयनिहन ने बम्बई में भारत-अमेरिकी वाणिज्य-मण्डल की एक सभा में अभ्यागत की हैसियत से भाषण किया। उस भाषण में, डा० मोयनिहन ने भारतीयों और अमेरिकियों के बीच उन पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा की, जो आव्रजन, छात्रों के आदान-प्रदान तथा पर्यटन के फलस्वरूप विकसित हुए हैं। उसके बाद, उन्होंने भारत और अमेरिका के बीच बढ़ते हुए व्यापारिक सम्बन्धों का विस्तार से उल्लेख किया, और आज के युग में व्यापार के उन्मुक्त प्रवाह के मार्ग की बाधाओं को यथासम्भव दूर करने की आवश्यकता पर बल दिया। उनके बम्बई-भाषण के जो अंश इस विषय से सम्बद्ध हैं, उन्हें यहां पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

निस्सन्देह, (भारत-अमेरिकी) विनिमय-सम्बन्धों में सबसे महत्वपूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध हैं। लेकिन, यहां मैं उन बातों की चर्चा नहीं करूंगा, जिन्हें भारत और अमेरिका के लोग अच्छी तरह जानते और समझते हैं। इसके बजाय, मैं उन बातों की चर्चा करूंगा, जिन्हें वे उतनी अच्छी तरह नहीं जानते।

उदाहरण के लिए, अमेरिका में लोगों को इस बात की अच्छी जानकारी नहीं है कि व्यापार में भारत का सबसे बड़ा भागीदार अमेरिका है। १९७२ में, हमने भारत के कुल निर्यात का १७.५ प्रतिशत अंश खरीदा, जो किसी भी अन्य राष्ट्र से अधिक था।

मुझे विश्वास है कि भारत के लोग इस तथ्य से भलीभांति अवगत हैं। लेकिन, अगर वे इस तथ्य से कि अमेरिका के साथ भारत का व्यापार अनुपात में निरन्तर बढ़ रहा है, उतनी अच्छी तरह अवगत नहीं हैं, तो मुझे बहुत आश्चर्य नहीं होगा। पिछले दशाब्द में, जहां भारत के समग्र आर्थिक विकास की औसत दर लगभग ३.७ प्रतिशत रही और समग्र व्यापार में औसतन ४.५ प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई, वहां अमेरिका को होने वाले भारत के निर्यात में प्रतिवर्ष लगभग ५.४ प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई, जो भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि की दर के लगभग आधे के बराबर है। इसके अतिरिक्त, अमेरिका के साथ व्यापार में अब भारत काफी लाभ में रहता है, क्योंकि व्यापार-सन्तुलन उसके अधिक अनुकूल है।

हम सब को यह आशा करनी चाहिए कि वस्तुओं, सेवाओं तथा व्यक्तियों का यह विनिमय निरन्तर बढ़ता रहेगा। हमारे दोनों देशों के भावी सम्बन्धों के लिए कोई और चीज़ इससे अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।

अमेरिका चाहता है कि यह विनिमय बढ़े। अभी इसी बुधवार (४ अप्रैल) को, विदेश-व्यापार सम्बन्धी मामलों में राष्ट्रपति के सलाहकार, माननीय पीटर एम. फ्लैनिगन, ने कांग्रेस की एक समिति को बताया कि प्रशासन के. . . .व्यापार-विधेयक में, निश्चय ही, यह अनुरोध किया जायेगा कि उसे भारत जैसे देशों को भी सामान्य अधिमान प्रदान करने का अधिकार दिया जाये। उन्होंने यह भी कहा कि अमेरिकी प्रशासन ऐसे अधिमान प्रदान करने के लिए उत्सुक है।

लेकिन, एक बात हमें स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये। अमेरिका को अपने विदेश-व्यापार में घाटा रहता है, जिसकी उसे चिन्ता होनी अनिवार्य है। अगर हम निर्यात नहीं करेंगे, तो आयात भी नहीं कर सकेंगे। और, यदि हमारी वस्तुओं और सेवाओं के विरुद्ध तटकर सम्बन्धी या तटकर-इतर बाधाएं खड़ी की जायेंगी, तो हम निर्यात नहीं कर सकते। विश्व में इस प्रकार की अत्यधिक बाधाएं रही हैं और अब उन्हें कोई भी जारी रखना नहीं चाहेगा।

अमेरिका के साथ व्यापार में जो भी राष्ट्र लाभ की स्थिति में हैं, उन्हें अब हमसे यह अपेक्षा करनी चाहिये कि हम भी उनके बाजारों में वैसा ही प्रवेश पाने के लिए व्यग्र और प्रयत्नशील होंगे, जैसा प्रवेश उन्हें हमारे बाजारों में प्राप्त है। हम 'न्यूनतम अधिमान-प्राप्त राष्ट्र' की हैसियत को स्वीकार नहीं कर सकते, जिसमें हमें कुछ सरकारें अपने आर्थिक एवं राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर डाल दिया करती हैं। अब हम तटकर-इतर (नान-टैरिफ) बाधाओं को स्वीकार नहीं कर सकते, जो हमें इन बाजारों से बाहर रखती हैं।

मैं तो यहां तक कहूंगा, और आशा करूंगा कि मुझे गलत नहीं समझा जायेगा, कि हमारे और दूसरे देशों के बीच व्यक्तियों के उन्मुक्त आवागमन के मार्ग में जो 'तटकर-इतर बाधाएं' आयेंगी, उनके बारे में भी हम किंचिन्मात्र उदासीन या आत्मतुष्ट नहीं हैं। ऐसे मामलों में, प्रत्येक राष्ट्र को अपने इच्छानुसार कोई भी नियम बनाने का पूर्ण अधिकार है। लेकिन समय आ गया है, जब हमें ऐसे सभी नियमों पर ध्यान देना पड़ेगा, जो औपचारिक या अनौपचारिक, किसी भी, ढंग से कायम हो चुके हैं।

अब मैं इस बात का उल्लेख करूंगा कि भारत के लिए एक नवीन और अधिक उन्मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-जगत क्या अर्थ रखता है।

आपके समक्ष मैं कुछ आंकड़े प्रस्तुत करता हूं। १९७२ में, अमेरिका का सकल राष्ट्रीय उत्पादन ८,६४,००० करोड़ रुपये का था। १९७३ में, यह लगभग ९,५०,००० करोड़ रुपये का होगा। इस प्रकार, एक वर्ष में इसमें ८६,००० करोड़ रुपये की वृद्धि होगी। मुझे बताया गया है कि १९७२-७३ के अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय वर्ष में, भारत का सकल राष्ट्रीय उत्पादन लगभग ४७,६०० करोड़ रुपये का था। भारत के इस उत्पादन में, निस्सन्देह, अमेरिका को किया गया निर्यात भी शामिल है। १९७२ में, अमेरिका का कुल आयात, जिसे हम अन्य राष्ट्रों का निर्यात भी कह सकते हैं, लगभग ४१,७०० करोड़ रुपये का रहा। अगर हम यह मान लें कि अमेरिका के सकल राष्ट्रीय उत्पादन में हुई वृद्धि के अनुरूप ही अमेरिका के आयात में भी लगभग १० प्रतिशत की वृद्धि होगी, तो १९७३ में अमेरिकी आयात की राशि लगभग ४५,९०० करोड़ रुपये की हो जायेगी।

दूसरे शब्दों में, इस वर्ष अमेरिका इतनी वस्तुओं का आयात करेगा, जिनका मूल्य मोटे तौर पर भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पादन के बराबर होगा।

भारत ने १९७२ में हमें ३१९ करोड़ रुपये का, अथवा हमारे कुल आयात का ०.८ प्रतिशत, माल भेजा। हमारे कुल आयात में अब ४,२०० करोड़ रुपये की वृद्धि हो जाने की सम्भावना है। अगर भारत इस वृद्धि में अपने अंश, अर्थात् ०.८ प्रतिशत, की मात्रा को ही कायम रखे, तो भी १९७३ में अमेरिका को होने वाले उसके निर्यात में ३४ करोड़ रुपये की वृद्धि हो जायेगी और वह कुल ३५३ करोड़ रुपये का हो जायेगा।

किन्तु, यदि इस विकास में भारत अपना अंश दुगना, अर्थात् १.६ प्रतिशत कर लेता है, तो अमेरिका को होने वाले भारत के निर्यात में १९७२ के मुकाबले ६७ करोड़ रुपये की वृद्धि होगी।

मैं इन आंकड़ों पर इसलिए जोर दे रहा हूं कि भारत अमेरिका के किसी अन्य व्यापारिक भागीदार को हटाये बिना ही इन्हें हासिल कर सकता है। ऐसी स्थिति में, जब अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था निरन्तर विकसित हो रही है, किसी राष्ट्र के निर्यात में वृद्धि से दूसरे राष्ट्र के निर्यात को कोई हानि पहुंचने की सम्भावना नहीं है।

लेकिन, इस सम्भावना पर ध्यान दीजिये। अगर भारत अमेरिका के आयात-बाजार में अपना अंश बढ़ा कर दुगना, अर्थात् १.६ प्रतिशत कर ले, जो कि निश्चय ही कोई बड़ा अंश नहीं है, तो १९७३ में वह अमेरिका को लगभग ७२० करोड़ रुपये का माल बेचेगा, जो १९७२ की मात्रा से ४०१ करोड़ रुपये अधिक है।

ये कोई काल्पनिक आंकड़े नहीं हैं। हम कोई अटकलपच्चू बात नहीं कर रहे हैं। यह विकास अवश्य होगा और बहुत से देशों को उससे लाभ होगा। भारत को इनमें से एक राष्ट्र होना ही चाहिए; और उसकी एक दशाब्द की ठोस उपलब्धियों को देखते हुए, इसमें सन्देह भी नहीं है कि इनमें एक राष्ट्र भारत हो सकता है। बदले में, अमेरिका केवल विनिमय के अपने पक्ष के लिए बराबरी का बर्ताव और समान प्रवेश की सुविधा चाहता है। मुझे पक्का विश्वास है कि यह उसे अवश्य मिलेगा। ■■

शिखर-सम्मेलन

एक सम्वाददाता द्वारा मूल्यांकन

ह्यू साइडी

'टाइम' पत्रिका के वाशिंगटन-कार्यालय के अध्यक्ष ने 'चयनिका' के लिए लिखे गये इस विशेष लेख में, सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के नेता ल्योनिड ब्रेजनेव के साथ हाल में हुई राष्ट्रपति निक्सन की शिखर-वार्ता के बारे में अपना व्यक्तिगत मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। जून १९७३ में सम्पन्न श्री ब्रेजनेव की इस अमेरिका-यात्रा से, जिसे शीत-युद्ध की समाप्ति-सूचक घटना के रूप में व्यापक रूप से सर्वत्र सराहा गया, यह बात विशेष रूप से स्पष्ट हो गयी कि "सोवियत संघ अमेरिकी व्यापारियों का स्वागत करने को उत्सुक एवं तत्पर है।"

मई १९७२ के जिस दिन राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन शिखर-वार्ता के लिए अपने दलबल सहित मास्को पहुँचे, उसकी विशेष स्मृतियां अब भी शेष हैं। हममें से जो लोग इससे तीन मास पूर्व राष्ट्रपति के साथ पेकिंग गये थे, वे पेकिंग की सर्द और सूनी सड़कों, ग्रेट हाल में सम्पन्न मूक औपचारिकताओं और दर्शनशास्त्र पर वार्ता करते हुए श्री निक्सन एवं श्री चाऊ एन-लाई की धुंधली झलकों की याद के साथ अभी भी उस भेंट के महत्व पर चिन्तन-मनन में निमग्न थे।

मई मास के उस दिन, आज से लगभग एक साल पूर्व, मास्को में काफी उत्साह और शोरगुल था, सड़कें दर्शकों से खचाखच भरी थीं, सबके चेहरों पर जिज्ञासा और कौतूहल के भाव अंकित थे, जिस मार्ग से राष्ट्रपति को लेकर तीव्रगामी मोटरों का काफिला निकला, उसके दोनों किनारों पर मीलों तक गगनचुम्बी अट्टालिकाएं पंक्तिबद्ध खड़ी थीं, और अन्त में, क्रेमलिन के स्वर्णाभा वाले गुम्बद (अपने सम्पूर्ण संरक्षित परिवेश में) अतीत के वैभव एवं क्षोभ की याद दिलाते झांक रहे थे।

उस रात हममें से कुछ लोग रेड स्क्वायर को पार कर नैशनल होटल में भोजन करने गये। यहां चीन से सर्वथा भिन्न स्थिति, और सोवियत संघ में इस नयी साहसिक यात्रा, का महत्व और भी आकर्षक ढंग से उजागर हुआ। मार्ग के उस ओर, ज्योतिस्नात क्रेमलिन की दीवारें वाशिंगटन में इसी प्रकार जगमगाते लिंकन स्मारक की याद ताजा कर रही थीं। भोजन-कक्ष के एक छोर पर बने ऊंचे मंच पर, एक पीनपयोधरा नितम्बिनी अमेरिकी फिल्म, 'डा० झिवागो,' का एक गीत गा रही थी। रूस में इस फिल्म के प्रदर्शन पर प्रतिबन्ध है। कक्ष के दूसरे कोने से शैम्पेन मदिरा की बोतलों के उछलते ढक्कनों का अबाध स्वर आ रहा था। इतने ही में, सुन्दर परिधानों में सजे-धजे कुछ ज्यार्जियाई नर्तक मेजों के बीच उछल कर आये और नृत्य करने लगे। मैंने एक विशाल विस्फारित वातायन से रेड स्क्वायर की ओर दृष्टिपात किया। नीचे, सड़क पर, यातायात अवरुद्ध था—यद्यपि यह अमेरिका की तुलना में नितान्त लघु प्रतीत होता था, तथापि एक यातायात-अवरोध तो था ही, जिसमें कारों की लम्बी अचल पंक्ति, हार्न बजाते अधीर चालक और यातायात-अवरोध का कारण जानने के लिए उधर ही लम्बे डग भरते हुए भावहीन पुलिसजन दिखलायी पड़ रहे थे।

मुझे यह सब दृश्य ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मैं कोई पाठ्यपुस्तक पढ़ रहा हूं, और इसी से मुझे यह आश्चर्यजनक जानकारी प्राप्त हुई कि मास्को और सोवियत संघ में पाश्चात्य पक्वान्नों का प्रचार बढ़ रहा है और वे लोकप्रिय हो रहे हैं। ये व्यापक एवं सामान्य दृश्य, जो दूसरों के लिए महत्वहीन एवं साधारण हैं, प्रायः हमारे जैसे व्यक्तियों को, जो राजनीति और राजनयिक शिष्टाचार की परम्परागत झाड़ियों में रहते हैं, जरा दम मारने का अवसर प्रदान करते हैं। खाने की मेज से लेकर रेड स्क्वायर तक विस्तृत जीवन की यह झांकी सुखी जीवन की तड़प की भी परिचायक थी। रूस में राष्ट्रपति निक्सन की शिखर-वार्ता वाले सप्ताह के शेष दिनों में यह तथ्य और स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुआ। वार्ता और समझौता-पत्रों पर हस्ताक्षर का व्यापक उद्देश्य निश्चयात्मक रूप से यह था कि भय और तनाव में कमी हो, शान्ति के युग का उदय हो, शस्त्रास्त्रों की गहरी होड़ समाप्त हो और दोनों राष्ट्रों की शक्ति जनता की आन्तरिक आवश्यकताओं को पूरा करने में लगे।

अस्तु, लगभग एक वर्ष पूर्व इस पथ पर साथ-साथ चलना आरम्भ करके, और इस अवधि में पारस्परिक विश्वास एवं निष्ठा का परिचय देने के बाद, ल्योनिद ब्रेजनेव और रिचर्ड निक्सन अपनी अगली मुलाकात के दौरान—जो इस बार जून १९७३ में अमेरिकी धरती

पर हुई—तनाव-शैथिल्य और शान्ति-समझौते की भावना से ओतप्रोत और प्रेरित प्रतीत हुए।

कैम्प डेविड, मेरीलैण्ड, में जहां अमेरिका पहुंचने पर उन्होंने अपनी प्रथम रात वितायी, श्री ब्रेजनेव को एक नीला पर्दा नजर आया, जिस पर अमेरिकी राष्ट्रपति की राजमुद्रा अंकित थी। पलंग की वगल में, उन्हें कैम्प डेविड के बारे में रूसी भाषा में छपी एक सूचना-पुस्तिका मिली। कैम्प डेविड मनोरंजन और विश्रांति के लिए निर्मित पहाड़ी स्थान है। इस यात्रा के दौरान वाशिंगटन में उनका निवास-स्थान ब्लेयर हाउस रहा। श्री ब्रेजनेव की सुविधा के लिए, यहां उपयोग में आने वाली विशिष्ट अमेरिकी वस्तुएं—हजामत बनाने का साबुन, हजामत के बाद लगाने का लोशन और बाल सुखाने का सामान—प्रचुर मात्रा में रखी गयी थीं। वार्ता की समाप्ति के बाद, जब श्री ब्रेजनेव स्वदेश लौटे, तब वह अमेरिकी उपभोक्ता-वस्तुओं की सौगातें प्रभूत मात्रा में अपने साथ ले गये। इस कम्युनिस्ट नेता को जो उपहार प्रदान किये गये, वे भी अभूतपूर्व थे। इनमें १० हजार डालर मूल्य की एक लिंकन काण्टिनेण्टल कार, १२ हजार डालर मूल्य की एक पेडर्सन-मॉसबर्ग शिकारी बंदूक और एक विद्युत्चालित गोल्फ-गाड़ी शामिल थीं। इन वस्तुओं को पाकर वे उतने ही प्रसन्न हुए, जितना कोई भी अमेरिकी पूंजीपति इन्हें प्राप्त करने के बाद हुआ होता। इससे सम्भवतः इस बात की पुनः पुष्टि होती है कि बाह्य नीरसता के नीचे इस विश्व के अधिकांश मानव व्यापक रूप से समान हैं। एक वार्ता-चक्र में अवान्तर लाकर, राष्ट्रपति निक्सन श्री ब्रेजनेव को उनकी नयी कार दिखाने ले गये। इस कार को देख कर श्री ब्रेजनेव ने तत्काल उसे चला कर देखने की इच्छा प्रकट की और आग्रह किया कि श्री निक्सन भी उनके साथ चलें। राष्ट्रपति जब कार में सोवियत नेता की बगल में जा विराजे, तब कुछ सशंकित से दिखलायी पड़े। श्री ब्रेजनेव के चेहरे पर मुस्कान नाच उठी और वह बोले: "चिन्ता न करें, मैं बहुत अच्छा ड्राइवर हूं। बहुत कार चलाता हूं।" श्री निक्सन का उत्तर था: "मैं कभी कार नहीं चलाता। साढ़े चार साल में मैंने एक बार भी कार नहीं चलायी।" ये बातें हो ही रही थीं कि श्री ब्रेजनेव ने कार को चालू कर दिया और वह सर्राटे भरती हुई उस क्षेत्र की सड़कों पर दौड़ चली। (राष्ट्रपति निक्सन ने बाद में हंसते हुए अपने सहायकों को बताया कि बहुत अच्छा हुआ कि जब कार सड़कों के मोड़ों से होकर जा रही थी, तब भीड़भाड़ अधिक नहीं थी, अन्यथा शिखर-वार्ता सहसा ही समाप्त हो जाती।)

अमेरिका के व्यावसायिक नेताओं से वार्तालाप के बीच, श्री ब्रेजनेव ने सीधी-सादी रूसी भाषा में अपनी अमेरिका-यात्रा और शिखर-वार्ता के सारभूत उद्देश्य को खोल कर रख दिया: "पुराने जमाने में रूस के व्यापारी अपना माल लेकर फारस जाते, वेचते और फारस में माल खरीद कर रूस लौटते थे। उस युग में भी दो देशों के बीच मैत्री का आधार यही था।... व्यापार के विना किन्हीं दो देशों के बीच सामान्य सम्बन्ध कायम हो सकना सम्भव नहीं।"

वित्तमन्त्री जार्ज शुल्ज और ४६ अमेरिकी बैंकरों तथा व्यापारियों से वार्ता के समय, श्री ब्रेजनेव ने बराबर यही प्रयत्न किया कि स्वतन्त्र व्यवसायियों के मन में अतीत काल से जो दुर्भावनाएँ भरी हैं, उन्हें शान्त एवं समाप्त किया जाय। इस वार्त्तालाप में, अमेरिका की कुछ विशालतम फर्मों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। वे सब ह्वाइट हाउस के सामने से गुज़रने वाली सड़क, पेनसिल्वैनिया एवेन्यू, के दूसरे बाजू पर स्थित ब्लेयर हाउस में एकत्र हुए और पूरे दो घण्टे तक परस्पर-निर्भरता के महत्व पर एक व्यक्ति का जोशीला वक्तव्य शान्त भाव से सुनते रहे।

श्री ब्रेजनेव ने अपने अतिथियों को बताया कि नयी मण्डियां आशाप्रद और सम्भावनापूर्ण हैं। उन्होंने कहा: "आप जानते हैं कि हम पुरुष लोग तो एक जोड़ा परिधान से ही काम चला सकते हैं। परन्तु महिलाओं को भी आप बखूबी जानते हैं। वे दिन में तीन बार अपने परिधान बदलना चाहती हैं।"

उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति से हाथ मिलाया और प्रत्येक का नाम और उसकी फर्म के नाम को बड़े ध्यान से सुना। एक व्यवसाय-प्रबन्धक से उन्होंने कहा: "आप जब मास्को आयें, तब मुझसे मिलना न भूलें।" इस व्यक्ति ने, जिसे सोवियत नौकरशाही से निपटने में होने वाली कठिनाइयों का निकटतम अनुभव है, कहा कि शायद यह असम्भव होगा। श्री ब्रेजनेव ने सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव से भिन्न, किसी प्रबन्ध-मण्डल के अध्यक्ष की तरह, उत्तर दिया: "बस, मुझे पत्र लिख दीजियेगा, मुलाकात आसानी से हो जायेगी।" इस वार्त्तालाप के बीच, उन्होंने एक बार खेद प्रकट करते हुए, कहा: "हमने शीतयुद्ध में २० वर्ष का समय गँवा दिया। उचित तो यह था कि हम इस अवधि में व्यापार कर रहे होते।" श्री ब्रेजनेव ने अपनी समूची यात्रा के दौरान पूरे संयम का परिचय दिया और किसी एक पक्ष को ही पूर्णतः दोषी ठहराने का कोई प्रयास नहीं किया। उन्होंने बारबार इस तथ्य पर बल दिया कि जो बीत गयी, सो बीत गयी। अब तो सोवियत संघ अमेरिकी व्यापारियों का स्वागत करने को उत्सुक और तत्पर है।

इसे प्रमाणित करने के लिए कुछ निश्चित समझौते किये गये। दोनों नेताओं ने एक देश के नागरिकों और कम्पनियों के दूसरे देश में व्यापार करने पर लगने वाले दुहरे कराधान को समाप्त कर दिया। उन्होंने सोवियत-अमेरिकी वाणिज्य-मण्डल स्थापित करने, मास्को और वाशिंगटन में स्थित अपने दूतावासों में वाणिज्य परामर्श-सेवा का विस्तार करने और नये सोवियत-अमेरिकी हवाई मार्ग खोलने का संकल्प किया। अमेरिका की दस अतिरिक्त फर्मों को मास्को में व्यापार करने का अधिकार प्रदान किया गया।

अमेरिका की कार्य-पद्धति में अमेरिकी कांग्रेस के महत्व को श्री ब्रेजनेव ने स्वीकार किया और २५ प्रमुख सेनेटरों तथा प्रतिनिधियों को ब्लेयर हाउस में भोजन पर आमन्त्रित किया, जिसमें पांच प्रकार की सोवियत मदिराएँ प्रस्तुत की गयीं। अमेरिकी कांग्रेस ही रूस को सर्वाधिक सुविधा-प्राप्त देश का वह दर्जा दे सकती है, जिसके बाद अमेरिका में होने वाले सोवियत आयात पर तटकर में ५० प्रतिशत की कटौती हो जायेगी। यहूदी-प्रवास के बारे में सोवियत नीति से क्षुब्ध ७७ सेनेटरों और २८४ प्रतिनिधियों ने एक कानून का समर्थन किया है, जिसमें व्यवस्था है कि जो देश स्वतन्त्र प्रवास को प्रतिवन्धित करता है, उसे विशेष सुविधाप्राप्त देश का दर्जा नहीं दिया जा सकता।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के सचिव श्री ब्रेजनेव ने अतीत में की गयी अतियों और कदाचारों को अस्वीकार नहीं किया। लेकिन, उन्होंने रचनात्मक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए,

अपने अतिथियों से कहा कि जिन यहूदियों ने सोवियत संघ छोड़ने के लिए आवेदन-पत्र दिये, उन्हें उसकी अनुमति दे दी गयी। उन्होंने कहा : "हम यहां अच्छाइयों पर सहमति प्रकट करने और उन्हें पुष्ट करने आये हैं, झगड़ने नहीं।" ब्लेयर हाउस में भोजन करने के बाद, वहां से लौटने वाले अधिकांश सेनेटरों और प्रतिनिधियों के मन में यद्यपि बहुत से प्रश्न और आशंकाएँ शेष थीं, तथापि ऐसा प्रतीत होता था कि वे कम्युनिज्म के नये चेहरे पर लुब्ध थे।

वार्त्ता के विषयों और उद्देश्यों की रहस्यात्मकता और श्यामवर्णी पेटिकाओं की काली छाया के बावजूद, शिखर-सम्मेलन परम्परागत राजनयिक संदर्भ में सम्पन्न हुआ, और उसकी उपलब्धियां मण्डियों के सीमा-क्षेत्र से आगे एक शान्त विश्व की सम्भावना का संकेत देती थीं। जो समझौते हुए, उनमें से किसी को ऐतिहासिक और अभूतपूर्व नहीं कहा जा सकता। फिर भी, वे दो महाशक्तियों के सम्बन्धों में और अधिक सामन्जस्य आने के परिचायक थे। इन समझौतों के कारण विनाश के कगार पर खड़े दोनों राष्ट्र उससे कुछ और पीछे हट आये हैं। उन्होंने परमाणु-युद्ध से बचने के एक समान संकल्प पर हस्ताक्षर किये, जिसे एक प्रकार से पारमाणविक आचार-संहिता कहा जा सकता है। उन्होंने १९७४ के अन्त तक सांघातक आयुध-परिसीमन वार्ता का दूसरा सोपान ('साल्ट-२') पूरा करके आक्रामक परमाणु-आयुधों का स्थायी परिसीमन करने के लिये समझौता किया। पिछले वर्ष हुए सांघातक आयुध-परिसीमन वार्ता के प्रथम सोपान ('साल्ट-१') में पांच वर्ष के अस्थायी 'स्थगन' का निर्णय किया गया था। इस प्रकार, अब अस्थायी 'स्थगन' की पंचवर्षीय अवधि समाप्त होने से तीन वर्ष पूर्व ही, स्थायी परिसीमन का समझौता सम्पन्न हो गया। इनके अलावा, परमाणु शक्ति, कृषि, परिवहन, महासागरीय विज्ञान और संस्कृति के क्षेत्र में सहयोग के कई संकल्प किये गये।

यह आयोजन ऐसा नहीं था, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन मात्र कहा जाय। जैसा कि राष्ट्रीय सुरक्षा के विषयों में राष्ट्रपति के सहायक, हेनरी किसिंजर, ने कहा है, यह आयोजन ऐसा था, जो लोगों को मिलाता है, जो राष्ट्रों को "कार्य करने का एक अवसर और आधार प्रदान करता है। इस विश्व में यदि सबको ऐसा आभास हो जाय कि उनके हितों की बाजी लगी है, तो किसी को अशान्ति भड़काने का अवसर नहीं मिलेगा।"

रिचर्ड निक्सन के निकटतम और निजी संसार में, यह उन राजनयिक उपायों की प्रथम कसौटी थी, जिन्हें उन्होंने साढ़े चार वर्ष की अवधि में बड़ी सावधानी से तैयार किया है। इसकी संरचना कुछ इस प्रकार की गयी है कि एक बार गतिमान हो जाने के बाद, यह स्वतः गतिशील होती जायेगी। सोवियत संघ के साथ शिखर-सम्मेलन अब एक सामान्य घटना बन जायेगा। यह ऐसी बात है, जो दोनों पक्षों को काम्य है। अमेरिका में श्री ब्रेजनेव जिन लोगों से मिले, उनसे एक बात उन्होंने यह कही कि उन्हें आशा है कि राष्ट्रपति निक्सन अगले वर्ष मास्को जायेंगे। उन्होंने कहा : मैं स्वयं भी १९७५ में अमेरिका आऊंगा, और तब सच्चे अर्थ में एक पर्यटक की भांति मैं इस देश का निकट से दर्शन कर सकूंगा।

श्री निक्सन ऐसा नहीं मानते कि इससे अन्तर्राष्ट्रीय संकटों या युद्ध के खतरों का अन्त हो जायेगा। लेकिन, यदि उनके अनुमान सही उतरते हैं, तो ये समस्याएँ उन राजनयिक माध्यमों को सुपुर्द की जा सकेंगी, जिनका निर्माण हो चुका है, और जहां इन पर शान्तिपूर्ण विधियों से कार्यवाही की जा सकेगी।

शिखर-सम्मेलन के दौरान ऐसी छोटी-मोटी स्मृतियां उभरती रहीं, जिनसे पता चलता था कि अतीत के ऐसे आयोजनों से, जिनमें राष्ट्रीय आक्रोश को ही निरन्तर अभिव्यंजित किया जाता था और वार्त्ता-भवन व्यक्तिगत विद्वेष की भावना से ओतप्रोत रहता था, यह आयोजन कितना भिन्न था। १९५९ में, राष्ट्रपति आइजनहॉवर ने 'कैम्प डेविड भावना' की लहर चलायी, जो यूराल पर्वतमाला पर यू-२ विमान गिराये जाने के बाद, १९६० में, निकिता ख्रुश्चेव के साथ आयोजित पेरिस शिखर-सम्मेलन में समाप्त हो गयी। १९६१ में, वियना में पुनः ख्रुश्चेव ने उद्धत आततायी जैसा व्यवहार किया, जॉन कैनेडी के सामने मेज पर बैठ कर गर्जे-तर्जे और कहा कि बर्लिन उनके गले में हड्डी की तरह अटका हुआ है, जिसे निकाला जाना चाहिये।

यहां तक कि जब राष्ट्रपति निक्सन १९७२ में मास्को में थे, तब भी तनाव था और उस समय ब्रेजनेव स्वयं अपने बारे में इतने आश्वस्त नहीं थे, जितने वह इस बार थे। उस समय जो भी निर्णय किये गये, वे रूस की ओर से तीन व्यक्तियों की समिति—ब्रेजनेव, पोदगोर्नी और कोसीगिन—की उपस्थिति में किये गये। लेकिन, इस बार सोवियत संघ की ओर से पूर्ण अधिकार-सम्पन्न केवल एक व्यक्ति आया। पिछले वर्ष मास्को में, प्रत्येक वार्ता से पूर्व, उसका कार्यक्रम प्रातःकाल हेनरी किसिंजर और सोवियत राजदूत दोब्रिनिन आमने-सामने बैठ कर और बातचीत करके तय करते थे। उनके सहायक भी साथ बैठते थे। परन्तु, इस बार बातचीत श्री निक्सन और श्री ब्रेजनेव ने अपने इच्छानुसार की। उन्होंने मनचाहे विषयों पर बात की, इच्छानुसार विषय बदले और कभी तो सिर्फ राम-राम करके ही चलते बने।

ये नेता शिखर-वार्ता को एक व्यवस्था का रूप देने का प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी, इसकी सफलता और इसका तारतम्य बनाये रखने के लिए व्यक्तिगत क्षमता और विश्वास का विशेष महत्व है। ये दोनों नेता सर्वप्रथम एक-दूसरे पर विश्वास करने का वातावरण तैयार करते हैं, एक-दूसरे के बारे में जानकारी और दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करते हैं, एक-दूसरे की राजनीतिक कुशलता का प्राक्कलन करते हैं, और फिर, इन सबके आधार पर अपने सम्बन्धों को विस्तृत करते एवं प्रगाढ़ बनाते हैं। यही बात दोनों देशों के सम्बन्धों के बारे में भी सत्य है। श्री ब्रेजनेव और श्री निक्सन के बीच, सोवियत संघ और अमेरिका के बीच, यही हुआ है। जून में भी यही हुआ।

और, अन्त में, वे ऐसे दो व्यक्तियों के रूप में उभरे जो एक-दूसरे के काफी निकट प्रतीत हुये और जो विश्व में एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करने को आतुर हैं, जिसके लिए वे दोनों सदैव याद किये जाते रहेंगे। क्षण भर के लिए ही सही, वे आश्वस्त थे कि ऐसा युद्ध से नहीं, बल्कि व्यापार और सतर्कतापूर्ण विश्वास से सम्भव है।

जब वे कैम्प डेविड में मिले, तब दृश्य यह था कि श्री निक्सन और श्री ब्रेजनेव अपने-अपने निर्धारित स्थान पर विराजे; फिर प्रत्येक के लिए पादपीठ प्रदान किये गये। प्रत्येक अवसर पर आतिथेय ने श्री ब्रेजनेव का परिचय उन लोगों से कराया जो उत्पादन या विक्रय से सम्बद्ध हैं। समझौते पर हस्ताक्षर करने के एक समारोह के पश्चात्, वह श्री ब्रेजनेव को एक कांग्रेस सदस्य के पास ले गये : "ये हैं आयोवा के बिल शर्ले।" और, फिर कहा : "ये किसान हैं।" अगले पांच मिनट तक सोवियत रूस के इन्जिनियर ने मध्य अमेरिका में मक्का के उत्पादन के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

जब वे विमान द्वारा कैलिफोर्निया जा रहे थे, तब राष्ट्रपति का विमान, 'द स्पिरिट आव् ७६', ग्रैण्ड कैनियन पर नीचे आ गया। शाम हो रही थी। अस्ताचल जाते सूर्य की किरणों ने उस विशाल घाटी को स्वर्णिम आभा से निमज्जित कर दिया था। समूचा दृश्य अनुपम था। श्री ब्रेजनेव श्री निक्सन के सम्मुख आसीन थे। दोनों ने मूक भाव से इस अनुपम दृश्य के दर्शन किये। जब विमान इस दृश्य से आगे बढ़ गया, तब राष्ट्रपति ने कहा : "आपको यह दृश्य मनोरम प्रतीत हुआ होगा?" सचिव ब्रेजनेव ने उत्तर दिया : "निश्चय ही, यह बहुत मनोहारी है, राष्ट्रपति महोदय, बहुत मनोमुग्धकारी! परन्तु, साथ ही, एक अन्य विचार भी मन में आ रहा है—यहां कोई खेत नहीं। यह निर्जनता, निश्चय ही, पीड़ाप्रद है। लेकिन, ऐसे स्थान तो सभी देशों में हैं।"

उस समय श्री ब्रेजनेव के अन्तराल की गहराइयों में छिपा बैठा सैद्धान्तिक उत्साह, निस्सन्देह, स्पन्दित था, किन्तु उसका स्वर मन्द था, क्योंकि इस क्षण सभ्यता का एक भव्य दृश्य सामने था—ऐसा दृश्य, जहां मरुस्थल पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है और मानव निर्माणरत है। ■■

प्रतिष्ठित पर्यटकों द्वारा व्यक्त विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि यदि १९६० वाला दशक अमेरिका के लिए 'उन्मत्तता' का दशक था, तो राष्ट्र के इतिहास में कई अन्य दशक भी ऐसे थे। निस्सन्देह, अमेरिका की धरती पर पांव रखने वाला प्रथम बाहरी व्यक्ति कोलम्बस था, जिसने यूरोपवासियों को बताया कि 'बहुत-से लोगों की आशा के विपरीत, मुझे वहां मानवीय पैशाचिकता के दर्शन नहीं हुए।' कोलम्बस के बाद बीती पांच शताब्दियों में, बहुत-से पर्यटकों ने अमेरिका की यात्रा की, लेकिन उसके बारे में सबकी राय एक जैसी नहीं रही है। फिर भी, जैसा कि इन पृष्ठों पर दिये गये उद्धरणों से स्पष्ट है, अमेरिकी जीवन के विषय में लोगों की कुछ-न-कुछ राय अवश्य रही है।

"अमेरिकी देवियो! तुम्हारे आभारों के भारी ऋण से मैं सौ जन्मों में भी उऋण नहीं हो पाऊंगा।...यदि हिन्द महासागर मसिपात्र, हिमालय का उच्चतम पर्वत लेखनी, धरती वर्तिपत्र और स्वयं काल देवता लेखक हों, तो भी तुम्हारे प्रति मेरी कृतज्ञता का ज्ञापन नहीं हो पायेगा।"

स्वामी विवेकानन्द

"कैलिफोर्निया की बढ़िया, खालिस, मदिराएं। ...काफी इतनी हल्की कि आपको प्याले का पेंदा दीख जाय।...राजमार्ग के एकदम किनारे पर बनाये गये मोटेल। उनींदे, छाया से ढंके, हरे-भरे मैदानों के सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध, कोलाहल से दूर, पर्वत-शृंखला की तो बात ही क्या? स्वतन्त्रता की प्रबल अनभूति : एक बार आप मुस्कराते आव्रजन-अधिकारी से निपटे नहीं, कि दो महीने के दौरान आपसे कोई पूछने वाला नहीं कि कौन हो, कहां से आये हो।...राजपथ के साथ-साथ लगाया गया 'सोचिये' का वह संकेत-पट्ट। सोचें तो, लेकिन किसके बारे में? ...अतीव महत्वपूर्ण व्यक्ति अपना जितना समय आपसे मुलाकात करने में लगायेंगे।...लुइजियैना के एक बहुत ही छोटे से कस्बे में एक लम्बे-तगड़े सिपाही का हम

लोगों को रोकना (कौन-सी गलती हो गयी हम लोगों से ?): 'हमारी बस्ती में पिकनिक हो रही है, क्या आप उसका आनन्द लेना चाहेंगे ?' ...बीते हुए कल का अमेरिका अब भी बड़ी आसानी से मिल जायेगा—वहां, जहां छज्जेदार सफेद मकान और बरामदे हैं, मकानों के सामने छोटे-छोटे लान हैं; जहां गिरजाघरों में रात्रि-भोजों का आयोजन होता है; जहां 'सण्डे स्कूल' हैं और है शान्त जीवन।...फिर भी, आपका हृदय अत्यन्त अभिभूत है एक ऐसे देश में रहने की अनभूति से, जो अब भी निर्माणावस्था में है।"

पियरे और रेने गोसेट
फ्रांसीसी पर्यटक

"अमेरिकी लोग, निश्चय ही, ऐसे भौतिक पदार्थों, उत्पादों और नई वस्तुओं को प्यार करते हैं, जो उपयोगी हैं या अन्य वस्तुओं को उपयोगी बनाने में सहायक होती हैं।...भौतिक वस्तुओं के प्रति अमेरिकी लोगों का प्रेम अतीन्द्रिय होता है, जिसमें लोभ और संचय की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसा कि वे रोमानी ढंग से कहते हैं, वे भौतिक वस्तुओं को प्यार करते हैं अमेरिका के निमित्त, अपने समृद्ध साधन-स्रोतों और चीजों को उपयोगी बना सकने की उसकी क्षमता और योग्यता के निमित्त। भौतिक वस्तुओं के साथ यह लगाव, और फिर, उन्हें दूसरों को दे डालना, उनकी अपनी जीवन-दृष्टि का ही एक अंग है।"

रिचर्ड होगार्ट
'यूनेस्को' के सहायक महानिदेशक एवं बर्मिंघम विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड, में प्राध्यापक

"...प्रायः प्रत्येक अमेरिकी के हृदय में व्याप्त और वाणी से व्यक्त होने वाला यह आन्तरिक दृढ़ विश्वास कि वह सुखी है, ईर्ष्या के योग्य है। ऐसा आत्मविश्वास दूसरी जगह विरले ही मिलता है। 'हम सुखी लोग हैं, हम आराम की जिन्दगी जीते हैं,' उनके ये शब्द, निष्कपट स्वीकृति के ये शब्द, पता नहीं, यूरोप में किसी पर्यटक को मिलेंगे भी या नहीं।"

जूलियन उर्सीन नीमसेविक्ज
पोलैण्ड के एक कुलीन, सम्भ्रान्त व्यक्ति; उनकी पुस्तक 'ट्रेवेल्स इन अमेरिका—१७६७-१८०७' से उद्धृत

"जो लोग प्राविधिक दृष्टि से इतने कुशल हों, वे चाय बनाने के सीधे-सादे नियमों को न सीख पायें—इसके कारण की व्याख्या, निश्चय ही, केवल इसी रूप में की जा सकती है कि अभी भी लोगों के मन में बोस्टन की घटना की याद एक गांठ बन कर जमी हुई है।"

फ्रांसिस विलियम्स
अंग्रेज लेखक

"अमेरिकी लोग चाहते हैं कि विदेशी उन्हें खूब चाहें। यह प्रवृत्ति उनकी अभ्यर्थी सम्बन्धी भूमिका से बिल्कुल मेल खाती है। अमेरिकी लोगों को देख कर एक चित्र मानस-पटल पर उभर आता है—एक बड़ा झबरैला श्वान घर में यदा-कदा आने वाले आगन्तुक पर भूंकते हुए झपट पड़ता है; उसकी इस क्रिया में स्वागत और अवहेलना की मिश्रित भावनाएं होती हैं; एक क्षण को वह श्वान अपने कद्दावर शरीर के साथ उछल कर आगन्तुक के सामने आ जाता है और पुचकारने की आरजू करता जान पड़ता है; और दूसरे ही क्षण, वह उसके आलिंगन से छूट कर उसके इर्द-गिर्द फुदकता चलता है, मुंह से पूंछ पकड़ने की कोशिश करता है, हवा में थूथनी उठाकर क्रोधपूर्ण स्वर में भूंकता जाता है और काट खाने का उपक्रम करता है।"

जे० पी० क्लार्क
नाइजीरियाई कवि

"कुछ समय पहले, हालत यह थी कि अधिकांश फ्रांसीसी आपकी (अमेरिका की) परेशानियों की ओर उदासीनता और कुछ-कुछ संतोष की मिली-जुली नजर से देखते थे और सोचते थे कि चलो, अमेरिका भी उन परेशानियों से अछूता नहीं है, जिनको दुनिया का लगभग हर राष्ट्र भुगत रहा है। लेकिन अब, जब कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है, तब लोगों में कुछ बेचैनी छा जाती है, क्योंकि अमेरिका-विरोधी फ्रांसीसी तक इस बात को अच्छी तरह समझने लगे हैं कि दुनिया में आज जो थोड़ी-बहुत व्यवस्था दिखायी दे रही है, उसकी वजह न केवल यह है कि अमेरिका शक्तिशाली है, बल्कि यह भी कि वह जरूरत पड़ने पर शक्तिशाली कदम उठाने में समर्थ है।"

रेमण्ड ऐरन
फ्रांसीसी लेखक और सामाजिक समीक्षक

"यदि बलात्कार करने वाला कोई यूरोपवासी हो, तो अपने अपराध के लिए वह मूल पाप को ही दोषी ठहरायेगा। लेकिन यदि बलात्कार करने वाला कोई अमेरिकी हो, तो वह यही कहेगा कि यह सब-कुछ बलात्कार के शिकार व्यक्ति के हित में था।"

एन्थनी बर्गेस
अंग्रेज लेखक

"अमेरिका में एक ऐसी जीवन-पद्धति
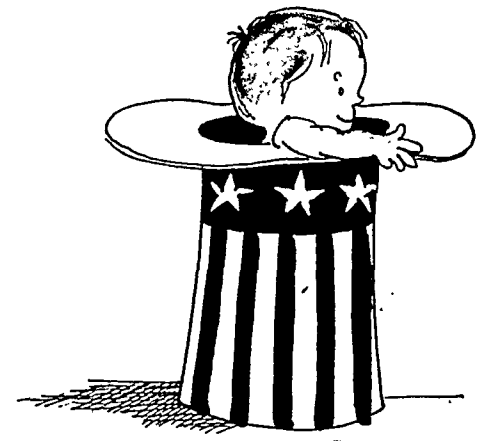
विकसित हो चुकी है, जिसका एकमात्र लक्ष्य अधिक से अधिक खाद्य-पदार्थ तथा भौतिक लाभ या धन का उपार्जन करना है। अमेरिकी लोग मुनाफा कमाने के लिए लड़ने-झगड़ने में इतने अधिक व्यस्त हैं कि अपनी सारी योग्यता एव क्षमता वे इसी प्रयोजन के लिए प्रयुक्त करते हैं। किसी भी दूसरी चीज में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं।"

नट हैमसन
नार्वेजियाई उपन्यासकार

"अमेरिका की तरुणाई उनकी सबसे प्राचीन परम्परा है। तीन सौ वर्षों से यही हाल है।"

आस्कर वाइल्ड
अंग्रेज साहित्यकार

"जब भी मैं अमेरिका के बारे में सोचूंगा, मुझे मात्र उसके जेट विमानों और उसकी विस्मयकारी भौतिक प्रगति का ध्यान नहीं आयेगा; मुझे ध्यान आयेगा उस अमेरिका का, जहां के लोग आध्यात्मिक मूल्यों की तलाश और सत्य की खोज में संलग्न हैं।"

श्री जयचामराज वाडियार
मैसूर के भूतपूर्व राज्यपाल

"अमेरिका तन से युवा है। पाश्चात्य सभ्यता में जो कुछ सर्वोत्तम है, उसको यहां अन्ततः अवश्य स्थान मिलेगा।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

"यह एक ऐसा देश था, जिसमें राज्य जनता के लिए था, जनता राज्य के लिए नहीं थी।... (यहां की प्रणाली) प्रायः निष्करुण, प्रायः अन्यायी, प्रायः अक्षम और प्रायः अपव्ययी अवश्य रही, लेकिन उसने प्रत्येक व्यक्ति को जैसा कुछ वह बनना चाहता था, वैसा बनने का अवसर दिया। सबसे बड़ी बात यह रही कि इसने कभी चिन्ता नहीं की। इसने जनता के मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया।"

जान ब्रेन
अंग्रेज लेखक

"मैं तो अमेरिकियों पर प्राणपण से निछावर हूं। वे अतीव उदार हैं और दयालु तो इतने कि आप उनकी दयालुता से ऊब जायेंगे।"

श्रीनिवासन पार्थसारथी
'हिन्दू' के भूतपूर्व प्रकाशक

"यूरोप में अमेरिका सम्बन्धी बहुत-सी बातों का गलत अर्थ लगाया जाता है। कारण यह है कि अमेरिकी लोग स्वयं अपने बारे में सब कुछ बता देते हैं, यहां तक कि वे अपने देश के ऐसे अप्रिय, कुरूप, पक्षों—अपराध-सम्बन्धी आंकड़ों, किशोर-किशोरियों के दुराचारों के विवरण, किसी भी अनैतिक कार्य के पूर्ण वर्णन, जातीय कठिनाइयों के विषय में पूर्ण विवरण और इसी तरह की दूसरी चीजों—को भी प्रकट करने पर जोर देते हैं, जिनको दूसरे लोग छिपा जाते। अमेरिका के दोषों को जानने के लिए किसी को विदेशी सूचना-स्रोतों की शरण में जाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अमेरिकी लोग तो स्वयं ही उनका वर्णन करते हैं, उन पर टीका-टिप्पणी करते हैं और कभी-कभी तो उनको बढ़ा-चढ़ाकर भी बताते हैं।"

डा० जूलियन मैरियास
स्पेन के एक लेखक और मानविकी संस्थान, मैड्रिड, के निदेशक

"जब मैं १९६१ में पहली बार यहां आया, तब मुझे लगा कि सारी अमेरिकी जनता सोयी हुई है—आध्यात्मिक दृष्टि से सोयी हुई। अब वह जाग गयी है। यौवन एक अद्भुत चीज है। यौवन है क्या? वह हमारा भविष्य है।"

येवगेनी येवतुशेंको
रूसी कवि

"अमेरिका जैसा एक मुल्क डेढ़-दो सौ सालों के अन्दर इतनी तरक्की कर गया, इसके पीछे क्या राज़ है? जरूर, इसमें कोई अन्दरूनी ताकत होनी चाहिए। अमेरिका ने जितनी शानदार तरक्की कर ली है, उससे हम सबको सबक लेना चाहिये। भारत, जो एक प्राचीन देश है, जो हजारों साल पुराना है और जो पुरानी अच्छाइयों और पुरानी कमजोरियों का मेल है; और अमेरिका, जो नये ख्यालों, नये जोश-खरोश और नयी ताकत का मुल्क है—इन दोनों का मिलना एक अजीब वाकया है। दोनों के इस मिलन से कम-से-कम हम लोगों को तो फायदा पहुंचेगा ही, दुनिया को भी पहुंचेगा।"
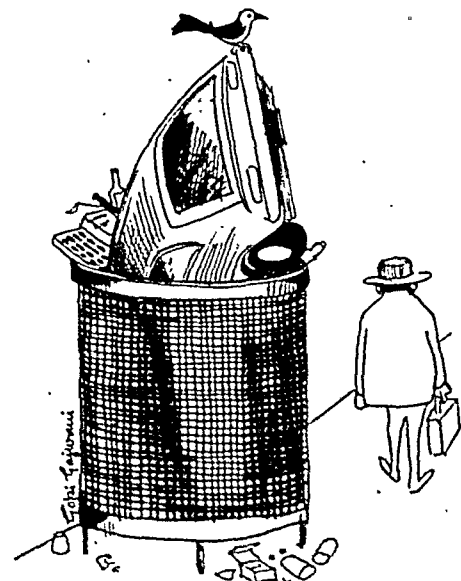
जवाहरलाल नेहरू

"आप में साहसिक कार्य करने का अद्भुत जीवट है, और है अपनी क्षमता में आस्था। आप उन्मुक्त विचारों के, उदार, लोग हैं।"

डा० एस० राधाकृष्णन्

"(अमेरिका में) सामाजिक रूढ़िवादिता और व्यक्तिवाद का संयोग कदाचित् एक ऐसी चीज है, जिसे समझ पाने में किसी भी फ्रांसीसी को अतीव कठिनाई होगी। व्यक्तिवाद के बारे में हम अब भी उसी पुरानी, शास्त्रीय धारणा से चिपके हुए हैं कि वह 'समाज, और विशेषतः राज्य, के विरुद्ध व्यक्ति के संघर्ष' का प्रतीक है। अमेरिका में इसका कोई सवाल ही नहीं। पहली बात तो यह है कि वहां काफी लम्बे समय तक राज्य केवल एक प्रशासनिक संस्था था। हाल के वर्षों में, इसने दूसरी भूमिका भी निभानी शुरू कर दी है, परन्तु इससे राज्य के प्रति अमेरिकियों का दृष्टिकोण नहीं बदल पाया है। यह 'उनका' राज्य है, 'उनके' राष्ट्र की अभिव्यक्ति है; इसके प्रति उनको अगाध आदर है, और है एक अपनत्व भरा स्नेह।"

ज्यां पाल सार्त्र
फ्रांसीसी दार्शनिक

"मुझे यहां (न्यूयार्क) का जीवन पसन्द नहीं है। हरियाली का तो यहां नाम नहीं है। इसमें रह कर आदमी भी पत्थर हो जायेगा।"

निकिता ख्रुश्चेव

"वास्तविक अमेरिकी में कोई खराबी नहीं है। परेशानी तो होती है आदर्श अमेरिकी के साथ। वह तो पूरा घाघ होता है।"

जी० के० चेस्टर्टन
अंग्रेज उपन्यासकार

"अभिभूत, तर्कहीन, उल्लसित,
वह करता है अभ्यर्थना सकुचाये देवताओं की;
डरता नहीं है वह प्रारब्ध के लौह हाथ से हाथ मिलाने में,
अथवा मामूली सी मदिरा के लिए भी नियति से दो-दो हाथ करने में।"

रुडयार्ड किपलिंग
अंग्रेज साहित्यकार

"'हाउडी स्ट्रेन्जर' (क्या हाल-चाल हैं, मेरे अनजाने दोस्त!) कोई विद्वेषपूर्ण अभ्यर्थना नहीं है; और इसका आविष्कार हुआ था अमेरिका में।"

डी० डब्ल्यू० ब्रोगन
अंग्रेज राजनीतिशास्त्री

"अधिकांश यूरोपीय लोगों को अमेरिका में विक्षिप्तता दिखायी देती है। वह, वस्तुतः, उन अमेरिकी लोगों में होती है, जो अपने देश की चरम अपराधी प्रवृत्ति और कुख्याति के विषय में अतिरंजित दावे करते हैं। बात यह है कि बीसवीं सदी के मापदण्डों के अनुसार, अमेरिका में होने वाले अपराध बहुत साधारण कोटि के हैं। जिस व्यक्ति ने वास्तव में किसी रुग्ण समाज को देख रखा है, उसके लिए अमेरिका किसी अस्पताल के उस बाहरी रोगी की तरह जान पड़ेगा, जो जीर्ण विषाद रोग से पीड़ित है तथा जो अस्पताल वालों को लगातार इस बात के लिए परेशान करता रहता है कि उसे एक शैया दे दी जाये। उसे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं होती कि उस शैया की अनिवार्य आवश्यकता किसी ऐसे व्यक्ति को हो सकती है, जो सचमुच बीमार हो।"

राबर्ट कांक्वेस्ट
अंग्रेज राजनीतिक लेखक

"स्वस्थचित्त व्यक्तियों के लिए निर्मित उपचारगृह अमेरिका में खाली ही पड़ा रहेगा।"

जार्ज बर्नर्ड शा
अंग्रेज नाटककार एवं समीक्षक

"किंचित् अमेरिकी लहज़े में बोला जाय, तो २०वीं सदी अभी १९वीं सदी ही है।"

फिलिप ग्वेडल्ला
अंग्रेज इतिहासकार

"अमेरिकी नागरिक को भौतिकवादी समझा जाता है, लेकिन वह ऐसा है नहीं। अमेरिकी दुर्बोध होता है। उसकी रुचि केवल उन्हीं वस्तुओं में होती है, जो जीवन के लिए अनिवार्य हैं। यही कारण है कि वह इतनी शीघ्रता से वस्तुओं का परित्याग कर देता है।"

राजा राव

■■

रेखाचित्र: गोपी गजवानी

अमेरिका एक अमेरिकावासी की दृष्टि में

मैक्स लर्नर

"जैसे-तैसे हम असम्भाव्य अन्तर्विरोधों के इस असम्भव, अतिशयी, उद्वेगपूर्ण, उत्तेजक एवं नितान्त अद्‌भुत समवाय में, जिसे हम अमेरिका कहते हैं, फल-फूल रहे हैं।"

लेखक के विषय में : मैक्स लर्नर उस अमेरिका की भांति ही, जिसके विषय में वह प्रायः लिखते रहते हैं, स्वयं भी कई अंगों के समुच्चय हैं। एक समाचार-पत्र के स्तम्भ-लेखक, सम्पादक तथा साहित्यकार होने के साथ-ही-साथ, वह मैसाचूसेट्स के ब्रैण्डीज विश्वविद्यालय में अमेरिकी सभ्यता के प्रोफेसर भी हैं। १९५९-६० में वह दिल्ली विश्वविद्यालय के 'अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन-संस्थान' में अमेरिकी सभ्यता के फोर्ड फाउण्डेशन प्रोफेसर थे।

यह लेख 'लॉस एंजेलस टाइम्स' के सौजन्य से यहां पुनर्मुद्रित किया गया है।

उचित हो कि अब हम इस प्रश्न का उत्तर पाने का प्रयास करें कि 'अमेरिका क्या है?'

उत्तर कदापि सरल नहीं है, और बहुधा अन्तर्विरोधी भी है। यह अन्तर्विरोध या असंगति भी अमेरिकी जीवन के अपरिमित, बहुविध, अनुभव का ही एक अंग है।

क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से अमेरिका एक विशाल देश है, फिर भी यह त्वरित संचार-साधनों द्वारा इस प्रकार गूंथ दिया गया है कि एक महाद्वीपीय गांव जैसा हो गया है। यह अपने शिक्षा-बजट में कटौती करता है, तो भी शिक्षा पर इस देश में जितना ध्यान दिया जाता है, उतना शायद ही किसी अन्य समाज में दिया जाता हो। इसके स्नातकीय एवं व्यावसायिक विद्यालय संसार में सर्वोत्तम हैं, परन्तु ऐसे बच्चों की संख्या भी, जो पढ़-लिख नहीं सकते, संत्रस्त कर देने वाली है।

यों तो अमेरिकी लोगों में एक गहरी और हठीली रूढ़िवादी प्रवृत्ति पायी जाती है, परन्तु एक दशक से वे ढेर सारी रूढ़ियों और संकीर्ण परम्पराओं को तोड़ते आ रहे हैं और अपने समाज में ऐसे रूपान्तरण ला रहे हैं, जिन्हें देख कर बहुत-से प्रेक्षक एक स्वर से यह कह रहे हैं कि ऐसी आमूल-चूल क्रान्ति आज अन्यत्र कहीं नहीं हो रही। ये क्रान्तियां अब भी अपूर्ण हैं, किन्तु जिन रहस्यमय अन्तर्प्रेरणाओं के कारण इनमें त्वरा आयी थी, उन्हीं के कारण अब इनकी गति मन्द पड़ सकती है और इन पर अंकुश लग सकता है। वर्तमान मनोदशा तो यही है, परन्तु क्या यह अब से पांच वर्ष बाद भी ऐसी ही बनी रहेगी? अमेरिका में आपको, एक ही साथ, परिवर्तनों के लिए अकुलाहट और परिवर्तनों को अवरुद्ध करने की प्रवृत्ति भी मिलेगी।

अमेरिका अपने इतिहास के प्रारम्भ से ही अपनी जनता को सुन्दर, सुखद एवं समृद्ध जीवन के लिए आश्वासन देता आ रहा है; उन आश्वासनों की उसने आंशिक पूर्ति की भी है। परन्तु, यदि दूसरे बहुत-से समाजों से तुलना करें, तो इसके अधिकांश लोगों के लिए सुलभ यह आंशिक उपलब्धि ही उन समाजों के लोगों के जीवन की चरम संतुष्टि के तुल्य है। अमेरिका घोर वस्तुवादी है, परन्तु जिन लोगों ने हर सम्भव प्रयोजन के लिए आन्दोलनों का सूत्रपात किया है, उनसे बढ़ कर नैतिक आदर्शवाद का लम्बा इतिहास भला किस जाति का है?

अमेरिका अपनी प्रौद्योगिकी का—विशेषतः, सामरिक प्रौद्योगिकी का—उपयोग निर्ममता पूर्वक करता है और बहुधा इसके विज्ञान का उपयोग भी लाभार्जन और शक्ति-संग्रह के लिए हुआ है। परन्तु विज्ञान की ओर इसके इतने झुकाव के बावजूद, इसकी अन्तश्चेतना को नैतिक मूल्यों की दिशा में शीघ्रता से प्रेरित किया जा सकता है। अमेरिकी लोगों से वाणिज्य-व्यवसाय के विषय में बात कीजिये, तो आपको तत्क्षण एक सजग, उल्लसित सतर्कता मिलेगी; परन्तु आप उनसे जीवन-मूल्यों की पद्धतियों के विषय में चर्चा कीजिए, तो आपको लगेगा कि उनके स्वभाव के अन्तस्तल तक आपकी पैठ हो गयी है। उनका यह स्वभाव कदाचित् शताब्दियों पुरानी प्रगाढ़ अमेरिकी धार्मिकता का अवशेष है, जो ईसाई चर्च के रूढ़िपंथी सिद्धान्तों से पीछा छुड़ाने के बाद भी उनमें बनी हुई है।

अमेरिकावासियों के बारे में लोगों की मान्यता है कि वे शक्ति और अधिकार के पीछे पागल हैं; इसी तरह, उनके बारे में यह भी समझा जाता है कि वे भौतिकवादी हैं। परन्तु तथ्य यह है कि वे व्यापारिक वस्तुओं के सागर में सराबोर हैं और शक्ति से ओतप्रोत तथा संतृप्त हैं, इसलिए सम्भव है कि वे इनमें से किसी भी चीज का महत्व उन देशों की अपेक्षा कम आंकें, जो इन दोनों ही चीजों के लिए भूखे हैं। वे दम्भी हैं—संसार में उनको जो महत्व आज प्राप्त है, उसकी प्रतीति उन्हें है, इसलिए उनका यह दम्भ स्वाभाविक है। फिर भी, ये उद्धत, दम्भी, लोग जितना आत्मालोचन करते हैं, उतना इतिहास में शायद ही किसी ने किया हो। वे बुद्धि-विचक्षण लोगों का विश्वास नहीं करते, जैसा कि अमेरिका के अतीत और वर्तमान में बौद्धिकतावाद-विरोधी विचारधारा की लम्बी परम्परा से पता चलता है; परन्तु अभिव्यक्ति के माध्यमों (प्रेस, रेडियो, टेलीविजन, आदि) में उसी व्यक्ति की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट होता है और उसी को सफलता मिलती है, जिसके पास कहने को कोई नयी बात हो, कोई नवोन्मेषित विचार हो।

अमेरिका यौवन को उपास्य बना देता है, किन्तु आज उसके बहुत-से युवक जो कुछ करना चाहते हैं, उसकी कल्पना मात्र से उसके रोंगटे खड़े हो गये हैं। वह भविष्य को अपना आराध्य बनाता है, तो भी निरन्तर वह इस ढंग से काम करता है मानो आगामी कल नाम की कोई चीज हो ही नहीं। अमेरिका की संस्कृति, यूरोप और एशिया की संस्कृतियों की तुलना में, अभी नयी है, परन्तु अपने रीति-रिवाजों तथा संस्थाओं के सातत्य की दृष्टि से यह पुरानी है।

अमेरिकी लोग पाकशास्त्र की पुस्तकों के पीछे दीवाने हैं, लेकिन मोटरवालों के लिए खोले गये अनगिनत रेस्तरांओं में से किसी एक में जरा जाकर तो देखिये, आपको दुनिया का सबसे बीभत्स, खराब, खाना वहीं मिलगा। अमेरिकियों को लोग कलात्मक व्यक्ति नहीं समझते, परन्तु इस शताब्दी के तीसरे दशक से लेकर अब तक उन्होंने अच्छे-से-अच्छे उपन्यासकार, चित्रकार, वास्तुशिल्पी और फिल्म-निर्माता पैदा किये हैं। अमेरिकी स्त्री-पुरुषों के बारे में लोगों की धारणा है कि वे अच्छे प्रेमी नहीं बन सकते, किन्तु वे भूल जाते हैं कि अमेरिका ही वह देश है, जहां यौन एवं आमोद-प्रमोद विषयक अनेकानेक ऐसी क्रान्तियां हो चुकी हैं, जो विश्व में व्यक्तित्व के कदाचित् नये प्रतिमान निर्धारित कर सकती हैं; और ये प्रतिमान उन प्रतिमानों से कहीं अधिक शक्तिशाली होंगे, जिनका निर्धारण सोवियत या माओवादी व्यक्ति कर सका है।

अमेरिकी लोगों ने हिंसा की दुस्तर प्रवृत्ति प्रदर्शित की है, परन्तु वे इसके कारणों और प्रभावों के बारे में बहुत चिन्तित भी हैं। वे कानून और व्यवस्था के शासन की आवश्यकता पुनः समझने लगे हैं और यह समझ उनकी भावना में बद्धमूल होती जा रही है। राजनीतिक संघर्ष के अखाड़े में उतरने पर वे भयंकर शत्रु बन जाते हैं, लेकिन बाद में वे इस तरह से व्यवहार करते हैं मानो किसी ने किसी के विरुद्ध चोट पहुंचाने वाली कोई बात कही ही न हो। हर आदमी अमेरिका के सर्वनाश की भविष्यवाणी करता है, और खुद अमेरिकी लोग भी सर्वनाश की भविष्यवाणियां करने में किसी से पीछे नहीं रहते—यह बात और है कि हर समूह की ऐसी भविष्यवाणियों के पीछे अलग-अलग कारण होते हैं। परन्तु अमेरिका में निजी और सामाजिक शक्ति एवं ओजस्विता का प्रवाह अब भी अविच्छिन्न है, और लगता है कि यहां के समाज में संकटों और अतिचारों के झटके झेलने के बाद भी अपने को सन्तुलित कर लेने का कोई प्रबल आन्तरिक गुण अवश्य विद्यमान है।

अमेरिकी लोग हमेशा यह धमकी देते रहते हैं कि यदि अमेरिका ने अपने रंग-ढंग में सुधार नहीं किया, तो वे कनाडा, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया या स्कैण्डिनेवियाई देशों में चले जायेंगे; परन्तु अपने देश को छोड़ जाना पीड़ाप्रद न होता, तो कोई इस धमकी को धमकी मानता ही नहीं। अस्तु, जैसे-तैसे हम असम्भाव्य अन्तर्विरोधों के इस असम्भव, अतिशयी, उद्वेगपूर्ण, उत्तेजक एवं नितान्त अद्भुत समवाय में, जिसे हम अमेरिका कहते हैं, फल-फूल रहे हैं। ■■

डा० रेने जे० ड्यूबोस

लेखक हमें वातावरण के संरक्षण की महती आवश्यकता का स्मरण कराता है। वह इस व्यापक तर्क का खण्डन भी करता है कि 'प्रकृति ही श्रेष्ठतम ज्ञाता है।' संसार के कोयला एवं तेल भण्डार इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि प्रकृति जैव कचरे के पुनश्चक्रण में असफल रही है। और, पृथ्वी के सबसे आकर्षक दृश्यांचल आदिकालीन वन या 'अछूती प्रकृति' नहीं, अपितु वे दृश्य हैं, जिन्हें मानवानुकूल बना लिया गया है।

जीवन-ज्योति के विना हमारा यह ग्रह कितना विषण्ण, अनाकर्षक और तुच्छ दिखलायी पड़ता। यदि पृथ्वी का धरातल जीवित प्राणियों और जैव तत्वों से ढका न होता, तो वह भी चन्द्रमा के धरातल के समान ही निर्जन, निःसत्व, प्रतीत होता। इसका रंगीन तथा विविधतापूर्ण दृश्यांचल मुख्यतः जीवाणुओं, पौधों तथा पशुओं की देन है, जो निरन्तर इसकी अचेतन चट्टानों और गैसों को विविध प्रकार के जैव पदार्थों में वदलते रहते हैं। मनुष्य भूमि के भौतिक गुणों को वदल कर, जीवों के वितरण-अनुपात में परिवर्तन कर तथा प्रकृति के नियमों में अपनी व्यवस्था तथा कल्पना का पुट दे कर इस विविधता को और भी वढ़ा देता है।

निश्चय ही, प्रकृति में मानव के अनेक हस्तक्षेप वहुत ही अनिष्टकारी सिद्ध हुए हैं। इतिहास कृषि और उद्योगों में व्याप्त कुप्रवन्ध और कुव्यवस्था के कारण उत्पन्न पारिस्थितिक विनाशों और विपत्तियों के उदाहरणों से भरा पड़ा है। प्राचीन काल में जो देश अत्यन्त समृद्ध थे, वे आज संसार के सवसे विपन्न देशों में गिने जाते हैं। उनके कुछ नगर, जो कभी ख्याति के शिखर पर पहुंच चुके थे, आज

ऊटकमण्ड का ऊटी उद्यान (दायें), जो अछूती प्रकृति के मानवीकरण का एक उत्कृष्ट दृष्टान्त प्रस्तुत करता है।

"यह सही है कि अनेक प्राचीन सभ्यताओं ने अपने पर्यावरण नष्ट कर दिये हैं, और यही प्रक्रिया अब अत्यधिक उद्योग-प्रधान देशों में चल रही है। किन्तु यह प्रक्रिया अपरिहार्य नहीं है।"

परित्यक्त पड़े हैं; भूक्षेत्र, जो किसी समय अत्यन्त उर्वर थे, आज बंजर मरुस्थल बन गये हैं।

प्राचीन सभ्यताओं के पतन में रोगों, युद्धों तथा गृहयुद्धों ने, निश्चय ही, महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत की है। लेकिन, मूल कारण सम्भवतः वह क्षति ही रही है, जो पर्यावरणीय दुराचरणों के परिणामस्वरूप मृदा तथा जलीय स्रोतों को पहुँची है। इसी प्रकार, आज भी संसार के अनेक भागों में कृषि-भूमि के दुरुपयोग या अति-उपयोग, औद्योगिक प्रदूषण तथा युद्धों के कारण पर्यावरण दूषित हो रहा है।

जून १९७२ में, स्टाकहोम में मानवीय पर्यावरण सम्बन्धी संयुक्तराष्ट्र-संघीय सम्मेलन का आयोजन हुआ था। इस सम्मेलन का मूल उद्देश्य मनुष्य द्वारा पृथ्वी के कुप्रबन्ध के कारण पर्यावरण में उत्पन्न दोषों के परिहार एवं रोकथाम के लिए विश्वव्यापी स्तर पर व्यवहार्य उपाय खोजना और विधियां तैयार करना था। मैं यहां इन समस्याओं के तकनीकी पहलुओं पर चर्चा करने के बजाय, उनसे आगे जाने का प्रयत्न करूंगा। मैं ऐसे तथ्य प्रस्तुत करूंगा, जिनसे यह प्रकट होगा कि मनुष्य, वस्तुतः, प्रकृति में और भी सुधार कर सकता है। मेरी धारणा है कि मनुष्य द्वारा प्राकृतिक साधनों तथा प्रौद्योगिकी के उपयोग और पर्यावरणीय स्वास्थ्य में परस्पर कोई टकराव नहीं, और मानव, वस्तुतः, पृथ्वी की उन क्षमताओं को उभार सकता है, जो उसके गर्भ में दबी पड़ी हैं।

मनुष्य की अनेक पुरातन एवं वर्तमान गतिविधियों के जो विनाशकारी पारिस्थितिक परिणाम सामने आये हैं, वे प्राकृतिक नियमों के अधिक ज्ञान तथा आदर की आवश्यकता की ओर इंगित करते हैं। डा० बैरी कामनर ने पर्यावरण सम्बन्धी अपने चौथे नियम, 'प्रकृति ही श्रेष्ठतम ज्ञाता है', में इस विचार को संक्षेप में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया। अस्तु, मैं पहले इस नियम की सीमाओं पर विचार करूंगा।

यदि प्रकृति से छेड़छाड़ न की जाये, तो सभी पर्यावरण सन्तुलन की उसी अवस्था की ओर अग्रसर होते हैं, जिसे पर्यावरण-विशेषज्ञ चरम या परिपक्व अवस्था कहते हैं। सन्तुलन की अवस्थाओं के अन्तर्गत, प्रकृति के कचरे निरन्तर पर्यावरण-तन्त्र में पुनश्चक्रित होते रहते हैं। पुनश्चक्रण की यह प्रक्रिया, कम या अधिक, स्वनियन्त्रित हो जाती है। उदाहरण के लिए, किसी प्राकृतिक वन में अोक के फल भूमि पर गिरते हैं और उन्हें गिलहरियां गटक जाती हैं। गिलहरियों को लोमड़ियां अथवा अन्य परभक्षी जन्तु अपना आहार बनाते हैं। वृक्षों की मृत पत्तियां और शाखाएं तथा पशुओं द्वारा उत्सर्जित मलमूत्र जीवाणुओं द्वारा आत्मसात कर लिये जाते हैं। ये जीवाणु अगलित जीवांशों और खनिज पोषक तत्वों के रूप में अपने रचक-तत्व और अवयव मिट्टी में वापस भेज देते हैं। इस प्रकार, पुनश्चक्रित पदार्थों से अधिक वनस्पति उगती है और पर्यावरण-प्रणाली सुरक्षित रहती है।

इस प्रकार की सन्तुलित पर्यावरण-प्रणालियों के सन्दर्भ में, 'प्रकृति ही श्रेष्ठतम ज्ञाता है', कथन का प्रयोग युक्तिसंगत है। लेकिन, वस्तुतः यह एक ही बात को दूसरे शब्दों में दुहराना मात्र नहीं है। जैसा कि इस मुहावरे में कहा गया है, 'प्रकृति' शब्द केवल ऐसी स्थिति का बोधक है, जो विकासात्मक अनुकूलन से उत्पन्न हुई हो। यह अनुकूलन नाना प्रकार की उन सामग्रियों के पारस्परिक संयोग से उत्पन्न होता है, जो एक संश्लिष्ट प्रणाली का निर्माण करती हैं। यदि प्रकृति से कोई छेड़छाड़ न की जाये, तो कोई समस्या उत्पन्न ही नहीं होती; उस स्थिति में केवल समाधान उपलब्ध हैं, क्योंकि सन्तुलन की अवस्था एक अभ्यानुकूलन-अवस्था है। लेकिन, किसी एक क्षेत्र में सामान्यतः एक से अधिक सन्तुलन-अवस्थाएं होती हैं; और इस प्रकार, यह आवश्यक नहीं कि प्रकृति का समाधान ही सर्वश्रेष्ठ या सबसे अधिक रोचक समाधान हो। जैसा कि मैं बाद में बताऊंगा, निर्जन अवस्था की तुलना में प्रकृति और मानव के बीच सहजीवी क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप, बहुधा अधिक विविधतापूर्ण एवं रोचक पर्यावरण-प्रणालियों का प्रादुर्भाव हुआ है।

आश्चर्य की बात यह नहीं कि प्राकृतिक वातावरण स्वनियन्त्रित होते हैं और बहुधा सक्षम प्रतीत होते हैं। आश्चर्य की बात, वस्तुतः, यह है कि दैवी विपत्तियों तथा मनुष्य द्वारा छेड़छाड़ न होने की स्थिति में भी, जबकि वातावरणों से सामान्यतः यह अपेक्षित होता है कि वे अनुकूलतम अवस्था को प्राप्त कर लेंगे, इनमें से अनेक वातावरण पर्यावरणीय समस्याओं का भोंडा समाधान ही प्रस्तुत करते हैं।

प्रकृति का विवेक बहुधा संकीर्ण और अदूरदर्शी होता है। यह उन अनेक आपदाओं से स्पष्ट है, जिन्हें अछूते प्राकृतिक वातावरण में पौधों तथा पशुओं को बार-बार झेलना पड़ता है। ध्रुवप्रदेशीय चूहों, छुछुंदरों, खरगोशों जैसे जीवों की संख्या का बारबार आकस्मिक विनाश होता रहता है। निस्सन्देह, इसका कारण प्रकृति-तन्त्र में निहित वे त्रुटियां हैं, जो प्राणि-संख्या को नियन्त्रित करती हैं। इस प्रकार का संख्या-नाश पशुओं के लिए त्रासकारी अनुभव होता है, जैसा कि मृत्यु से बहुत समय पूर्व बहुधा उनके व्यवहार में उत्पन्न भारी गड़बड़ी से प्रकट है। यह संख्या-विध्वंस जनसंख्या के आकार तथा स्थानीय साधनों के मध्य पुनः सन्तुलन कायम करने का एक भोंडा और क्रूर तरीका है। उन जीवों के अनुभवों को देखते हुए, मनुष्य की बात तो अलग रही, कोई अत्यन्त आशावादी भी शायद ही यह दावा करने का साहस करेगा कि जनसंख्या पर नियन्त्रण प्राप्त करने का सर्वोत्तम तरीका केवल प्रकृति को ही ज्ञात है।

सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि मनुष्य की छेड़छाड़ या दैवी विपत्तियों के कारण होने वाले पर्यावरणीय परिवर्तनों के बिना भी, प्रकृति अनेक बार पुनश्चक्रण की उन प्रक्रियाओं को पूर्ण करने में असफल रहती है, जो पर्यावरणीय सन्तुलन की विशिष्ट प्रतीक मानी जाती हैं। दलदली कोयला, खनिज कोयला, तेल, सलेटी शैल तथा जैवमूल के अन्य खनिज-भण्डार प्रकृति की ऐसी असफलताओं के ज्वलन्त उदाहरण हैं। ये सभी पदार्थ मुख्यतः उन पौधों तथा प्राणियों से प्राप्त होते हैं, जिनमें आंशिक अपघटन के बाद रासायनिक परिवर्तन की प्रक्रिया बन्द हो जाती है। प्रचुर परिमाण में इन पदार्थों की विद्यमानता इस तथ्य की ओर इंगित करती है कि वे पुनश्चक्रण की प्रक्रिया से नहीं गुजरे हैं। यह एक विरोधाभास है कि मनुष्य कोयला या तेल को जला कर एक प्रकार से इस पुनश्चक्रण की प्रक्रिया को पूर्ण करने में थोड़ी-बहुत सहायता ही करता है, क्योंकि इस प्रकार वह उक्त ईंधनों में निहित कार्बन तथा खनिज तत्वों को पौधों के विकास के लिए फिर सुलभ कर देता है। इस प्रकार के पुनश्चक्रण के मामले में कठिनाई यह है कि ईंधनों के जलने से उत्पन्न पदार्थ और तत्व वायु, जल तथा मिट्टी में इतनी तेजी के साथ घुल-मिल जाते हैं कि उनके कारण पर्यावरण बोझिल हो जाता है।

समुद्री पक्षियों आदि की बीट का इकट्ठा होना प्रकृति की पुनश्चक्रण प्रक्रिया की असफलता का एक और ज्वलन्त उदाहरण है। बीट, जो अब खाद के रूप में प्रयुक्त होती है, कतिपय द्वीपों तथा पहाड़ियों पर लाखों वर्षों से एकत्र होती रही है। उदाहरण के लिए, लाखों समुद्री पक्षी पेरू के समुद्री तट से कुछ दूर स्थित चिंचा द्वीपसमूह को अपने विश्राम तथा प्रजनन के स्थल के रूप में प्रयुक्त करते हैं। शताब्दियों से इस द्वीप पर उनकी विष्ठा और अन्य उत्सर्जित वस्तुओं के संग्रहीत होने के फलस्वरूप चट्टानों पर बीट की १८ से लेकर २० मीटर तक मोटी तहें जम गयी हैं। नाइट्रोजन, फास्फेट तथा पोटाश की प्रचुरता के कारण बीट एक आदर्श उर्वरक है और इसलिए इसका इकट्ठा होना पुनश्चक्रण-प्रक्रिया की असफलता का एक जीता-जागता उदाहरण है। इस बीट को इकट्ठा कर और उसे खेतों तक पहुंचा कर मनुष्य एक बार फिर पुनश्चक्रण-प्रक्रिया को पूर्ण करने में

सहायक सिद्ध होता है। खेतों में यह बीट, पौधों के पोषक तत्व के रूप में, पुनः जैविक चक्र में समाविष्ट हो जाता है।

जिस प्रकार यह दावा गलत है कि प्रकृति में कोई उच्छिष्ट वस्तु नहीं है, उसी प्रकार यह कहना भी गलत है कि प्रकृति का अपना कोई कबाड़खाना नहीं है। वस्तुतः, पुराजीव-विज्ञान तो इन्हीं कबाड़खानों की आधारशिला पर निर्मित और विकसित हुआ है। यह स्वीकार करना होगा कि प्रौद्योगिकी-प्रधान समाज में ठोस कचरे की मौजूदगी पुनश्चक्रण-प्रक्रिया की बहुत बड़ी असफलता है, जिसके लिए, वस्तुतः, मनुष्य ही उत्तरदायी है। लेकिन, पर्यावरण सम्बन्धी यह असफलता उन चेष्टाओं की अभिव्यक्ति है, जो सदा से मानवीय प्रकृति का अंग रही हैं। वानरों की तरह आदिकालीन मानव भी निरर्थक बर्बादी करता था और उच्छिष्ट पदार्थों या कूड़े-कचरे के प्रति लापरवाह रहता था। और, आज भी उसका यह स्वभाव वैसा ही बना हुआ है।

ठोस कचरे की समस्या बहुत गम्भीर बन गयी है, क्योंकि हम पहले की अपेक्षा आज अधिक कचरा उत्पन्न कर रहे हैं, और इस कचरे की रासायनिक संरचना सामान्यतः ऐसी होती है, जिससे प्राकृतिक पर्यावरण-प्रणालियां परिचित नहीं हैं। प्रकृति को यह मालूम नहीं कि नयी परिस्थितियों से कैसे निपटा जाये, क्योंकि विकास-प्रक्रिया के इतिहास में उनका कोई उदाहरण नहीं मिलता। अतएव, ठोस कचरे को ठिकाने लगाने की समस्या का समाधान प्रकृति के तरीकों से सम्भव नहीं। इसके लिए नयी तकनीकी विधियों की तथा मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन की आवश्यकता है।

हमें आये दिन उपलवृष्टि, सूखा, तूफान, भूचाल, ज्वालामुखी-विस्फोट जैसी विनाशकारी प्राकृतिक घटनाओं का सामना करना पड़ता है, जिनसे यह बात भलीभांति स्पष्ट हो जाती है कि प्राकृतिक विश्व ही एकमात्र सम्भव श्रेष्ठतम संसार नहीं है। इन दैवी विपत्तियों के लिए मनुष्य उत्तरदायी नहीं है, किन्तु वह अन्य प्राणियों की तरह ही इनसे पीड़ित होता है। इससे भी अधिक दिलचस्पी की बात शायद यह है कि प्रकृति स्वयं पृथ्वी की विविध क्षमताओं को प्रकट करने में असमर्थ है। प्रकृति की अनेक सम्पदाएं उन्हीं क्षेत्रों में प्रकाश में आती हैं, जिनका मानवीकरण हो गया है। कृषि-भूमि, उद्यान एवं पार्क मनुष्य के श्रम से ही बनाये और संवारे जाते हैं और वही उनके रखरखाव की व्यवस्था करता है।

जब तक मनुष्य ने हस्तक्षेप नहीं किया, अधिकांश पृथ्वी वनों और दलदलों से आच्छादित थी। उस समय यह अछूती हरित-वसना वसुन्धरा, निश्चय ही, प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर थी। लेकिन, वह सौन्दर्य, जिसका प्रादुर्भाव मुख्यतः जगतीतल की व्यापक विशालता और एकरूपता से हुआ था, एकरसता से बोझिल और नीरस था। आदियुगीन वनों ने पृथ्वी की विविधता को छिपा रखा था। पृथ्वी की इस विविधता का उद्घाटन मनुष्य ने कृषि तथा अपनी सभ्यताओं का निर्माण करके किया। यहां मनुष्य द्वारा पृथ्वी पर किये गये सृजनात्मक परिवर्तनों का विस्तृत विश्लेषण सम्भव नहीं होगा, अतएव मैं केवल एक उदाहरण दे कर इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न करूंगा। यह उदाहरण फ्रांस के उस भाग का है, जहां मैं पैदा हुआ था।

मनुष्य के बसने से पहले आइल-द-फ्रांस ऐसा भू-क्षेत्र था, जिसकी कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं थी। पहाड़ियां इतनी अनाकर्षक और नीची हैं कि यदि उनकी चोटियों पर पावन गिरजाघर तथा मकानों के समूह न बने होते, तो उनमें कोई दिलचस्पी न लेता। नदियों का प्रवाह बहुत मन्द है तथा तालाबों में जल बहुत कम और गंदला है। लेकिन इन्हीं नदियों और तालाबों के तट मानव के उपयोग में आने योग्य बना लिये गये हैं, और उनके नामों का उल्लेख साहित्य में इतनी बार हुआ है कि वे शान्तिपूर्ण ग्राम्य जीवन के आकर्षक प्रतीक बन गये हैं। आकाश शायद ही कभी चमत्कारी दिखायी देता हो, परन्तु चित्रकारों ने इसी आकाश के हल्के प्रकाश को आधार बना कर अत्यन्त सुन्दर और विचारोत्तेजक चित्र तैयार किये हैं।

जब से नव-पाषाण काल के अधिवासियों तथा मध्ययुग के किसानों ने पुरातन वनों को साफ किया, तभी से आइल-द-फ्रांस प्रान्त का मानवानुकूलित आकर्षण निरन्तर बना हुआ है। इस आकर्षण के समक्ष उसकी नैसर्गिक सम्पदा का सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। आज भी यह भूमि बड़ी उर्वरा है, हालांकि १,००० वर्ष से भी अधिक समय से इस पर कृषि होती

कश्मीर में डल झील (नीचे) और अलास्का की मातानुस्का घाटी (अगले पृष्ठ पर) में हरेभरे सुनहरे फार्म इस बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं कि मनुष्य ने किस प्रकार पृथ्वी का मानवीकरण कर लिया है। डा० ड्यूबोस का कहना है कि लोग इस प्रकार के भू-दृश्यांचलों को 'प्रकृति' की संज्ञा देने लगे हैं, जबकि निर्जन बीहड़ों और वीरानों को सजा-संवार कर उनमें ऐसा सौन्दर्य निखारने का प्रमुख श्रेय मानवीय श्रम और कल्पना को ही है।
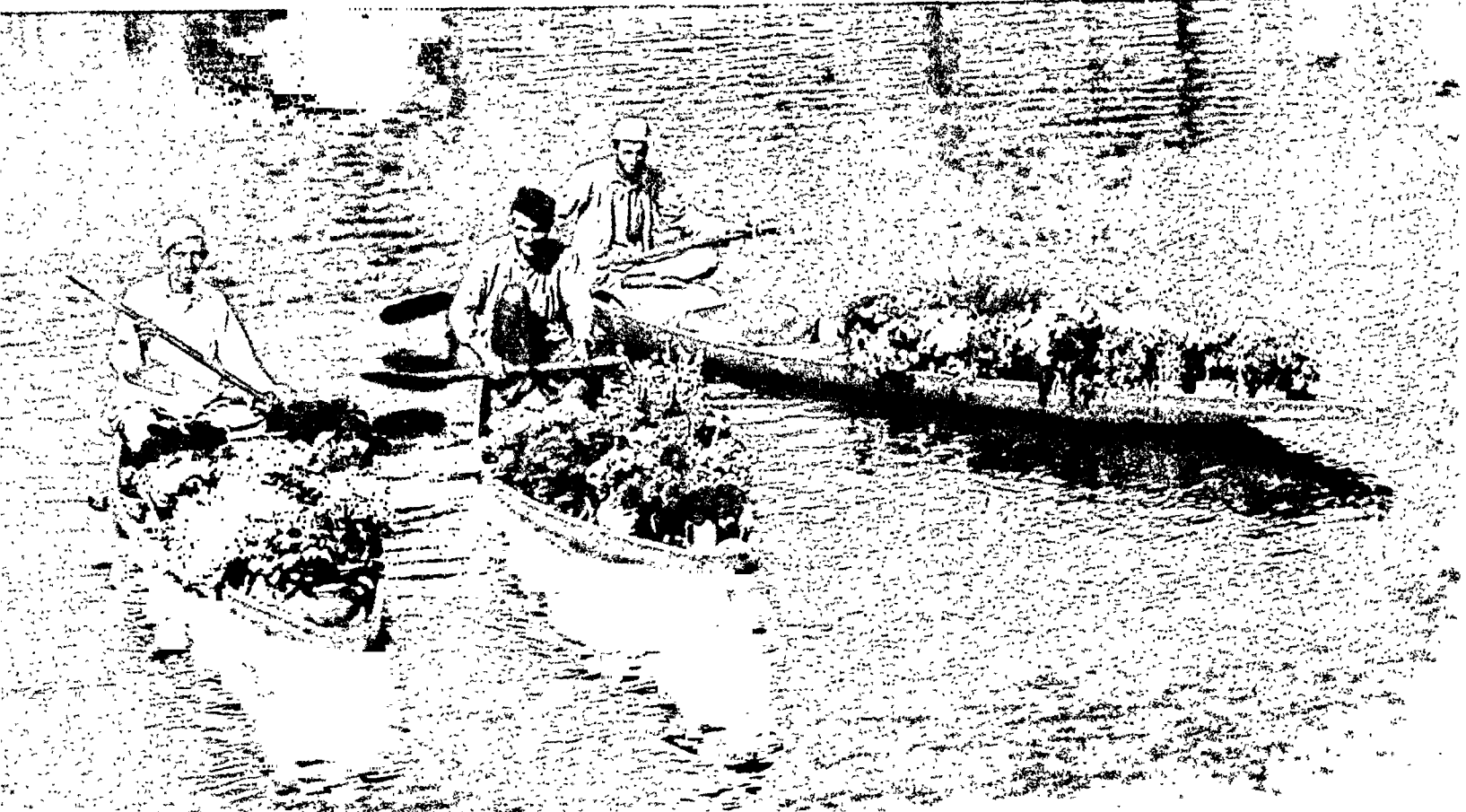
आ रही है। इतने दीर्घकाल तक इस पर गहन कृषि होने के कारण, इसकी उर्वरता क्षीण हो जानी चाहिये, परन्तु ऐसा हुआ नहीं। आज भी इस कृषि-भूमि पर एक बड़ी जनसंख्या निर्भर करती है तथा यहां अनेक प्रकार की मानव-बस्तियां बसी हुई हैं।

मैंने आइल-द-फ्रांस के बारे में अभी जो कुछ बताया है, वही बात संसार के अन्य भागों पर भी लागू होती है। नव-पाषाण काल में, कृषि-क्रान्ति के अवतरण के बाद, बस्तियां बसा कर रहने वाले लोग और किसान समस्त संसार में वनों को साफ कर भूमि को कृषियोग्य बनाने में व्यस्त रहे हैं। उनके कठिन परिश्रम के फलस्वरूप, आश्चर्यजनक विविधता से पूर्ण पर्यावरणों का निर्माण हुआ है, जिनकी पृष्ठभूमि में ही अधिकांश मानव-जीवन का विकास हुआ है। एक आदर्श भू-अंचल में वनाच्छादित पर्वत और पहाड़ियां शामिल होती हैं, जो चरागाहों और कृषियोग्य भूमियों, आवासों और घरों से भरे-पूरे गांवों, उनके देवालयों और सार्वजनिक भवनों के लिए पृष्ठभूमि का काम करती हैं। अब लोग इस प्रकार के मानवानुकूलित भू-दृश्यांचल को ही 'प्रकृति' की संज्ञा देते हैं, हालांकि उसकी अधिकांश वनस्पतियां मनुष्य द्वारा लायी और उगायी गयी हैं और उसके पर्यावरणीय स्वरूप को व्यक्तिगत पर्यावरण-व्यवस्था द्वारा ही कायम और सुरक्षित रखा जा सकता है।

जिस प्रकार प्रकृति अपनी सम्भाव्य विविधता को पूर्ण अभिव्यक्ति देने में असमर्थ रही है, उसी प्रकार वह मानव-निर्मित कृत्रिम पर्यावरणों को भी स्वस्थ अवस्था में बनाये रखने में समर्थ नहीं है। अब, जबकि संसार के इतने बड़े भू-भाग का मानवीकरण हो चुका है, पर्यावरणीय स्वास्थ्य बहुत सीमा तक मनुष्य की सतर्कता पर निर्भर करता है। दलदल वाले इलाकों से पानी की निकासी बराबर होती रहनी चाहिये; वनों का उचित प्रबन्ध होना चाहिये; फसल-चक्र, सिंचाई तथा उर्वरकों का आश्रय लेकर और खरपतवार नष्ट करके खेतों की उर्वरता को बनाये रखना चाहिये। प्राचीन काल से ही इटली में रोम के निकट स्थित काम्पागाना रोमा के दलदलों को जब भी मनुष्य नियन्त्रित करने में असमर्थ हुआ, वहां मच्छरों तथा मलेरिया का प्रकोप हुआ। इसी प्रकार, हजार वर्ष से जो कृषि-भूमि आर्थिक दृष्टि से उत्पादनशील तथा देखने में आकर्षक रही है, वही किसानों द्वारा परित्यक्त हो जाने पर झाड़-झंखाड़ तथा खरपतवार से भर गयी है। परित्यक्त बागानों, खेतों तथा चरागाहों की तेजी से बढ़ती हुई संख्या इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य द्वारा अपने उपयोग के योग्य बनायी गयी मानवानुकूलित प्रकृति मानवीय प्रयासों और देखभाल के अभाव में अधिक दिन तक उत्कृष्ट गुणवत्ता कायम नहीं रख सकती।

यह सही है कि अनेक प्राचीन सभ्यताओं ने अपने पर्यावरण नष्ट किये हैं और यही प्रक्रिया अब अत्यधिक उद्योग-प्रधान देशों में चल रही है। लेकिन, सभ्यता के विकास के साथ यह प्रक्रिया अपरिहार्य नहीं। कतिपय भूखण्डों में एक हजार वर्ष से गहन कृषि होती आ रही है, परन्तु न तो उनकी उर्वरा शक्ति में ह्रास हुआ है और न ही उनके नैसर्गिक सौन्दर्य में कमी आयी है। मनुष्य बीहड़ों और वीरानों से कृत्रिम पर्यावरण का निर्माण कर सकता है, और उसका इस प्रकार प्रबन्ध भी कर सकता है, जिससे वह दीर्घकाल तक अपने मूल रूप को बनाये रखने के साथ-साथ, आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद, नैसर्गिक सौन्दर्य से भरपूर तथा उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए अनुकूल बना रहे। कतिपय मानव-विकसित भूखण्ड अत्यन्त दीर्घकाल तक अपने मूल रूप को बनाये रखने में समर्थ रहे हैं और उनका अस्तित्व पुरानी दुनिया के अनेक भागों को आज भी शान्ति का एक अनूठा भाव प्रदान करता है और यह विश्वास जागृत करता है कि मनुष्य भविष्य के लिए पृथ्वी के प्रबन्धकर्ता के रूप में कार्य कर सकता है।

यदि पर्यावरण सम्बन्धी ठोस सिद्धान्तों के अनुसार भूमि का उपयोग न किया जाये, तो वह गहन कृषि के अन्तर्गत निरन्तर उपजाऊ नहीं बनी रह सकती। अतीत में, इन सिद्धान्तों का विकास उन तरीकों से हुआ, जिनका उपयोग मृदा में उर्वरता एवं खाद तत्वों का ऊंचा स्तर बनाये रखने के लिए किया जाता था। लेकिन, मृदा-संरचना, पौध विज्ञान तथा पशु-पालन सम्बन्धी वैज्ञानिक जानकारी कृषि-प्रबन्ध के लिए एक नये आधार की स्थापना कर रही है। गत शताब्दी में, पुराने अनुभवसिद्ध तरीकों का स्थान धीरे-धीरे अधिक वैज्ञानिक तरीकों ने ले लिया। इनमें कृत्रिम उर्वरकों तथा कीट-नाशकों का प्रयोग भी शामिल है। इस प्रकार, वैज्ञानिक कृषि से पौधों की उपज तथा पशुजन्य पदार्थों के उत्पादन में भारी वृद्धि सम्भव हो सकी है। इसके अतिरिक्त, प्रयोगात्मक शोधों और अध्ययनों से मालूम हुआ है कि कई प्रकार की जमीनें जैव उर्वरकों के बिना भी दीर्घकाल तक उपजाऊ बनी रह सकती हैं, बशर्ते उनके लिए रासायनिक उर्वरकों की वैज्ञानिक आधार पर निर्धारित उचित एवं आवश्यक मात्रा उन्हें निरन्तर मिलती रहे।

लेकिन, खेती की उपज ही कृषि-क्षमता का एकमात्र मापदण्ड नहीं हो सकती। एक अन्य कसौटी (कैलोरियों में मापी गयी) ऊर्जा की

"पुरातन, आदिकालीन, वनों से इतने दीर्घकाल तक भयभीत रहने के उपरान्त, अब मनुष्य ने यह अनुभव करना आरम्भ कर दिया है कि उनकी विलक्षण दीप्ति उसमें ऐसे विस्मय का भाव जाग्रत करती है, जिसका अनुभव किसी वाटिका या फलोद्यान में नहीं हो सकता।"

वह मात्रा भी है, जिसकी खाद्यान्नों की एक निर्धारित मात्रा के उत्पादन के लिए आवश्यकता होती है। जब वैज्ञानिक कृषि इस कसौटी पर परखी जाती है तो इसकी क्षमता बहुधा बहुत कम पायी जाती है। यद्यपि यह बात विरोधाभास सी प्रतीत होगी, फिर भी यह सही है कि ऐसी अनेक परिस्थितियां हैं, जिनमें आधुनिक किसान खाद्यान्नों के रूप में प्राप्त होने वाली कैलोरीगत ऊर्जा की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में औद्योगिक (कैलोरीगत ऊर्जा) खर्च करता है। उसका कैलोरीगत ऊर्जा का यह व्यय मुख्यतः पेट्रोल और विद्युत्शक्ति के रूप में होता है, क्योंकि पेट्रोल का उपयोग कृषि-उपकरणों को चलाने तथा विद्युत्शक्ति का उपयोग रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का निर्माण करने में होता है। इसमें वह ऊर्जा शामिल नहीं है, जिसकी आवश्यकता भूमि की सिंचाई करने तथा ट्रैक्टरों, ट्रकों एवं आधुनिक कृषि-यन्त्रों के निर्माण के लिए पड़ती है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि यह कैलोरीगत ऊर्जा पेट्रोल और बिजली के बजाय, मानव-श्रम से प्राप्त होती, तो आधुनिक सभ्यताओं का विकास सम्भव नहीं होता। फिर भी, यह एक तथ्य है कि यदि जीवाश्म ईंधन ही ऊर्जा के सबसे महत्वपूर्ण स्रोत बने रहते, तो विश्व की जनसंख्या की विशालता के कारण ऊर्जा का यह घाटा, जो आज सभी सम्पन्न उद्योग-प्रधान देशों की कृषि को उठाना पड़ रहा है, अधिक समय तक सहन कर पाना सम्भव नहीं होता। इसके अलावा, विकासोन्मुख देशों को, जो पृथ्वी के अधिकांश भाग में छाये हुए हैं, इन विधियों से लाभान्वित करना भी सम्भव नहीं होता।

स्थिति की किसी भी प्रकार मीमांसा कीजिये, वैज्ञानिक कृषि की वर्तमान कार्य-प्रणाली उसी समय तक सम्भव है, जब तक ऊर्जा के सस्ते स्रोत उपलब्ध हैं। यदि परमाणु विकिरण या सौर विकिरण से उत्पन्न ऊर्जा सस्ती दर पर भारी मात्रा में उपलब्ध न की गयी, तो विश्व में उपलब्ध जीवाश्म ईंधनों की कुल मात्रा के समाप्त होने के बाद, आधुनिक किसान आधुनिक प्रौद्योगिकीविद् के समान ही निष्क्रिय हो जायेगा। अतः, भूमि-प्रबन्ध का भविष्य ऊर्जा के नये स्रोतों के विकास से उसी प्रकार घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है, जिस प्रकार मानव-जीवन के अन्य सभी पहलू उससे सम्बद्ध हैं।

मानव का उद्भव होने से लेकर अब तक पृथ्वी के धरातल पर ७० अरब से एक खरब मानव विचरण कर चुके हैं। इनमें से अधिकांश ने कृषि-क्रान्ति के उपरान्त मानव द्वारा कृत्रिम रूप से संवारी-सजायी और उपयोगी बनायी गयी धरती पर निवास किया है।

संसार के प्रत्येक भाग में, मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्ध ने वास्तविक सहजीवन का रूप ग्रहण किया है। यह ऐसा जैविक सम्बन्ध है, जो एक ही प्रणाली के दो भागों में इस प्रकार परिवर्तन लाता है, ताकि वह दोनों के लिए ही हितकर हो। जैविक सहजीविता के माध्यम से घटित यह रूपान्तरण ही, पृथ्वी पर विविधतापूर्ण स्थानों के अस्तित्व तथा मनुष्य और पर्यावरण के मध्य दृष्टिगोचर उस अनुरूपता के लिए उत्तरदायी है, जो उन क्षेत्रों में पायी जाती है, जहां दीर्घकाल से मानव-बस्तियों का अस्तित्व चला आ रहा है।

इसके अतिरिक्त, मनुष्य और पर्यावरण के पारस्परिक रूपान्तरण के फलस्वरूप नाना प्रकार की ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गयी हैं, जो अपनी निजी मानवीय और पर्यावरणीय विशेषताओं से पूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिणी प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में स्थित विभिन्न द्वीपों की कृषिविधियां, सामाजिक रीतियां तथा आचार-व्यवहार केवल भूगर्भीय तथा जलवायु सम्बन्धी तत्वों पर ही नहीं, अपितु वहां के मूल निवासियों—पोलीनेशियन, मेलानेशियन या इण्डोनेशियन—और बाद में इन द्वीपों पर आकर बसने वाले पाश्चात्य और प्राच्य लोगों की सांस्कृतिक मान्यताओं पर भी बहुत अधिक निर्भर करते हैं। फिजी, ताहिती तथा हवाई द्वीपों के बीच विद्यमान भारी अन्तर के लिए प्राकृतिक परिस्थितियों की तुलना में सांस्कृतिक मान्यताएं कहीं अधिक उत्तरदायी हैं। आरम्भ में, प्रशान्त द्वीपसमूह में विभिन्न जातियों के लोग आकर बसे और आज वहां मूल निवासियों की मान्यताओं के अतिरिक्त, उपनिवेश बसाने वाले अंग्रेजों, फ्रांसीसियों या अमेरिकियों की मान्यताओं की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं।

संस्कृति द्वारा प्रकृति के स्वरूप-निर्धारण की बात विश्व के अन्य अनेक भागों में भी देखी जा सकती है। जैसे-जैसे पृथ्वी के मानवीकरण की प्रक्रिया गति पकड़ती जायेगी, वैसे-ही-वैसे इस तथ्य का महत्व भी अधिकाधिक बढ़ता जायेगा कि शीघ्र ही समस्त पृथ्वी पर मनुष्य बस जायेगा और उसका उपयोग करने लगेगा। निश्चय ही, बस्तियां या उपनिवेश बसाने का यह क्रम आधुनिक प्रौद्योगिकी के अवतरण से पूर्व चल पड़ा था। लेकिन, अन्तर यह है कि अब मनुष्य कुछ उन इनेगिने क्षेत्रों को छोड़ कर, जो बहुत ठण्डे, बहुत गर्म, बहुत सूखे, बहुत नम, अति दुर्गम या दीर्घकालीन मानव-निवास की दृष्टि से अत्यधिक ऊंचाई पर स्थित हैं, शेष सभी भू-क्षेत्रों पर बस गये हैं और अपने लाभार्थ उनका उपयोग कर रहे हैं।

संयुक्तराष्ट्र-संघीय खाद्य एवं कृषि संघटन के अनुसार, लगभग समस्त उत्कृष्ट भूमियों पर कृषि हो रही है। भविष्य में कृषि के विस्तार और विकास के लिए कम उपजाऊ सीमान्त-भूमियों का प्रयोग करने के बजाय, सम्भावना यही है कि अधिक गहन प्रबन्ध का आश्रय लिया जायेगा। हो सकता है कि वनों के उपयोग में कुछ और वृद्धि हो, किन्तु अन्यथा और अधिक भू-क्षेत्र का उपयोग नहीं किया जायेगा। वस्तुतः, विकसित देशों में नयी भूमि को उपयोग में लाने की प्रवृत्ति अब समाप्त हो गयी है, और शेष संसार में भी अगले कुछ ही दशाब्दों में इसके समाप्त हो जाने की पूरी सम्भावना है। खाद्य एवं कृषि संघटन की हाल की एक रिपोर्ट में इसके लिए १९८५ अन्तिम तिथि निर्धारित की गयी है।

मानवीय पर्यावरण सम्बन्धी संयुक्तराष्ट्र-संघीय सम्मेलन का आयोजन मानव-इतिहास के एक संकट-काल में हुआ है। इस समय, जबकि समस्त पृथ्वी की खोज हो चुकी है और उस पर मनुष्य का अधिकार हो चुका है, नयी समस्या पृथ्वी के साधन-स्रोतों का व्यवस्थित ढंग से उपयोग करने की है। सावधानीपूर्वक इनका प्रबन्ध और उपयोग करने का अर्थ गतिरोध नहीं है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अनेक स्थानों में मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्धों की परिणति ऐसे सृजनात्मक सहजीवी सम्बन्ध में होती है, जिससे विकासात्मक परिवर्तन सम्भव होते हैं। मनुष्य प्रकृति से ऐसी नयी-नयी तुष्टियां पाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है, जो उसकी प्राथमिक जैविक आवश्यकताओं से परे होती हैं, और इस प्रकार, वह पृथ्वी की कुछ सम्भाव्यताओं और क्षमताओं को, जो उसके प्रयत्नों के बिना छिपी रह जायेंगी, उद्घाटित करता है।

मनुष्य अब पृथ्वी के अधिकांश धरातल का मानवीकरण करने और उसे मानवानुकूल बनाने में सफल हो गया है। लेकिन, यह एक विरोधाभास है कि अरण्य के प्रति उसका आकर्षण बढ़ता ही जा रहा है। पुरातन वनों से इतने दीर्घ समय तक भयभीत रहने के उपरान्त, मनुष्य ने यह अनुभव करना आरम्भ कर दिया है कि वनों का विलक्षण प्रकाश उसमें ऐसे विस्मय का भाव जाग्रत करता है, जिसका अनुभव किसी उद्यान या फलोद्यान में नहीं हो सकता। इसी प्रकार, वह अथाह सागर में तथा उसमें आने वाले ज्वार-भाटे में ऐसी रहस्यात्मकता के दर्शन करता है, जो मानव द्वारा विकसित कृत्रिम पर्यावरणों में नहीं मिलती। गहन गह्वरों की गरजती खामोशी, ऊंचे पर्वतों के एकान्त, मरुस्थलों में प्रकाश की चकाचौंध के प्रति उसकी प्रतिक्रिया उसके उस मौलिक अस्तित्व के एक पक्ष की ही अभिव्यक्ति है, जो आज भी ब्रह्माण्डीय परिवर्तनों में गूंज रही है।

जैसा कि पहले कहा गया है, प्रकृति उन शक्तियों के कुशल प्रयोग के लिए सदैव एक अच्छी मार्गदर्शिका नहीं होती, जिनका प्रभाव मानव के दैनिक जीवन पर पड़ता है। परन्तु, साधारण मानव-वुद्धि की तुलना में अछूती प्रकृति इस वात को अधिक अच्छी तरह समझती है कि मनुष्य को अखिल ब्रह्माण्ड के प्रति कैसे जागरूक वनाया जाये, और उसके तथा शेष प्रकृति के वीच किस प्रकार सामंजस्यपूर्ण वातावरण का निर्माण किया जाये।

इस प्रकार, पृथ्वी के मानवीकरण का अर्थ निर्जन स्थानों को कृषि-भूमि, मनोरंजन-केन्द्रों तथा सभ्यता के विकास के लिए उपयुक्त सुरुचिपूर्ण केन्द्रों में परिवर्तित करना ही नहीं है। इसका अभिप्राय यह भी है कि ऐसे निर्जन स्थानों को सुरक्षित रखा जाये, जहां मनुष्य अपने दैनिक जीवन से परे विद्यमान रहस्यों को अनुभव कर सके और उन ब्रह्माण्डीय शक्तियों से तादात्म्य स्थापित कर सके, जिनसे उसका विकास हुआ है। ■■

डा० ड्यूवोस का कहना है कि पृथ्वी के अधिकांश भाग का मानवीकरण करने के उपरान्त, अव मनुष्य वनांचलों और वीरानों के लिए—गहरी घाटियों की खामोशी, पर्वतों की ऊंचाइयों तथा (वायें चित्र में प्रदर्शित हवाई द्वीप के इस जंगल जैसे) आदिकालीन अछूते वनांचलों की शान्ति के लिए—अधीरतापूर्वक लालायित है।

लेखक के विषय में: डा० रेने जे० ड्यूवोस एक सूक्ष्मजीवविज्ञान-वेत्ता चिकित्सक, प्रयोगात्मक रोगविज्ञान-विशेषज्ञ, पर्यावरण-विशेषज्ञ एवं मानवप्रकृति-वेत्ता हैं। आजकल वह न्यूयार्क नगर स्थित रॉकफेलर विश्वविद्यालय में अवकाश-प्राप्त प्रोफेसर हैं। उनका जन्म फ्रांस में हुआ था। १९२४ में वह जीवाणुविज्ञान का उच्च अध्ययन करने के लिए अमेरिका गये थे तथा १९३८ में उन्हें अमेरिकी नागरिकता प्राप्त हो गयी। प्रोफेसर ड्यूवोस ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इनमें से एक पुस्तक, 'सो ह्यूमन एन ऐनिमल,' पर उन्हें १९६९ में पुलित्जर पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

भारत के लिए अमेरिकी सहायता

एक सामयिक समीक्षा

ऐसी स्थिति में, जब भारत-अमेरिकी सम्बन्ध एक नये युग में प्रवेश कर रहे हैं, लेखक से, जो लम्बे अरसे से इन सम्बन्धों के विशेषज्ञ रहे हैं, अनुरोध किया गया कि वह भारत को मिली अमेरिकी सहायता के इतिहास की पुनः समीक्षा करें। पिछले दो दशकों में, भारत सबसे अधिक अमेरिकी सहायता पाने वाला देश रहा है। कृष्ण गुजराल ने अपने लेख में इस बात का विवेचन किया है कि अमेरिका द्वारा भारत को दी गयी १० अरब डालर की सहायता-राशि किस प्रकार खर्च हुई है; किस प्रकार इसका ६० प्रतिशत अंश भारत के सार्वजनिक क्षेत्र को प्राप्त हुआ, जिससे स्कूली बच्चों, किसानों, कालेज के छात्रों और सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रयासों को सहायता मिली। अमेरिका द्वारा सुलभ की गयी यह सहायता पिछले २० वर्षों में भारत को सभी अन्य राष्ट्रों से संयुक्त रूप में प्राप्त कुल सहायता से भी अधिक रही है।

कृष्ण गुजराल

सन् १८६० में, भारत की विश्व-विख्यात नहर सिंचन-प्रणाली का पर्यवेक्षण करने के लिए हरवर्ट विल्सन नामक एक उच्चपदस्थ अमेरिकी इन्जिनियर ने इस देश की यात्रा की थी। वह पता लगाना चाहता था कि नहरों द्वारा सिंचाई की यह प्रणाली कहां तक कारगर है, और अमेरिका के शुष्क पश्चिमी क्षेत्र में सिंचाई की व्यवस्था के लिए इसे एक अनुकरणीय दृष्टान्त के रूप में ग्रहण करना समीचीन होगा अथवा नहीं।

जैसा कि सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, जिस समय विल्सन भारत पहुंचा, उस समय वह बहुत सावधान और संशयशील था। लेकिन, एक व्यापक, गहन और सूक्ष्मदर्शी जांच-पड़ताल के उपरान्त, भारत से प्रस्थान करते समय उसकी धारणाएं पूरी तरह बदल चुकी थीं। भारत की सिंचाई-प्रणाली की मुक्तकण्ठ सराहना करते हुए, उसने यह सुझाव दिया कि कुछ साधारण से संशोधनों के साथ अमेरिका उसे अपना सकता है। भारतीय अनुभव से लाभ उठाते हुए, अमेरिकी सरकार ने बंजर भूमि को कृषियोग्य बनाने के लिए १६०२ में एक संघीय भूमि-उद्धार कार्यक्रम की स्थापना की तथा पश्चिमी राज्यों में सिंचाई की नहरों का जाल बिछा दिया। इसके फलस्वरूप, एक विशाल बंजर इलाका, अन्ततः, एक अतीव उर्वर और उत्पादक क्षेत्र में परिणत हो गया।

विल्सन की इस यात्रा की जानकारी बहुत ही कम लोगों को है, क्योंकि हाल के वर्षों में स्थिति बिल्कुल पलट गयी है—विशिष्ट जानकारी का प्रवाह अब अमेरिका से भारत की ओर उन्मुख है। फिर भी, उस यात्रा को दोनों देशों के मध्य मैत्री, सहयोग और सहायता का प्रारम्भिक बिन्दु माना जा सकता है।

कहा जा सकता है कि भारत के लिए अमेरिका की वित्तीय सहायता का प्रारम्भ सन् १६५१ में हुआ। उस वर्ष भारत के समक्ष दुर्भिक्ष का गम्भीर संकट उपस्थित था। अमेरिका उस स्थिति में भारत को सहायता देने का प्रस्ताव करने वाला प्रथम देश था। उसने २० लाख टन गेहूं खरीदने के लिए १८ करोड़ ६७ लाख डालर का ऋण सुलभ करने का प्रस्ताव किया। कालान्तर से, यही ऋण उस विशाल आर्थिक सहायता कार्यक्रम का केन्द्र बिन्दु बन गया, जिसके अन्तर्गत, ३० जून, १६७२, तक भारत को कुल १० अरब डालर की अमेरिकी सहायता प्राप्त हुई। दो दशाब्द की इस अवधि में, भारत सबसे अधिक अमेरिकी विदेश सहायता पाने वाला देश बन गया।

अमेरिका भारत को सहायता देने का प्रस्ताव करने वाला एकमात्र देश नहीं था। संसार के १८ अन्य समृद्ध देशों की ओर से भी सहायता के प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये। लेकिन, अमेरिका का अंशदान इन सभी १८ देशों के सम्मिलित अंशदान से भी अधिक था। आंकड़ों के रूप में, १६५१-७० की अवधि में, भारत ने सभी राष्ट्रों से प्राप्त कुल मिलाकर १७ अरब ७६ करोड़ ३ लाख डालर की विदेशी सहायता का उपयोग किया। इसमें से, १० अरब ५ करोड़ १५ लाख डालर, अथवा ५६.५ प्रतिशत धन-राशि, अकेले अमेरिका द्वारा सुलभ की गयी। इसके विपरीत, अन्य १८ देशों ने कुल मिलाकर ५ अरब ५५ करोड़ ६ लाख डालर, अथवा ३१.२ प्रतिशत सहायता-राशि, सुलभ की।

शेष २ अरब १८ करोड़ ८२ लाख डालर, अथवा १२.३ प्रतिशत सहायता-राशि, विश्व बैंक तथा उससे सम्बद्ध संघटनों के माध्यम से प्राप्त हुई।

अमेरिका और विश्व बैंक के बाद, पश्चिमी जर्मनी का स्थान आता है, जिसने ७.६ प्रतिशत सहायता सुलभ की। इसके बाद, क्रम से इंग्लैण्ड (६.०० प्रतिशत), सोवियत संघ (५.६ प्रतिशत), कनाडा (४.४ प्रतिशत), जापान (२.७ प्रतिशत) और इटली (१.१ प्रतिशत) का स्थान है। फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया, आस्ट्रेलिया, हालैण्ड, यूगोस्लाविया, पोलैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, बेल्जियम, आस्ट्रिया, स्वीडन, डेनमार्क और नार्वे का स्थान इनके बाद है। इन सभी देशों ने १ प्रतिशत से भी कम सहायता सुलभ की है।

अमेरिकी सहायता मुख्यतः तीन रूपों में प्राप्त हुई: (१) प्राविधिक सहयोग; (२) कृषिजन्य वस्तुएं; और (३) बैंक ऋण। प्राविधिक सहयोग कार्यक्रम के अन्तर्गत, अनुदानों के अतिरिक्त, विभिन्न क्षेत्रों—मलेरिया और चेचक उन्मूलन, कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालयों की स्थापना, अनाजों की अधिक उपज देने वाली किस्मों और दुग्धशाला-जनित वस्तुओं के विकास, टेकनिशियनों और कारीगरों के प्रशिक्षण, इत्यादि—से सम्बद्ध अमेरिकी विशेषज्ञों की सेवाएं भी सुलभ की गयीं। ३,००० से अधिक अमेरिकी विशेषज्ञों ने भारतीयों को अपनी प्रवीणता से लाभान्वित करने के लिए भारत की यात्रा की। इसके साथ ही, उच्च प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए ६,००० भारतीय अमेरिका गये।

भारत को सुलभ की गयी कुल अमेरिकी सहायता का लगभग ५० प्रतिशत भाग पी एल-४८० (शान्ति के लिए आहार) कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त हुआ। इस कार्यक्रम के अधीन, अमेरिका ने भारत को दुर्भिक्ष के विरुद्ध संघर्ष जारी रखने में सहायता करने के उद्देश्य से, रियायती दर पर विशाल परिमाण में कृषिजन्य वस्तुएं सुलभ की हैं। भारत ने ये कृषिजन्य वस्तुएं अमेरिकी मुद्रा (डालर) के बजाय, भारतीय मुद्रा (रुपये) से खरीदी हैं।

एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट बैंक ने, जो अमेरिकी सरकार की विदेश व्यापार को प्रोत्साहन देने वाली एक एजेंसी है, भारत को कुल मिलाकर ५२ करोड़ २० लाख डालर के ३१ ऋण प्रदान किये। ये ऋण अमेरिकी मुद्रा (डालर) में दिये गये तथा इनकी वापसी का भुगतान भी भारत को डालर में ही करना था। इन पर लगने वाले ब्याज की दरें भी भिन्न थीं। १९५१ में, जब भारत ने २० लाख टन गेहूं खरीदने के लिए १८ करोड़ ९७ लाख डालर का ऋण लिया था, ब्याज की दर २.५ प्रतिशत थी, जबकि इस समय ब्याज की दर ६ प्रतिशत है। भारत की विदेशी मुद्रा सम्बन्धी कठिनाइयों को दृष्टि में रखते हुए, बैंक ने कई बार भारत को ऋण लौटाने के सिलसिले में किये जाने वाले भुगतान को स्थगित करने की छूट भी दी है।

कार्यक्रमों के विपरीत, मुद्रा के रूप में, १० अरब ५ करोड़ १५ लाख डालर की कुल अमेरिकी सहायता-राशि, मोटे तौर पर, चार श्रेणियों में विभक्त है: (१) अनुदान (जिसे वापस नहीं करना पड़ता), २ अरब ५ करोड़ ४७ लाख डालर (कुल सहायता का २०.५ प्रतिशत); (२) ऋण (जिसकी वापसी के लिए अदायगी डालरों में करनी होगी), ३ अरब ३८ करोड़ ५ लाख डालर (३३.६ प्रतिशत); (३) ऋण (जिसकी वापसी के लिए अदायगी भारतीय मुद्रा में करनी है; किन्तु यदि अमेरिकी सरकार चाहे, तो इसे डालरों में भी परिवर्तित किया जा सकता है), ४३ करोड़ २२ लाख डालर (४.३ प्रतिशत); और (४) स्थानीय मुद्रा में ऋण की वापसी सम्बन्धी अदायगी—(क) वह ऋण, जो भारत सरकार अपने इच्छानुसार, भारतीय मुद्रा या डालरों में अदा कर सकती है; (ख) कूली कोष से निजी उद्योगों को दिया गया ऋण; (ग) पी एल-४८०, शीर्षक-१, के समझौते के अन्तर्गत, अमेरिकी सरकार द्वारा प्रयोगार्थ स्वीकृत राशियां—४ अरब १८ करोड़ ४१ लाख डालर (४१.६ प्रतिशत)।

इस विशाल आर्थिक सहायता के अतिरिक्त, अमेरिका ने १९६२ में साम्यवादी चीन के साथ सीमा-संघर्ष होने पर भारत को अविलम्ब प्रतिरक्षा-सहायता भी सुलभ की। भारत के अनुरोध करने के कुछ ही दिनों के अन्दर, विशालकाय अमेरिकी सैनिक विमान अत्यावश्यक प्रतिरक्षा उपकरण लेकर कलकत्ता के दमदम हवाई अड्डे पर उतरा था।

अमेरिकी आर्थिक सहायता कार्यक्रम का प्राविधिक सहायता सम्बन्धी पक्ष, भारत सरकार के अनुरोध पर, इस वर्ष (१९७३ में) ३० जून को समाप्त हो गया। भारत में कुल ३,००० अमेरिकी विशेषज्ञ थे, जिनमें से अन्तिम विशेषज्ञ उसी दिन भारत से विदा हो गया। शेष बच रहे आर्थिक सहायता कार्यक्रम में, पी एल-४८० के शीर्षक-२ के अन्तर्गत आने वाला 'शान्ति के लिए आहार' अनुदान कार्यक्रम शामिल है। इसके अन्तर्गत, मानवीय एजेंसियों को खाद्य पदार्थ सुलभ किये जाते हैं। इसकी मुख्य योजना के अन्तर्गत, भारत के सभी भागों में १ करोड़ ५० लाख बच्चों को प्रतिदिन पोषण तत्वों से युक्त आहार दिया जाता है। अन्य कार्यक्रमों में, बांध योजनाओं जैसी छोटी सिंचाई योजनाओं से संलग्न श्रमिकों के लिए काम के बदले आहार सुलभ करने की परियोजनाएं शामिल हैं। इस कार्यक्रम पर प्रतिवर्ष लगभग ६ करोड़ डालर की धनराशि व्यय होती है।

फिर, ८ करोड़ ७६ लाख डालर का एक योजना-इतर ऋण भी है, जो १९७१ के भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान अमेरिकी सरकार द्वारा स्थगित कर दिया गया था, किन्तु इस वर्ष पुनः मुक्त कर दिया गया है, ताकि भारत इसकी सहायता से अमेरिका अथवा अन्य किसी भी देश में आवश्यक खरीदारी कर सके। भारत सरकार इस समय इस ऋण का उपयोग रासायनिक उर्वरकों—जिनकी इस देश में कमी है—तथा औद्योगिक संयन्त्रों के कुछ विशेष पुर्जों का आयात करने के लिए कर रही है।

इसके अतिरिक्त, अमेरिकी सरकार एक विशाल ऋण-कार्यक्रम का भी संचालन कर रही है। इसमें निजी क्षेत्र को प्रदान की गयी

कुछ ऋण-राशियां, लेकिन मुख्यतः बिजलीघरों और सिंचाई के बांधों के निर्माण के लिए भारत सरकार को दिये गये ऋण, शामिल हैं। इस प्रकार के ऋणों में, नवीनतम ऋण का चेक ४ सितम्बर, १९७३, को भारत स्थित वर्तमान अमेरिकी राजदूत, श्री डेनियल पी० मोयनिहन, द्वारा भारत सरकार को भेंट किया गया। १५.१ करोड़ रुपये के इस ऋण का उपयोग भारतीय ग्रामीण विद्युतीकरण आयोग के कार्यो का विस्तार करने के लिए किया जायेगा।

अमेरिका ने जुलाई १९६९ में हुए एक समझौते के अन्तर्गत, भारतीय ग्रामीण विद्युतीकरण आयोग के लिए १०५ करोड़ रुपए का एक अनुदान देना स्वीकार किया था। ४ सितम्बर, १९७३, को भेंट किया गया चेक उक्त अनुदान की चौथी और अन्तिम किस्त थी। उक्त चेक भेंट करते हुए, अमेरिकी राजदूत श्री मोयनिहन ने कहा था कि भारत के ग्रामीण विद्युतीकरण प्रयासों से सम्बद्ध होने पर अमेरिका को गर्व है। उन्होंने कहा कि ग्रामीण विद्युतीकरण आयोग एक ऐसी योजना है, जो सहायता के लिए सर्वथा उपयुक्त है। अमेरिकी राजदूत ने आगे कहा: "यदि अमेरिकी सहायता ने सचमुच भारत के किसी क्षेत्र-विशेष के हक में पक्षपात किया है, तो वह सार्वजनिक क्षेत्र ही है।...हमारी सहायता का ९० प्रतिशत अंश इसी क्षेत्र को प्राप्त हुआ है।...अमेरिका जहां भारत को सबसे अधिक सहायता सुलभ करने वाला देश रहा है, वहीं सार्वजनिक क्षेत्र को भी सबसे अधिक सहायता हमने ही सुलभ की है। भारत में, १९६० के दशाब्द में सार्वजनिक क्षेत्र में जितनी पूंजी का आविर्भाव हुआ, उसका २० प्रतिशत भाग अमेरिका से आया।"

अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय विकास सम्बन्धी एजेंसी ('यू एस ए आई डी') के भारत स्थित मिशन के मिनिस्टर डाइरेक्टर, होवर्ड ह्यूस्टन, ने अमेरिकी सहायता कार्यक्रम को दोनों देशों के मध्य 'एक अनूठे सम्बन्ध' की संज्ञा देते हुए, कहा है: "मैं समझता हूं कि इस सम्बन्ध के लिए जो कारण उत्तरदायी हैं, उनमें से कुछ ये हैं कि हम दोनों विश्व के दो विशाल लोकतन्त्र हैं और दीर्घकाल से एक-दूसरे के बारे में दिलचस्पी लेते रहे हैं। भारत की स्वतन्त्रता के पूर्व, हम एक दूसरे को बहुत अच्छी तरह नहीं जानते थे। लेकिन, मैं समझता हूं कि अब, इन वर्षो के दौरान, अमेरिका को अपने साथी लोकतन्त्र में घटित होने वाली घटनाओं में गहरी रुचि पैदा हो गयी है। दोनों देशों के लोगों में गहरी मित्रता है। मैं समझता हूं कि यह बहुत कुछ एक अनूठा अनुभव रहा है।"

उन्होंने कहा कि भारत में अमेरिकी सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त जिन तीन सफलताओं पर सबसे अधिक गर्व किया जा सकता है, वे हैं: (१) हरित् क्रान्ति; (२) मलेरिया-उन्मूलन; और (३) भागीदारी कार्यक्रम। श्री ह्यूस्टन कहते हैं: "यद्यपि अप्रीतिकर टिप्पणियां की जाती रही हैं, लेकिन जब आप खाद्यान्न-उत्पादन के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं, तो वह एक पूर्ण चमत्कार दृष्टिगोचर होता है। जब आप १९६५ या १९६६ के वर्ष की तुलना इस वर्ष से करते हैं, तो पता चलता है कि भारत में खाद्यान्न-उत्पादन दुगना हो गया है। इसके अतिरिक्त, अब भारतीय प्रौद्योगिकीविद् इस बात को अच्छी तरह समझ गये हैं कि खाद्य-समस्या को कैसे सुलझाया जा सकता है। इसके लिए केवल उचित प्रकार के बीजों, रासायनिक उर्वरकों तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं के वितरण की समुचित व्यवस्था करने की आवश्यकता है।"

उन्होंने कहा कि मलेरिया-उन्मूलन कार्यक्रम अभूतपूर्व रूप से सफल रहा, और बताया कि १९५० के दशाब्द के उत्तरार्द्ध में जब यह कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ, उससे पूर्व, यहां प्रतिवर्ष १० लाख व्यक्ति मलेरिया रोग से काल-कवलित होते थे। उनकी दृष्टि में, भागीदारी कार्यक्रम भी, जिसके अन्तर्गत ३,००० अमेरिकी विशेषज्ञ भारत आये तथा ६,००० भारतीयों ने अमेरिका में उच्च प्रशिक्षण प्राप्त किया, इतना ही सफल सिद्ध हुआ है।

श्री ह्यूस्टन का विश्वास है कि प्राविधिक सहायता के दो लक्ष्य होने चाहियें: अपने पैरों पर खड़ा होने में अन्य देशों के लोगों की सहायता करना, और इस प्रक्रिया में, एक देश से दूसरे देश को प्राविधिक जानकारी हस्तान्तरित करना। उनका कहना है, "भारत में, अमेरिका ने इन दोनों लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया है।"
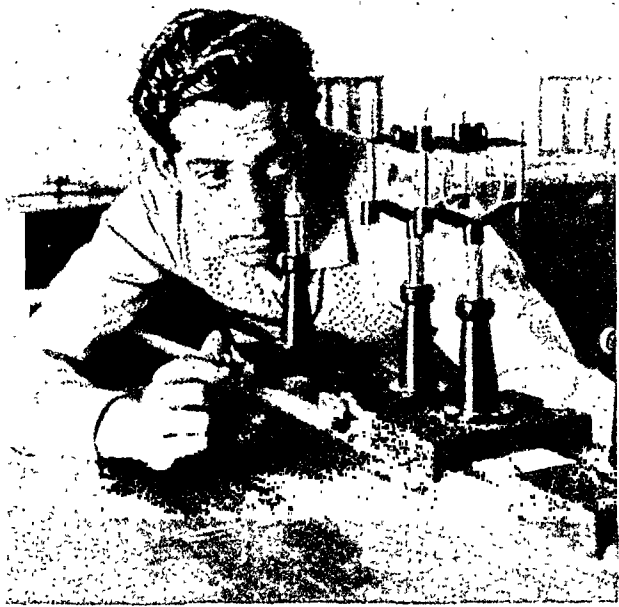
एक प्रख्यात भारतीय अर्थशास्त्री और अमेरिका में भारत के भूतपूर्व राजदूत, श्री जी. एल. मेहता, श्री ह्यूस्टन के इन विचारों से सहमत हैं। वह कहते हैं: "सहायता सम्बन्धी नीतियों में अमेरिका सदैव अग्रणी रहा है; खाद्य-सहायता सुलभ करने वाला यह पहला देश था; यह ऐसा पहला देश था, जिसने स्थानीय मुद्रा में अदायगी करने की शर्त पर सहायता सुलभ की तथा सहायता-ऋणों के लिए उदार शर्तें निर्धारित कीं। ये सब ऐसी सफलताएं हैं, जिन पर अमेरिका गर्व कर सकता है।"

विदेश सहायता का विचार, शान्तिकाल में एक देश द्वारा दूसरे देश की सहायता करने का सिद्धान्त, १९४७ में उस समय उत्पन्न हुआ, जब अमेरिका के तत्कालीन विदेशमन्त्री, जार्ज सी० मार्शल, ने युद्ध से क्षत-विक्षत यूरोप के बारे में विचार प्रकट करते हुए, कहा था: "यह उचित है कि अमेरिका संसार की अर्थ-व्यवस्था को पुनः सामान्य दशा में लाने के लिए भरसक योगदान करे, क्योंकि इसके बिना राजनीतिक स्थिरता और स्थायी शान्ति सम्भव नहीं।" इसके कुछ ही माह बाद, ९ दिसम्बर को सहायता-कार्यक्रम का जन्म हुआ। तब तत्कालीन राष्ट्रपति हैरी एस० ट्रूमैन ने अमेरिकी कांग्रेस से चार-वर्षीय यूरोपीय आर्थिक पुनरुत्थान कार्यक्रम के हेतु १७ अरब डालर की विशाल धनराशि स्वीकार करने का अनुरोध किया। यह सहायता-कार्यक्रम 'मार्शल योजना' के नाम से विख्यात है।

युद्ध से विध्वस्त पश्चिमी यूरोप की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के पुनरुद्धार के बाद, अमेरिका ने नवोदित स्वतन्त्र देशों की ओर ध्यान दिया। १९५० के दशाब्द के प्रारम्भ में, अमेरिका ने एक विशाल आर्थिक एवं प्राविधिक सहायता कार्यक्रम प्रारम्भ किया, ताकि श्रेष्ठतर शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और सशक्त स्वशासन-व्यवस्था के माध्यम से अपना जीवन-स्तर सुधारने में इन देशों की सहायता की जा सके। भारत इस सहायता-कार्यक्रम से सर्वप्रथम लाभान्वित होने वाले देशों में से एक था। अब तक, अमेरिका के विश्वव्यापी आर्थिक सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत, १२७ देशों को कुल मिलाकर १ खरब ३८ अरब डालर की सहायता मिल चुकी है।

विदेश सहायता राष्ट्रपति ट्रूमैन के शासनकाल से ही अमेरिका की विदेश नीति का अनिवार्य उपकरण रही है। प्रत्येक युद्धोत्तरकालीन अमेरिकी राष्ट्रपति ने इसे अपनी विदेश नीति के एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में अपनाया। राष्ट्रपति निक्सन के शब्दों में, "क्रान्ति के स्थायी ढांचे का निर्माण करने के लिए यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्माण-सामग्री है।" उनके विचार में, एक सशक्त विदेश सहायता-कार्यक्रम जारी रखने के लिए सबसे प्रतीतिकर कारण स्वर्गीय राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट द्वारा द्वितीय महायुद्ध के पूर्व उस समय प्रस्तुत किया गया था, जब ब्रिटेन को सहायता की आवश्यकता थी। श्री रूजवेल्ट ने कहा था: "मान लीजिये कि मेरे पड़ोसी के घर में आग लग गयी है और मेरे पास बगीचे को सींचने वाली ४ या ५ सौ फुट लम्बी एक नली मौजूद है। यदि उसे यह नली मिल जाये और उसको वह अपने नल से जोड़ सके, तो मैं उसके मकान में लगी आग बुझाने में उसकी मदद कर सकता हूं।"

राष्ट्रपति निक्सन का कथन है कि श्री रूजवेल्ट द्वारा प्रस्तुत इस उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सहायता देना पारस्परिक हित में है, क्योंकि यदि आग फैल जाती है, तो दोनों पड़ोसियों के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। रूजवेल्ट का यह तर्क विगत वर्षों में अमेरिका की विदेश सहायता नीतियों की प्रमुख विशेषता रही है। बाद में आने वाली अमेरिकी सरकारों की दृष्टि में, विदेश सहायता दान नहीं, बल्कि राष्ट्रीय हित और अन्तर्राष्ट्रीय परोपकार का विवेकसंगत मिश्रण थी। अमेरिकी सहायता आर्थिक समृद्धि की ओर अग्रसर होने के प्रयास में विकासोन्मुख देशों की सहायता अवश्य करती है, लेकिन इसके साथ ही, वह आर्थिक स्वास्थ्य, राजनीतिक स्थिरता और विश्व-शान्ति के रूप में अमेरिका के हितों का सम्वर्धन भी करती है।

१९६० के दशाब्द के उत्तरार्द्ध में, अमेरिकी विदेश सहायता के क्षेत्र में कुछ नयी प्रवृत्तियां उभरीं। उस समय तक, संग्राहक देश को विकास सहायता सीधे द्विपक्षीय आधार पर सुलभ की जाती थी। इस कारण अमेरिका को बहुधा विकासोन्मुख देशों के क्रियाकलापों और नीतियों में उलझना पड़ता था, और सरकारों को परामर्श देने एवं कार्यक्रमों की जांच करने के लिए विस्तृत विदेशी मिशनों की स्थापना करनी पड़ती थी। अब अमेरिका इस प्रकार की स्थितियों से बचना चाहता था।

जबकि अमेरिका अपनी विदेश सहायता नीतियों पर पुनर्विचार कर रहा था, कुछ ऐसी घटनाएं घटीं, जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सहायता के वातावरण को बिल्कुल बदल दिया। प्रथम, प्रमुख उद्योग-प्रधान देश कम आय वाले देशों को प्रचुर आर्थिक सहायता सुलभ करने लगे। द्वितीय, संयुक्तराष्ट्र-संघ और उसकी एजेंसियां रियायती शर्तों पर अधिक धनराशि ऋण के रूप में सुलभ करने लगीं। तृतीय, कम आय वाले देशों ने स्वयं शानदार प्रगति की और अपने विकास के सम्बन्ध में अधिक उत्तरदायित्व वहन करने के बारे में अधिकाधिक तत्परता प्रकट की।

नयी स्थिति का सामना करने के लिए, अमेरिका ने अपनी विदेश सहायता नीतियों में इस प्रकार परिवर्तन किया, ताकि द्विपक्षीय सहायता के बजाय, बहुपक्षीय सहायता पर अधिक भरोसा किया जा सके। अमेरिका ने अधिकतम सम्भव आर्थिक सहायता अन्तर्राष्ट्रीय ऋणदाता संघटनों के माध्यम से सुलभ करने का निर्णय किया। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के सहायक वित्तमन्त्री, श्री जान एम० हैनेसी, का कहना है कि अमेरिका इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघटनों को इसलिए पसन्द करता है, कि वे "अधिक कुशल, प्रभावशाली और उत्तरदायी हैं।" फिर भी, इसका अभिप्राय यह नहीं कि अमेरिका ने द्विपक्षीय सहायता बिल्कुल बन्द कर दी है। अमेरिकी सरकार का विश्वास है कि द्विपक्षीय और बहुपक्षीय सहायता एक दूसरे की पूरक हैं।

अमेरिका की वर्तमान विदेश सहायता नीति को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है: अमेरिका, द्विपक्षीय सहायता को सीमित आधार पर जारी रखते हुए, मुख्यतः बहुपक्षीय माध्यमों से आर्थिक सहायता सुलभ करने का प्रयास कर रहा है। इसके पीछे विचार यह है कि संयुक्तराष्ट्र-संघ और उसकी एजेंसियों को इस प्रकार सहायता दी जाय, ताकि वे विकासोन्मुख देशों द्वारा की जाने वाली पहलों और विकसित देशों की प्रतिक्रिया में सामंजस्य बिठाने की अधिकाधिक जिम्मेदारी संभाल सकें। उद्देश्य एक ऐसे वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदाता समाज की स्थापना करना है, जिसके पास कम आय वाले देशों द्वारा की जाने वाली पहल को समुचित प्रोत्साहन देने के बारे में अपने सर्वमान्य नियम और अपनी कार्य-प्रणाली हो।

भारत के लिए अमेरिकी सहायता की कहानी का उपसंहार करते हुए, मैं पुनः श्री जी० एल० मेहता को उद्धृत करना चाहूंगा, जिन्होंने ऐसे समय वाशिंगटन में भारतीय राजनयिक मिशन का नेतृत्व किया, जब अमेरिकी विदेश सहायता कार्यक्रम एक निश्चित रूप ले रहा था। श्री मेहता कहते हैं: "विदेश सहायता से राष्ट्रीय विकास को गति मिलनी चाहिये, उसे शिथिल नहीं होना चाहिए। इसे दूसरों पर निरन्तर या अधिकाधिक आश्रित बनाये रखने के बजाय, यथाशीघ्र आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने में सहायक होना चाहिए।"

भारत ने जिस ढंग पर विदेशी सहायता का उपयोग किया है और कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में जो उल्लेखनीय परिणाम प्राप्त किये हैं, उन्हें दृष्टि में रखते हुए, यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अमेरिका का प्रयास बहुत बड़ी सीमा तक सफल हुआ है। ■■

लेखक के विषय में: श्री कृष्ण गुजराल 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के भूतपूर्व सम्वाददाता और स्तम्भ-लेखक रहे हैं। उन्होंने 'स्टेट्समैन,' 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'अमृत बाजार पत्रिका' के लिए भी लिखा है। इस समय वह अमेरिकी सूचना विभाग में निबन्ध-सम्पादक हैं।

विश्व-मंच पर अमेरिका की भूमिका

राजदूत यूराल अलेक्सी जॉनसन ने अमेरिकी सूचना एजेंसी से सम्बद्ध लेखक, बारेट मैक्गुर्न, के साथ एक भेंट-वार्ता में अमेरिकी विदेश नीति के कुछ नूतन पहलुओं पर चर्चा की। भेंट-वार्ता का विवरण यहां प्रस्तुत है।

यूराल अलेक्सी जॉनसन १९७३ में पर्यटक राजदूत और सोवियत संघ के साथ सांघातक शस्त्रास्त्र परिसीमन वार्ता ('साल्ट') में मुख्य वार्ताकार नियुक्त किये जाने से पूर्व, अमेरिकी विदेश विभाग में राजनीतिक मामलों के अवर मन्त्री थे। वह चेकोस्लोवाकिया, जापान और थाईलैण्ड में अमेरिकी राजदूत तथा कई अन्य महत्वपूर्ण पदों पर रह चुके हैं। वह विदेश विभाग की सक्रिय सेवा में संलग्न एकमात्र ऐसे अधिकारी हैं, जो कैरियर राजदूत के पद पर हैं, और यह अमेरिकी विदेश सेवा में सर्वोच्च पद है।

प्रश्न : राजदूत महोदय, राजनय के क्षेत्र में अपने चार दशाब्द के लम्बे अनुभव के आधार पर, क्या आप बतायेंगे कि इस बीच राजनयिक की भूमिका और उसके स्वरूप में आपकी दृष्टि से कौन से मौलिक परिवर्तन हुए हैं?

जॉनसन : द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले की अवधि में, अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र को प्रभावित या निर्देशित करने के प्रयास में संलिप्त नहीं रहा। हम पृथकत्व की नीति का पालन कर रहे थे। इस देश में सबसे अलग-थलग रहने की भावना व्याप्त थी। सामान्यतः, हम दुनिया से दूर रह रहे थे, और हमारा प्रयत्न यह होता था कि हम विश्व के संकटों से दूर रहें। निस्सन्देह, राजनयिकों के रूप में, हम लोग इसी नीति का परिचालन कर रहे थे। इस प्रकार, हम विश्व के घटनाचक्र के प्रेक्षक मात्र बने रहे। हमने घटनाक्रम को नयी दिशा, नया रूप, प्रदान करने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

युद्धोत्तर काल में दो बातें हुईं। पहली यह कि चाहे-अनचाहे हम घटनाक्रम में अन्तर्ग्रस्त हो गये, और अब हम शेष विश्व की घटनाओं के प्रति उदासीन नहीं रह सकते। इसका कारण यह है कि शेष विश्व में जो भी घटनाएं होती हैं, उनका हमारे देश पर, हमारे देश के लोगों पर, अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति से यह तथ्य उजागर हुआ कि अमेरिका में हम जो कुछ भी करते हैं, उसका अन्य देशों पर प्रभाव पड़ता है; और इसी प्रकार, दूसरे देश जो कुछ करते हैं, उससे अमेरिका की घटनाएं प्रभावित होती हैं। अतः, घरेलू और विदेश नीति की पुरानी विभाजक रेखा अब मिट चुकी है।

प्रश्न : राजदूत महोदय, हाल में आपने कई व्याख्यान दिये हैं। उनसे मुझे इस तथ्य का पता चला कि इस समय विदेश विभाग वर्ष में ६०० सम्मेलनों में भाग लेता है। यह, निश्चय ही, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अत्यधिक अन्तर्ग्रस्त होने का सूचक है। प्रतिक्षण होने वाली घटनाओं में इतने गहन उलझाव के बाद, क्या सोच-विचार के लिए भी कोई समय मिलता है? अथवा, एक-दूसरे पहलू से विचार करते हुए, क्या हम कह सकते हैं कि यह इस तथ्य को प्रतिबिम्बित करता है कि एक सक्रिय और जीवन्त राजनय खण्ड-खण्ड होकर कई विश्व-समस्याओं में उलझा हुआ है?

जॉनसन : मैं समझता हूं, और जैसा कि आपने भी प्रश्न किया, हमें इस पर दूसरी स्थिति

में ही खड़े होकर विचार करना चाहिये। यह विश्व में विद्यमान अन्तर्निर्भरता को उजागर करता है। इन सम्मेलनों में, टूना मछली और रेडियो फ्रीक्वेंसी से लेकर, उत्तर अटलांटिक संधि-संघटन में शामिल राष्ट्रों के मन्त्रियों की बैठकें तक शामिल हैं, और निश्चय ही, यह सब जटिल कार्य है। लेकिन, मैं इन्हें समस्याएं न मान कर, इस बात का उदाहरण मानता हूं कि वर्तमान विश्व में हमारी अभिरुचि कितनी गहन और व्यापक है।

प्रश्न : सामान्य जनता प्राय: कुछ इस रूप में सोचती है कि एक बार जब अन्तर्राष्ट्रीय वार्त्ता आरम्भ हो गयी, तब इसका अर्थ यह है कि सब समस्याएं हल हो जायेंगी और वार्त्ता-कक्ष से बाहर कोई किसी का विरोधी न होगा। मेरी धारणा है कि इस भ्रान्ति के कारण ही वार्ता के बाद प्राय: गहन निराशा फैलती है। सांघातक युद्धोपकरणों को परिसीमित करने के लिए चल रही वार्ता ('साल्ट') अब दूसरे दौर में हैं। क्या आप समझते हैं कि ऐसा सोचना ही विश्व जनमत के हित में होगा कि यदि कभी कोई सफलता मिली, तो वह अधिक-से-अधिक सीमित लक्ष्यों की उपलब्धि ही हो सकती है, भले ही ये सीमित लक्ष्य विश्व भर के देशों के लिए मूलभूत महत्व के क्यों न हों?

जॉनसन : हां, मेरी राय में आपने एक आधारभूत प्रश्न उठाया है। यदि दो देश समान हित की बात को समझ सके और आपसी सम्बन्धों के एक पहलू पर उनके बीच समझौता हो गया, तो इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी सब समस्याएं स्वत: हल हो गयीं। उदाहरण के लिए, हम अपने घनिष्ठ मित्र कनाडा और ब्रिटेन को लें। कई मुद्दों पर उनके साथ हमारे गहरे मतभेद हैं। सोवियत संघ के साथ हमने समान हित वाले विषयों को खोज निकाला है : परमाणु-आयुधों का हस्तान्तरण रोकने और सांघातक युद्धोपकरणों को परिसीमित करने के बारे में समझौते किये गये हैं। यद्यपि इनकी परिधि नितान्त सीमित है, तथापि, जैसा आपने कहा, ये बड़े महत्वपूर्ण विषय हैं। फिर भी, इन वार्ताओं में सफलता का यह अर्थ नहीं कि सोवियत संघ और हमारे बीच जितनी समस्याएं हैं, वे सब चुटकी बजाते ही छू-मन्तर हो जायेंगी।

मैं जानता हूं कि सोवियत संघ और वार्ता में भाग लेने वाले सोवियत प्रतिनिधि अपने हितों की रक्षा अभावुकता के साथ करेंगे, और मुझे विश्वास है कि जहां अमेरिकी हितों का सवाल होगा, वहां हमारा रवैया भी अतीव अभावुकता का होगा। ऐसी स्थिति में, हम दोनों का दायित्व यह है कि हम कोई ऐसा मार्ग निकालें, जिस पर हमारी समान सहमति हो और जिस पर समझौता हो सके। मैं आशा करता हूं कि ऐसा रास्ता है, परन्तु मैं यह नहीं मानता कि हमें यह आशा करनी चाहिये कि सोवियत संघ के साथ हमारी सब समस्याएं हल हो जायेंगी।

प्रश्न : महोदय, आपने अभी 'अभावुकता' शब्द का प्रयोग किया है। पूर्व और पश्चिम के बीच होने वाली वर्तमान वार्ता को दृष्टिगत रखते हुए, कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि मेल-मिलाप बढ़ाने के लिए सैनिक शक्ति घटायी जानी चाहिये और सैनिक गठबन्धनों को शिथिल किया जाना चाहिये। यह विचार क्या आप के उपर्युक्त अभावुकता सम्बन्धी दृष्टिकोण से मेल खाता है?

जॉनसन : नहीं, बिल्कुल नहीं। मैं समझता हूं कि सोवियत संघ के साथ हमारे और पश्चिमी यूरोप के सम्बन्धों में जो प्रगति हुई, वह हमारे मैत्री संघटनों के 'कारण' ही हुई है। यह प्रगति उत्तर अटलाण्टिक सन्धि संघटन ('नाटो') के अस्तित्व में होने के कारण हुई, और इसलिए हुई, क्योंकि हम यह प्रदर्शित करने में सफल हुए कि सोवियत संघ प्रत्यक्ष आक्रमण द्वारा किसी लाभ की आशा नहीं कर सकता।

मैं समझता हूं कि यही बात चीन के मामले में भी सही है। मैं समझता हूं कि पेकिंग के साथ सम्बन्ध सुधारने में हमें जो सफलता मिली है, वह पूर्वी एशिया के साथ हमारे सुरक्षात्मक समझौतों के 'बावजूद' नहीं मिली है। सच तो यह है कि यह सफलता अधिकांशत: हमारे इन समझौतों के 'कारण ही' मिली है। मेरे विचार से, अपनी नीति के जिन तत्वों के कारण हमें इतने अंशों में सफलता मिली, उनको समाप्त करने में जल्दबाजी नहीं की जानी चाहिये। माना कि सफलता सीमित अंशों में ही मिली, परन्तु इन तत्वों को यदि मिटा दिया गया, तो आगे किसी उपलब्धि की आशा नहीं की जा सकती। मैं ऐसा नहीं मानता कि रूस अपने सब पत्ते फेंक देगा, और न ही मैं ऐसा समझता हूं कि सोवियत संघ को उम्मीद है कि हम अपने सब पत्ते फेंक देंगे।

प्रश्न : तो, क्या मैं यह निष्कर्ष निकालूं कि आप ऐसा मानते हैं कि सैनिक संघटनों के अस्तित्व में होने के कारण प्रतिपक्षी को धमकी देने या बल प्रयोग करने का लोभ संवरण करने के लिए बाध्य होना पड़ता है, और इन विकल्पों का उन्मूलन हो जाने पर, उसे समझौता-वार्ता करने को बढ़ावा मिलता है?

जॉनसन : बिल्कुल ठीक। आपने बात को बहुत सही ढंग से प्रस्तुत किया है।

प्रश्न : पारस्परिक हितों के क्षेत्र का निर्धारण, आपके ही शब्दों में, 'अभावुकता' के साथ करने में, मैं ऐसा समझता हूं कि आप अपने मन में कई इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं, यथा : जो विषय, दूसरे पक्ष की ओर से देखने पर, समान हित के प्रतीत हों, वे क्या हैं? दूसरों के इरादे क्या हैं? कुछ लोग रूसियों के साथ इस समय होने जा रही कई वार्ताओं के विषय में विचार करते समय, कई दूसरे प्रश्न पूछ रहे हैं। जैसे : इस समय रूसियों के दिमाग में क्या है? क्या सोवियत संघ परमाणु-आयुध के क्षेत्र में अमेरिका के समान स्तर पर होने के विषय में किसी प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है? अथवा क्या वह पूर्वी यूरोप पर अपने आधिपत्य को मान्यता दिलाना चाहता है? क्या सोवियत संघ की कोशिश यह है कि यूरोप से अमेरिकी सेनाएं हट जायं और वहां उसका प्रभाव बढ़ जाय? मस्तिष्क में जो अन्य कई प्रश्न उठते हैं, वे हैं : साम्यवादी शक्तियों के साथ ऐसी स्थिति में हमारे व्यापक शान्ति सम्बन्ध कैसे स्थापित हो सकते हैं, जबकि वे अन्य देशों के भीतर तथाकथित 'राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष' का समर्थन करने विषयक अपने अधिकार से हठधर्मी के साथ चिपके हुए हैं? फिर, ब्रेजनेव-सिद्धान्त का भी प्रश्न है। जिस तरह आप वास्तविक सहमति के क्षेत्रों को सीमित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उसी प्रकार क्या आप मतभेदों के क्षेत्र की भी गहराई में जाना चाहते हैं?

जॉनसन : जहां तक सोवियत संघ का सम्बन्ध है, मैं यह कहना चाहूंगा कि हमारी तरह ही उनके इरादे भी विविध और जटिल हैं। मैं समझता हूं कि आपने कुछ बातों की स्वयं चर्चा की है, जिनका सोवियत संघ के जटिल इरादों से सम्बन्ध है। सांघातक अस्त्र परिसीमन वार्ता ('साल्ट'), जिससे मैं सम्बद्ध हूं, दोनों देशों के बीच केवल सांघातक अस्त्रों के बारे में ही, और बड़ी सावधानी के साथ, चल रही है। कई अन्य प्रश्नों पर विचार करने के लिए कुछ अन्य मंच भी हैं, जैसे यूरोपीय सहयोग एवं सुरक्षा सम्मेलन, परस्पर एवं सन्तुलित सैन्य विघटन सम्मेलन तथा द्विपक्षीय वार्ताएं।

आपने एक ऐसी समस्या का भी उल्लेख

किया है, जो हमारे और सोवियत संघ के बीच सदा से विद्यमान विचारधारा सम्बन्धी समस्याओं में से एक है। वह समस्या है—'राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों' का समर्थन करने और असाम्यवादी देशों की साम्यवादी पार्टियों के साथ सम्पर्क बनाये रखने विषयक अपने अधिकार पर सोवियत संघ का आग्रह, जबकि ये पार्टियाँ उन सरकारों को उखाड़ फेंकने के लिए कृत-संकल्प हैं, जिनके साथ सोवियत संघ के राजनयिक सम्बन्ध हैं। हमारे और सोवियत संघ के बीच यह एक आधारभूत समस्या है, जिसको अब तक नहीं सुलझाया जा सका है। मैं समझता हूं कि यूरोपीय सुरक्षा एवं सहयोग सम्मेलन में इस समस्या को हल करने की दिशा में कुछ प्रगति की जा सकेगी।

प्रश्न : साम्यवादी जगत के साथ जब ये महत्वपूर्ण वार्ताएं चल रही हैं, तब कई अन्य प्रश्न भी मस्तिष्क में उठते हैं। एक प्रश्न है : क्या वास्तव में कभी 'एकाश्मक साम्यवाद' का अस्तित्व रहा? यदि हां, तो क्या वह कभी वापस आ सकता है? दूसरा प्रश्न है : क्या डोमिनो-सिद्धान्त का कभी कोई औचित्य रहा? क्या अब वह सर्वथा अनुपयुक्त है? क्या इन प्रश्नों पर आप किसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं?

जॉनसन : ये काफी रोचक प्रश्न हैं। मैं पहले आपके प्रथम प्रश्न का उत्तर देता हूं। मेरे विचार से, किसी समय 'एकाश्मक' या एकध्रुवीय साम्यवाद का अस्तित्व था, जिसका केन्द्र मास्को था। मैं द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व के दिनों, और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भी पेकिंग के उद्‌भव से पूर्व के युग, की बात करता हूं। साम्यवादी शक्ति के एक अन्य केन्द्र के रूप में, पेकिंग के उदित होने से पूर्व तक, अन्य देशों की साम्यवादी पार्टियाँ और साम्यवादी सिद्धान्त मुख्यत: सोवियत संघ द्वारा नियन्त्रित और परिचालित थे, और वे सब सोवियत हितों की ही पूर्ति करते थे।

अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन का उपयोग करके, सोवियत संघ अपने हितों को साधने में समर्थ था। लेकिन, अब साम्यवादी शक्ति के एक अन्य केन्द्र के रूप में पेकिंग की स्थापना हो जाने पर, तथा यूगोस्लाविया और पूर्वी गुट में अन्य देशों के मंच पर आ जाने के बाद, साम्यवाद का स्वरूप 'एकाश्मक' या एकध्रुवीय नहीं रहा। अब वह एकमात्र मास्को का अस्त्र नहीं रहा। इसका अर्थ यह है कि अब साम्यवाद पहले की अपेक्षा एक भिन्न समस्या है। उससे उत्पन्न खतरे का स्वरूप अब भिन्न है और उसके हल भी भिन्न प्रकार से खोजने होंगे। आप कह सकते हैं कि इससे विदेश नीति और राजनय की उलझनें बढ़ गयी हैं। इस बहुध्रुवीय विश्व की समस्याओं के लिए पुराने समाधान पर्याप्त नहीं। अब, जहां तक डोमिनो-सिद्धान्त का सम्बन्ध है, मैं समझता हूं कि विभिन्न व्यक्तियों के लिए इसके अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। मैं तो डोमिनो-सिद्धान्त का सीधा और सरल अर्थ यह निकालता हूं कि एक देश में जो कुछ होता है, उसका प्रभाव उसके पड़ोसियों पर भी पड़ता है। मैं समझता हूं कि इसे अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। इसका प्रभाव क्या होगा और इस प्रभाव की व्यापकता तथा गम्भीरता क्या होगी, यह दो देशों के बीच सक्रिय कारणों के अन्तस्सम्बन्धों पर आश्रित है।

प्रश्न : राजदूत महोदय, हम ऐसे बहुध्रुवीय विश्व में रह रहे हैं, जो अत्यधिक उलझनपूर्ण तथा चुनौतियों और कठिनाइयों से भरा है। मुझे याद आता है कि आपने एक बार नये विश्व के सम्बन्धों की 'रेखागणित' का उल्लेख किया था, और इस सिलसिले में त्रिकोणीय, चतुष्कोणीय तथा पंचकोणीय सम्बन्धों की चर्चा की थी। क्या ये रेखागणितीय अन्तस्सम्बन्ध सदैव विद्यमान नहीं रहे? अथवा जेट विमानों और संचारी उपग्रहों वाले आधुनिक विश्व में क्या ये रेखागणितीय सम्बन्ध राजनय के लिए एक कठिन समस्या बन गये हैं?

जॉनसन : वस्तुत:, यह केवल परिवहन और संचार की कार्यप्रणाली नहीं, बल्कि शक्ति-केन्द्रों की भी कार्यप्रणाली है। एशिया में जापान आर्थिक दृष्टि से एक महान् शक्ति-केन्द्र के रूप में उभर रहा है। उधर पेकिंग है। पश्चिमी यूरोप और यूरोपीय समुदाय हैं। हम अब तक 'वाशिंगटन-मास्को धुरी' के आधार पर सोचते थे। लेकिन, यह मुहावरा अब लागू नहीं। अब तो एक वाशिंगटन-मास्को-यूरोपीय समुदाय का, एक वाशिंगटन-मास्को-पेकिंग का और एक पेकिंग-मास्को-टोकियो का त्रिभुज है। मैं 'त्रिभुज' इसलिए कहता हूं, क्योंकि इन सब त्रिभुजों की तीनों भुजाओं के भीतर भी कई घात-प्रतिघात हो रहे हैं और शक्तियां उभर रही हैं, और ये त्रिभुज एक-दूसरे से अतिव्याप्त अथवा अंशत: आच्छादित हो रहे हैं। अत:, जैसा कि आप देख सकते हैं, समस्याएं पहले से अधिक उलझनपूर्ण हो गयी हैं, और राजनयिकों के लिए तो कई दृष्टियों से नितान्त रोचक बन गयी हैं।

प्रश्न : क्या आप समझते हैं कि अमेरिकी विदेश सहायता एक सतत बनी रहने वाली आवश्यकता का रूप लेने जा रही है?

जॉनसन : आप जब 'सहायता' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किसी ने मुझे चौंका देने वाली बात कही हो। इस शब्द के कारण विकासोन्मुख देशों के साथ हमारे सम्बन्धों को लेकर काफी भ्रान्तियां पैदा हुई हैं। 'सहायता' शब्द के साथ दान की भावना जुड़ी है। इसके साथ श्रेष्ठ और निकृष्ट का भाव जुड़ा है : इसमें अमीर द्वारा गरीब की मदद करने का असमानताबोधक भाव भी निहित है। मेरी दृष्टि में, इन सब भावनाओं के लिए हमारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में कोई स्थान नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि हम समान उद्देश्यों और समान हितों की दृष्टि से अन्य देशों के साथ सहयोग की भाषा में सोचना आरम्भ करें, *या* फिर, यदि आप चाहें तो पूंजी-नियोजन की भाषा में सोचना शुरू करें।

मैं समझता हूं कि यदि आप 'सहायता' शब्द का प्रयोग मार्शल-योजना के संदर्भ में करें, तो वह सही होगा। लेकिन, मैं यह भी मानता हूं, और इससे प्राय: सभी लोग सहमत होंगे, कि जहां तक अमेरिका का सम्बन्ध है, उसके द्वारा पूंजी का यह एक उदात्त उपयोग था। युद्धोत्तर काल में, जापान के साथ हमारे सम्बन्धों के सन्दर्भ में भी आप 'सहायता' शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। यह गरीबों को खैरात बांटने जैसी बात न थी। वह तो, वस्तुत:, पूंजी का ऐसा विनियोजन था, जिसका हमें पुष्कल लाभ मिला। प्रत्येक मामले में, उससे सम्बद्ध नयी समस्याएं सामने आयीं हैं, परन्तु ये सब सफलता की समस्याएं हैं।

जहां तक विकासोन्मुख विश्व का सम्बन्ध है, मेरे विचार में, हमें स्वीकार करना होगा कि जब तक विकासोन्मुख देश ऐसा महसूस नहीं करते कि हम जिस प्रणाली का समर्थन करते हैं, उसमें उनके हितों की बाजी लगी है, तब तक हमें उनका समर्थन प्राप्त नहीं हो सकता। मैं समझता हूं कि हमें अब इस आधार पर सोचना होगा कि हम विकासोन्मुख विश्व में पूंजी का विनियोजन कर रहे हैं। हम यह पूंजी-विनियोजन दानस्वरूप नहीं, बल्कि अमेरिका के हित में कर रहे हैं। जहां तक संग्राहक देश का सम्बन्ध है, यह और भी महत्वपूर्ण है कि सम्बन्धों का स्वरूप ऐसा हो, जिससे स्वाभिमान की रक्षा हो और किसी को भिक्षुक की स्थिति में न गिरना पड़े।

प्रश्न : आगामी एक-दो दशाब्दों के दौरान, राजनयिक लोग, स्पष्टत:, अर्थशास्त्र सम्बन्धी मामलों में संलिप्त होने जा रहे हैं। क्या यह बात सोवियत संघ के साथ सम्बन्धों पर भी लागू होगी? सोवियत संघ को ऋण, नयी प्रौद्योगिकी और प्रबन्ध-व्यवस्था सम्बन्धी विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। क्या उसके साथ होने वाली समझौता-वार्ताओं में ये विषय भी शामिल होंगे?

जॉनसन : अवश्य। हमारे और साम्यवादी संसार के बीच आर्थिक सम्बन्धों का बहुत तेजी से विकास हो रहा है। यह विकास एकपक्षीय नहीं। हमारी दिलचस्पी उनसे ईंधन और कच्चा माल प्राप्त करने में है। यह इसलिए भी उचित है, क्योंकि किसी आर्थिक व्यवस्था को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है कि द्विपक्षीय आदान-प्रदान होता रहे। समस्या यह है कि इस द्विपक्षीय सम्बन्ध-व्यवस्था को किस प्रकार विकसित किया जाय, जिससे वह दोनों देशों और दोनों क्षेत्रों के लिए सन्तोषप्रद हो, और साथ ही, हमारे हित में भी हो।

प्रश्न : मैं सुदूर पूर्व के बारे में एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। इस क्षेत्र के बारे में भी आपका अनुभव विशद है। आपके राजनयिक जीवन का अधिकांश भाग उसी क्षेत्र में बीता है। क्या आप समझते हैं कि हमने एक राष्ट्र के रूप में सुदूर पूर्व—उसकी संस्कृति, सभ्यता, राजनीति, राजनय, आर्थिक स्थिति—की भूमिका की उपेक्षा की है?

जॉनसन : हां। मैंने उस क्षेत्र में जितना समय बिताया है, उसके आधार पर मैं, निश्चय ही, ऐसा महसूस करता हूं। परन्तु, इसके अलावा भी, स्थिति की वास्तविकता पर विचार करने से एक उदाहरण जापान का सामने आता है, जो आज हमारे बाद स्वतन्त्र संसार की दूसरी बड़ी आर्थिक शक्ति है, और आर्थिक क्षमता की दृष्टि से सोवियत संघ की बराबरी करने के लिए बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है। चीन में लगभग ९० करोड़ लोग हैं, जिनका इतिहास अप्रतिम है। जहां तक सभ्यता की निरन्तरता का सम्बन्ध है, दुनिया का कोई देश उनका मुकाबला नहीं कर सकता। १९वीं शताब्दी में, औद्योगिक क्रान्ति के दौरान वे पिछड़ गये, परन्तु उनमें हीनता का कोई भाव नहीं है। स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। फिर, इण्डोनेशिया के १० करोड़ लोग हैं। और आगे बढ़ें, तो भारत के ५५ करोड़ लोग सामने आते हैं। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। मेरे कथन का अभिप्राय यह है कि संख्या, शक्ति, क्षमता और प्रभाव की दृष्टि से एशिया एक प्रभावशाली कारक बनने जा रहा है, और उसके तथा हमारे मध्य गहरे सांस्कृतिक मतभेद हैं। हमें एक दूसरे को समझने में कठिनाई होती है। यदि हम प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में शान्ति बनाये रखना चाहते हैं, यदि हमें अपने और एशिया के मध्य शान्ति बनाये रखना अभीष्ट है, तो एशिया के और हमारे लिए यह समान रूप से आवश्यक है कि हम आपसी समझबूझ और सद्भाव को निश्चित रूप से पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ावा दें।

प्रश्न : मैं समझता हूं कि कुछ लोग ऐसा महसूस करते हैं कि अमेरिका पृथकतावादी कारणों से वियतनाम से हटा, और अन्ततोगत्वा, वह एशिया के दूसरे स्थानों तथा यूरोप से भी हट जायेगा। क्या वियतनाम के सम्बन्ध में यह अनुमान सही है? और, क्या यूरोप तथा एशिया में किसी प्रकार की समानता बरती जा सकती है?

जॉनसन : अपने एशियाई मित्रों को मैं बताना चाहूंगा कि यह तथ्य काफी रोचक है कि उस समय भी, जब अमेरिका ने अपने-आपको यूरोप तथा शेष विश्व से अलग-थलग कर लिया था, उसने स्वयं को एशिया में उलझाये रखा। हमने विश्व में वाणिज्य दूत का अपना दूसरा कार्यालय कैण्टन में खोला, और १८५० में एक एशियाई समुद्री बेड़े की स्थापना की। इसी बेड़े के सहारे कमोडोर पेरी ने हमारे लिए जापान का द्वार खोला। हमने १८९८ में फिलीपीन में न केवल अपना समुद्री बेड़ा, बल्कि थल-सेना भी भेजी। सन् १९०० में, हमने एक अमेरिकी अभियान दल चीन भेजा और अमेरिकी सेना चीन में ७ दिसम्बर, १९४१, तक रही।

ऐतिहासिक दृष्टि से, अमेरिका प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में काफी सक्रिय रहा। कई दृष्टियों से—भौगोलिक दृष्टि से, प्रशान्त में हमारे राज्य होने तथा ऐसे ही कई अन्य कारणों से—यूरोप की अपेक्षा प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र से हमारा लगाव अधिक रहा है। इस ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर तो मुझे ऐसा कोई कारण दिखलायी नहीं पड़ता, जिससे बाध्य होकर अमेरिका प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र और एशिया से हट जायेगा।

जहां तक यूरोप का सम्बन्ध है, मैं समझता हूं कि अमेरिका को यह तय करने में अभी काफी समय लगेगा कि पश्चिमी यूरोप की सुरक्षा का अब हमारे लिए कोई महत्व नहीं रहा। उत्तर अटलाण्टिक सन्धि संघटन ('नाटो') यूरोप के प्रति हमारे सम्पूर्ण दृष्टिकोण का प्रतीक है। उसकी स्थापना का आधार यह मूलभूत विचार रहा है कि यूरोप की सुरक्षा केवल पश्चिमी यूरोप की ही नहीं, बल्कि अमेरिका की भी दिलचस्पी का विषय है। मेरे विचार से तो, स्पष्टत:, हम इस क्षेत्र में सक्रिय रुचि लेते रहेंगे।

प्रश्न : और, अब मैं अन्त में आपसे यह प्रश्न पूछना चाहता हूं: क्या हम अन्तर्राष्ट्रीय परस्पर-निर्भरता के युग में, सम्भवत: उसके प्रति जागरूक न होते हुए भी, पहुंच गये हैं? क्या इसकी कोई सम्भावना है कि अब विश्व-शान्ति के ऐसे युग का प्रादुर्भाव होगा, जैसा १९१४ के बाद से कभी नहीं आया? इसी बात को यदि उलट कर रखा जाय, तो क्या यह कहा जा सकता है कि शान्ति अब भी छुईमुई की तरह, जीर्ण-शीर्ण, है? इस शान्ति की रक्षा के लिए, जो छूते ही टूट सकती है, एक राष्ट्र, एक संगठन और एक वार्ताकार के रूप में हम क्या करने जा रहे हैं?

जॉनसन : मैंने जो कुछ पहले कहा है, उसे ही दुहराते हुए, मैं यह कहना चाहता हूं कि जिस व्यवस्था के बल पर हम इतना रास्ता तय करने में समर्थ हुए हैं, उसे, निश्चय ही, हमें विघटित नहीं करना चाहिए। मैं स्वीकार करता हूं कि शान्ति नितान्त क्षीण है, परन्तु उसकी रक्षा के लिए दोनों ओर गहन भावना विद्यमान है। बड़ी शक्तियों के बीच बड़े टकराव को टालने में हम सफल हुए हैं और मुझे आशा है कि भविष्य में भी हम सफल होते रहेंगे, क्योंकि अब यह काफी स्पष्ट हो चुका है कि बड़ी शक्तियों के बीच युद्ध—परमाणु युद्ध—किसी के लिए भी हितकर नहीं।

मैं समझता हूं कि हम, अव्यक्त रूप से, अधिकाधिक अन्तर्निर्भरता की दिशा में बढ़ रहे हैं। हम एक-दूसरे के साथ काफी हद तक घुलमिल गये हैं। हम मादक द्रव्यों, अन्तर्राष्ट्रीय संचार और हवाई यातायात के क्षेत्रों में सहयोग कर रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय अपराध, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भूमिका तथा और भी कई क्षेत्रों में हम परस्पर सहयोग कर रहे हैं। इनमें से अधिकांश ऐसी समस्याएं नहीं हैं, जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा 'श्रेष्ठतर' ढंग से हल किया जा सकता है—सच तो यह है कि वे केवल अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग 'द्वारा ही' सुलझायी जा सकती हैं। अत:, हम सब बाध्य होकर सहयोग के क्षेत्र में आ गये हैं और यह हम सबके लिए शुभ एवं कल्याणप्रद है। ■■

विकासोन्मुख विश्व में प्रकृति-संरक्षण

ज़फर फत्तेहअली

प्राकृतिक साधनों का संरक्षण भौतिक सुख-समृद्धि का आधार है। साथ ही, वह जीवन के अधिक सौष्ठवपूर्ण एवं परिष्कृत पक्षों से भी सम्बद्ध है। अतः, यह एक ऐसा विषय सिद्ध हो सकता है, 'जिस पर समाज के विभिन्न वर्गों में मतैक्य हो।'

प्राकृतिक साधनों का संरक्षण एक नया आन्दोलन, अथवा कदाचित एक नयी आवश्यकता है। इसके जटिल उद्देश्यों पर अभी भी तर्क-वितर्क चल रहे हैं। हाल में, स्टाकहोम में हुए पर्यावरण सम्मेलन से यह स्पष्ट हो गया कि कितनी आसानी से कोई व्यक्ति प्राकृतिक साधनों के संरक्षण के विषय से भटक कर समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में, और वहां से सम्पन्नों और विपन्नों के बीच कटुतापूर्ण वाद-विवादों पर, जिनका प्राकृतिक साधनों के संरक्षण से कोई सम्बन्ध नहीं है, उतर आ सकता है। भावावेश में बह उठने की यह प्रवृत्ति कुछ बहुत उपयोगी नहीं है। सच्चाई यह है कि सम्पन्न और विपन्न, दोनों ही प्रकार के देशों के सामने प्रकृति-संरक्षण और पर्यावरण सम्बन्धी अपनी समस्याएं हैं, जो भिन्न होते हुए भी एक समान ही तीव्र हैं।

एक ओर, ये समस्याएं विभिन्न प्रकार के औद्योगिक प्रदूषण के कारण उत्पन्न हुई हैं। दूसरी ओर, पर्यावरण-प्रदूषण को निर्धनता और साधनों के अभाव के कारण प्रश्रय मिला है। इन परिस्थितियों में, विकासोन्मुख देशों को दुहरा प्रयास करना है : उन्हें अपनी पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के कारणों से जूझना है; और, उसके साथ-ही-साथ, प्रदूषण की उन समस्याओं से बचने के लिए सावधानी से योजनाएं भी बनानी हैं, जो पश्चिमी देशों को भुगतनी पड़ रही हैं। इस प्रकार, प्राकृतिक साधनों के संरक्षण की समस्या निर्धनों और धनिकों, दोनों ही के लिए समान रूप से चिन्ता का विषय है। यह एक ऐसा क्षेत्र है, जिसे राष्ट्रों के बीच विद्यमान परम्परागत एवं अविवेकपूर्ण वैमनस्यों और मतभेदों से मुक्त रखना चाहिए।

यद्यपि प्राकृतिक साधनों का संरक्षण अध्ययन का एक पृथक विषय बनता जा रहा है, फिर भी उसे सर्वव्यापी बनाना होगा। उसका सम्बन्ध हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू से होना चाहिए। यह नहीं हो सकता कि हम दिन के कुछ घण्टे तो संरक्षणवादी बने रहें और शेष समय उसके विपरीत आचरण करें। हम सभी के लिए, चाहे हमारी संस्कृतियां जो भी हों, यह आवश्यक है कि हम अपने जीवन-यापन के तौर-तरीकों की समीक्षा गम्भीरता से करें। हमें उन रीति-रिवाजों को तिलांजलि देनी होगी, जिनके वशीभूत होकर हम अपने पर्यावरण को दूषित करने वाले काम करते हैं। अपनी परिस्थितियों के साथ हमें एक नये गतिशील सन्तुलन की स्थापना करनी होगी, ताकि हमारी गतिविधियों के कारण प्राकृतिक जगत को कोई विशेष हानि न पहुंच सके। हमें अपने निजी और व्यावसायिक, दोनों ही प्रकार के क्रियाकलापों में, इसकी आवश्यकताओं का सम्मान करना चाहिए, और साथ ही, अपने सांस्कृतिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों की गहराई से समीक्षा करनी चाहिए। उदाहरण के लिए, अमेरिका के प्रत्येक नागरिक को यह सोचना चाहिए कि मोटर कार, प्रक्षालक पदार्थों, प्लास्टिक की चीजों तथा डिब्बों और बोतलों में बन्द खाद्य-पदार्थों और पेयों से उसे इतना मोह क्यों है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी किसी-न-किसी प्रिय स्थिति का परित्याग करना होगा। और, अपनी इस 'भोलीभाली, करुणामयी, धरती' के प्रति सच्चे हृदय से एक नये दृष्टिकोण की खोज करते हुए, हो सकता है, हम उस एकरूपता को प्राप्त कर लें, जो अब तक हमें भरमाती रही है। बहुत सम्भव है, प्राकृतिक साधनों का संरक्षण भविष्य का एक नया धर्म बन जाये, क्योंकि धर्म का सम्बन्ध मानव-प्राणियों की गहनतम आकांक्षाओं से होता है और स्वयं को जीवन देने वाली शक्तियों के साथ मानव का सम्बन्ध अन्य सभी सम्बन्धों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।

पिछली शताब्दी से विश्व के मन पर अर्थशास्त्र बुरी तरह छाया हुआ है। हमें सिखाया गया है कि यह एक ऐसा विज्ञान है, जो वैकल्पिक लक्ष्यों के सम्बन्ध में दुर्लभ साधनों का अध्ययन करता है। यदि साधन दुर्लभ न हों, अथवा यदि किसी साधन का उपयोग लक्ष्यों की पूर्ति के लिए करना सम्भव न हो, तो वह विषय अर्थशास्त्र के क्षेत्र में नहीं आता। किसी समय, प्रकृति के निःशुल्क वरदान के रूप में प्रायः हमारे सामने वायु का

उदाहरण प्रस्तुत किया जाता था, जो हमारे अध्ययन और हमारी समीक्षा के क्षेत्र में नहीं आता था। लेकिन आज, जबकि टोकियो की सड़कों पर शुद्ध हवा खरीदनी पड़ती है, और लन्दन के ऊपर हवा को साफ करने के लिए करोड़ों पौण्ड खर्च करने पड़ते हैं, यह बात समझ में आने लगी है कि पर्यावरण तथा अर्थशास्त्र का सम्बन्ध उससे कहीं गहरा है, जितना आज से दस वर्ष पूर्व समझा जाता था। ये सब इस बात के नाटकीय उदाहरण हैं कि हमें अपने पर्यावरण के अनिवार्य तत्वों के प्रति अपना दृष्टिकोण कितने आकस्मिक रूप से बदलना पड़ा है। और, सभी के लिए यह एक चेतावनी होनी चाहिए कि एक ऐसी जटिल प्रणाली से व्यवहार करते हुए, जिसे हम केवल आंशिक रूप से ही समझते हैं, हमें प्राकृतिक शक्तियों से छेड़छाड़ करने में अधिक-से-अधिक सावधानी बरतनी चाहिए।

आज पूर्व के सामने जो सबसे बड़ी चुनौतियां और सबसे महान् अवसर उपस्थित हैं, उनमें एक यह है कि पश्चिम की नकल करने में अब उसे अतीव विवेक और समझ-बूझ से काम लेना है। लगभग पूरी-की-पूरी पिछली शताब्दी के दौरान, विकासोन्मुख देशों ने बिना सोचे-विचारे समृद्ध देशों के अन्धानुकरण का प्रयत्न किया, और इस प्रकार, स्वयं को बहुत हानि पहुंचायी।

अप्रैल १९७२ में, पर्यावरणीय आयोजन एवं समन्वय सम्बन्धी राष्ट्रीय समिति की बैठक का उद्घाटन करते हुए, प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने कहा था : "हममें न केवल अपनी दिशा चुनने की, अपितु यह समझ लेने की भी क्षमता होनी चाहिए कि हमें कहां रुकना है और कब मुड़ना है। हमें इतना परिपक्व होना चाहिए कि हम अनावश्यक चीजों की क्षणिक चमक-दमक के प्रलोभन का संवरण कर सकें।" उन्होंने आगे कहा कि सदियों तक भारतीय विद्यार्थी वृक्षों के नीचे शिक्षा पाते रहे हैं। किन्तु, ऐसा लगता है कि उनके लिए आज पढ़ाये जाने वाले विषयों और अच्छे अध्यापकों से भी अधिक महत्वपूर्ण स्कूल का भवन हो गया है। समशीतोष्ण और ठण्डे देशों में तो स्कूल-भवन, निस्सन्देह, अत्यन्त आवश्यक हैं। किन्तु भारत में, जहां कृपालु सूर्य वर्ष में आठ महीने प्रखरता से चमकता है, एक अच्छा अध्यापक वन-बगीचों में वृक्षों की छाया के नीचे ऐसे वातावरण में पढ़ा सकता है, जो आज के सामान्य स्कूलों के कमरों की तुलना में कहीं अधिक संतोषप्रद होगा।

कुछ दृष्टियों से, पूर्व की जीवन-प्रणाली प्रकृति के चक्र में पश्चिमी जीवन-प्रणाली की अपेक्षा अधिक सहजता से घुलमिल गयी है। एक औसत पश्चिमवासी की तुलना में एक औसत एशियाई को प्राकृतिक साधनों की आवश्यकता कम रहती है। उदाहरण के लिए, खाद्य-पदार्थों के उपयोग के एक प्रमुख विशेषज्ञ, डा० जार्ज बोर्गस्ट्राम, ने चीन में प्रचलित प्रथाओं का उल्लेख किया है, जहां फार्मों पर पशुओं के पालन-पोषण के लिए प्रकृति के उच्छिष्ट पदार्थों का अच्छा उपयोग किया जाता है, जबकि पश्चिम में सुअरों और कुक्कुटों का व्यावसायिक पैमाने पर गहन उत्पादन होने के कारण उन्हें मनुष्य के आधारभूत खाद्य-पदार्थ खिलाने पड़ते हैं।

साथ ही, दक्षिण एशिया के कुछ भागों में पर्यावरण को निकृष्ट स्थिति में लाने के लिए उत्तरदायी कारण हमारी प्राचीन परम्पराओं में ढूंढ़े जा सकते हैं। एशिया में स्थान बदल-बदल कर खेती करने की एक अतीव हानिकारक कृषि-प्रथा पायी जाती है। इसके अन्तर्गत, लोग वनों को काट कर नई भूमि पर एक-दो वर्ष खेती करते हैं, और फिर आगे बढ़ जाते हैं तथा नये वनों को काटते हैं। एक अन्य हानिकारक रिवाज यह है कि पालतू पशुओं को सार्वजनिक भूमियों पर चरने दिया जाता है। अनादि काल से गरीब लोग यह मानते आ रहे हैं कि भेड़-बकरियों के झुण्ड पालना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है, भले ही उन्हें खिलाने के लिए उनके पास कुछ भी न हो। इस प्रकार, मनुष्य के उद्दण्ड क्रिया-कलापों के फलस्वरूप, अनेक हरे-भरे भू-क्षेत्र मरुस्थलों में परिणत हो गये हैं।

भारत में बहुत-सारी भूमि मनुष्यों और मवेशियों द्वारा अत्यधिक प्रयुक्त होने के कारण बंजर हो गयी है, और एक अवसादमय दृश्य प्रस्तुत करती है। लगभग १० करोड़ मवेशी, जिनमें अधिकांश प्रायः अनुपयोगी हैं, देश की प्राकृतिक सम्पदा पर निर्वाह करते हैं। गिर वन में किये गये एक सर्वेक्षण से पता चला है कि जब भूमि गाय-बैलों की खुरों या मनुष्यों के पैरों तले रौंदी जाने से बची रहती है, तो वर्ष में घास का उत्पादन प्रति हेक्टेयर ४,५०० किलोग्राम होता है। किन्तु उन गांवों के आसपास, जहां भूमि को पालतू पशु रौंद डालते हैं, घास का उत्पादन केवल ४७५ किलोग्राम प्रति हेक्टेयर होता है। भूमि के उचित प्रबन्ध से भारत में घास का उत्पादन १० गुना बढ़ सकता है। इससे उसकी कृषिगत अर्थ-व्यवस्था में कितना उल्लेखनीय परिवर्तन हो सकता है, इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है।

एक क्षुधापीड़ित मानव से यह कहना, निश्चय ही, अर्थहीन है कि वह भूमि की पूंजी का विदोहन करने के बजाय, उसका संरक्षण करे; कि वह इस पूंजी के सहारे पलने के बजाय, तब तक प्रतीक्षा करे, जब तक उससे आय न होने लगे। हम सभी को ईंधन के रूप में वृक्षों के अत्यधिक मनमाने उपयोग से, कृषि का स्थान बारबार बदलने से वनस्पति और मिट्टी को होने वाली अपार क्षति से तथा भूमि के ऐसे ही अन्य दुरुपयोगों से हार्दिक क्लेश होता है। किन्तु, अधिकांश स्थानों में वृक्षों का काटना तभी बन्द होगा, जब लोगों को ईंधन के लिए मिट्टी का तेल या ऐसी ही कोई अन्य चीज निःशुल्क सुलभ की जायेगी। यदि हमारे भूमण्डल के स्वास्थ्य के लिए वन वस्तुतः उतने ही आवश्यक हैं, जितना पारिस्थितिकी-विज्ञ बताते हैं, तो सभी देशों को चाहिये कि वे उन्हें और अधिक नष्ट होने से बचाने के लिए अविलम्ब कदम उठायें। मैं जानता हूं कि यह काम कठिन है, क्योंकि हमें बताया गया है कि भूगर्भ में अब विदोहन के लिए खनिज तेल केवल २,५०० अरब बैरल ही शेष बचा है, जबकि उसकी मांग उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। जो भी हो, यदि हम अपने सब लोगों के इस एकमात्र विश्व के पारिस्थितिक स्वास्थ्य को बनाये रखना चाहते हैं, तो हमें या तो अपने साधनों को पर्याप्त मात्रा में आधिक्य वाले क्षेत्रों से अभाव वाले क्षेत्रों में स्थानान्तरित करने के लिए प्रस्तुत होना चाहिये, अथवा आगामी दशाब्दों में सबके लिए निम्न स्तर के जीवन की सम्भावनाओं को चुपचाप अंगीकार कर लेना चाहिये।

हम आज बढ़ती हुई आशाओं के संसार की बातें करते हैं, किन्तु हमें याद रखना चाहिये कि इतिहास के प्रत्येक काल में लोगों ने अपनी भौतिक दशा सुधारने का प्रयत्न किया है। अभी कुछ ही समय पूर्व तक, हमेशा कुछ मुट्ठी भर लोग ही—अपनी प्रवर बुद्धिमत्ता, अधिक जीवट या पाशविक शक्ति के बल पर—आगे बढ़े थे, और समाज तथा प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। इन निरंकुश अल्पसंख्यकों में, चाहे वे वियना के हैप्सबर्ग अथवा पेरिस के बोरबोन, इंग्लैण्ड के ट्यूडर अथवा भारत के मुगल रहे हों, जनकल्याण की भावना न होते हुए भी एक ऐसा गुण था, जिसकी हमें सराहना और अनुकरण करना चाहिए। स्थान एवं सौन्दर्य तथा उनसे सम्बद्ध समस्याओं के बारे में उनका बोध अच्छा था। हमें एक ऐसी पद्धति अपनानी होगी, जिसके अन्तर्गत हम, निस्सन्देह, जनसमूह की सुविधाओं और सुख को दृष्टि में रख कर ही अपने निर्माण-कार्य करेंगे, किन्तु इस न्यूनतम लक्ष्य को अपनी योजनाओं पर हावी नहीं होने देंगे।

प्रायः लोगों को यह कहते सुना गया है कि जब तक हम अपने किशोरों को संरक्षण और पर्यावरण सम्बन्धी सिद्धान्तों और प्राकृतिक सौन्दर्य का बोध नहीं करायेंगे, तब तक पर्यावरण से सम्बद्ध अस्वास्थ्यकर प्रवृत्तियों को रोकना असम्भव है। स्थिति को तत्काल नियन्त्रित करने की आवश्यकता तथा इस तथ्य को देखते हुए कि राजनीतिज्ञों का अपने कार्य-क्षेत्रों पर, विशेष रूप से विकासोन्मुख देशों में, व्यापक प्रभाव है, मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि आज सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि हम अपने शासकों को ही प्रशिक्षित करें।

भारत सरकार ने १९५२ में एक राष्ट्रीय वन-नीति निर्धारित की थी, जिसमें यह सिफारिश की गयी थी कि वनों के संरक्षणात्मक और उत्पादक, दोनों ही प्रयोजनों को दृष्टि में रखते हुए, भूमि के ३० प्रतिशत भाग को वनों से आच्छादित रखना चाहिए। परन्तु अधिकांश राज्य सरकारों ने इस सुझाव को गम्भीरता से ग्रहण नहीं किया, जिसका परिणाम यह हुआ है कि आज हमारे देश की २० प्रतिशत से भी कम भूमि वनों से अच्छादित है। इस स्थिति ने जहां भूमिगत जल-भण्डारों में भारी कमी सहित अन्य बहुत सारी हानियों को जन्म दिया है, वहीं इसके कारण बाढ़ों से होने वाली क्षति भी वर्ष-प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। यहां तक कि एक अनुमान के अनुसार, पिछले २५ वर्षों में हमारे देश को बाढ़ों से ३,५०० करोड़ रुपये की हानि हो चुकी है।

भूमि के लिए प्रतिद्वन्द्विता कर रही मांगों के संघर्ष में, वनों का पक्ष उत्तरोत्तर कमजोर होता जा रहा है, क्योंकि वन-प्रदेश के अधिकाधिक भाग पर कृषि का आधिपत्य होता जा रहा है।

दायीं ओर के चित्र जैसा मनोरम दृश्य प्रस्तुत करने वाले वन भूमि की प्रतिस्पर्द्धी मांगों के संघर्ष में बाजी हारते जा रहे हैं।

किन्तु कृषि-पक्ष की यह विजय केवल दिखावटी है, क्योंकि इस प्रकार प्राप्त भूमि कृषि के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। इस अतिरिक्त भूमि से बहुत कम पैदावार प्राप्त होती है—उससे कहीं कम, जो वर्तमान कृषि-भूमि से ही अधिक गहन कृषि करके प्राप्त की जा सकती है। वास्तविक त्रासदी यह है कि कृषि-पक्ष की ओर से इस प्रकार के दबाव—कीनिया में नाकुरु झील और भारत में भरतपुर से लेकर,ब्राजील के हरे-भरे जंगलों तक—विश्व के कुछ प्रमुखतम क्षेत्रों के लिए संकट उत्पन्न कर रहे हैं। एक ऐसे समय में, जब भूमि-उपयोग के विशेषज्ञ निर्णायक तौर पर यह सिद्ध कर सकते हैं कि भूमि के अधिकतम उत्पादक उपयोग का निर्धारण उसके इतिहास तथा पर्यावरण सम्बन्धी उसकी विशिष्टताओं को दृष्टिगत रख कर ही किया जा सकता है, विकासोन्मुख देशों के लिए पर्यावरण-विशेषज्ञों की चेतावनी की उपेक्षा करना और विकसित देशों द्वारा की गयी पिछली गलतियों पर ध्यान न देना एक अतीव दुर्भाग्यपूर्ण अपव्यय है।

वनों में अनायास उग आने वाली वनस्पतियों को, जो सही अर्थ में 'वनज' हों, पौधों की नस्लों में सुधार करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। अतएव, किसी भी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा किसान के लिए यह अधिक आवश्यक है कि वह इन वन्य वनस्पतियों को सुरक्षित रखने के महत्व को भलीभांति समझ ले। वनस्पतियों की अन्य किस्मों को जब घरेलू किस्मों से संयोजित करके उगाया जाता है, तो प्रायः उत्तम गुणों वाली संकर किस्में उत्पन्न होती हैं। फिर, प्रकृति की प्रतिभा, स्फूर्ति तथा क्षमता से लाभ उठाने का विकल्प भी तो सदैव सुलभ रहना चाहिए। अमेरिका के महान् कृषि-वैज्ञानिक तथा नोबेल पुरस्कार-विजेता, डा० नॉर्मन बोरलाग, का कहना है कि उष्ण प्रदेशों में खाद्योत्पादन में वृद्धि करने की सम्भावनाएं बहुत अधिक हैं। किन्तु, इसके लिए शर्त यह है कि इन क्षेत्रों में भी अधिक उपज देने वाली किस्मों के विकास पर उतना ही व्यापक अनुसन्धान किया जाये, जितना मध्यवर्ती अक्षांशों वाले प्रदेशों में किया गया है। निस्सन्देह, नस्लों की परिवर्तनशीलता एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, और यह एक ऐसी बात है, जिससे जीवित पौधों की प्रत्येक नस्ल को सुरक्षित रखने का महत्व बहुत बढ़ जाता है।

भारत के एक प्रमुख कृषि-वैज्ञानिक, डा० एम० एस० स्वामिनाथन, ने चेतावनी दी है कि नस्ल सम्बन्धी विविधता, जिस पर ही सम्पूर्ण पौध प्रजनन कार्यक्रम निर्भर करता है, पुरानी किस्मों के स्थान पर नयी किस्मों की बुआई के कारण समाप्त होती जा रही है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि जब सम्पूर्ण प्रदेशों में किसी एक किस्म या कुछ थोड़ी सी सम्बद्ध किस्मों की ही खेती होने लगती है, और इस प्रकार, उगायी जाने वाली किस्में कम हो जाती हैं, तो संक्रामक रोगों और कीड़ों को खुला निमन्त्रण मिल जाता है। १९६४-६५ में, भारत और पाकिस्तान में मैक्सिकन गेहूं और उससे विकसित अन्य किस्में केवल १० हेक्टेयर भूमि पर बोयी गयी थीं। सन् १९७१ में, इनकी खेती एक करोड़ हेक्टेयर भूमि पर होने लगी। इसके अतिरिक्त, अन्य नस्लों और जोत की फसलों, दोनों ही में, आधारभूत जनित्र-द्रव्य का अधिकाधिक क्षरण होता जा रहा है, जबकि यह प्रायः निश्चित है कि इनमें से कुछ मानव के पोषण के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं।

हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हमारी खेती वाली फसलों में पौध रोगों और कीड़ों का प्रतिरोध करने वाले मूल तत्व तथा शीत और सूखे को झेलने की क्षमता और पोषकता जैसे उपादेय गुण इन फसलों से सम्बद्ध परम्परागत वन्य किस्मों से ही आये हैं। अस्तु, हमारे लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने पौध प्रजनन-कार्यक्रमों के लिए नस्लों की विविधता को बनाये रखें। किन्तु विकासोन्मुख देशों में, जहां हमारे लिए पुरानी किस्मों के स्थान पर श्रेष्ठतर और अधिक उपज देने वाली किस्में बोना जरूरी है, नस्लों की सबसे अधिक विविधता उपलब्ध है। यह एक चुनौती भरा विरोधाभास है, जिसके हल की तत्काल आवश्यकता है।

अनेक विकासोन्मुख देशों में अब अधिक उपज देने वाली संकर किस्मों का उत्पादन करने के बजाय, रासायनिक पदार्थों का प्रयोग करके कीड़े-मकोड़ों से फसलों की रक्षा करने पर अधिक बल दिया जा रहा है। भारत इस समय प्रति हेक्टेयर १६० ग्राम कीटनाशकों का उपयोग कर रहा है, जबकि पश्चिमी जर्मनी जैसे देशों में यह मात्रा १०,००० ग्राम प्रति हेक्टेयर है। हमारे सामने प्रश्न यह है कि क्या हम इन्हीं विधियों का अन्धानुकरण करें, अथवा पौध रोगों और कीटों पर जैविक नियन्त्रण के उन नये उपायों पर ध्यान दें, जिनका सुझाव, उदाहरण के लिए, ब्रिटेन की पर्यावरण अणुसन्धान परिषद ने दिया है, जहां विशिष्ट प्रकार के कीटों के लिए ३०० प्रकार के विषाणु विकसित किये गये हैं?

विदेशों से मंगायी गयी पौधों की नयी किस्में अन्य देशों के समान ही भारत में भी अतीव अनिष्टकारी सिद्ध हुई हैं। यूकलिप्टस, लैण्टाना, यूपाटोरियम और वाटर हायसिन्थ ने विशाल भूक्षेत्रों को क्षतिग्रस्त कर दिया है। इसलिए, विदेशी पेड़-पौधों को लगाने में बड़ी सावधानी बरती जानी चाहिये। हर किस्म का विदेशी पेड़-पौधा लगाते समय उसके गुण-दोषों पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये। इनमें से कुछ का विदेशों से मँगाना, निस्सन्देह, वांछनीय है। उदाहरण के लिए, बंजर और क्षरणशील भूमियों को फिर से हरा-भरा करने में किसी भारतीय पौधे की अपेक्षा 'एकेशिया औरीक्यूली-फार्मिस' तथा 'प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा' जैसे पौधों ने अधिक महत्वपूर्ण योग प्रदान किया है। देश में विशाल बहूद्देश्यीय बांधों का निर्माण होने से उनके रख-रखाव की भारी समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं; उनके कारण नदी-घाटियों से मानव-बस्तियां उजड़ गयी है और अनेक महत्वपूर्ण प्राकृतिक आवास-क्षेत्र विनष्ट हो गये हैं। अनेक विशेषज्ञों का विश्वास है कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें नदियों जैसे पानी के धरातलीय स्रोतों के बजाय, जल के भूगर्भीय साधनों पर अधिक निर्भर करना चाहिये। कहा जाता है कि पृथ्वी पर विद्यमान समस्त जलस्रोतों में से ९० प्रतिशत जलस्रोत धरती के गर्भ में स्थित हैं।

निस्सन्देह, भारत के पास सम्पूर्ण देश में कुछ बहुत ही अच्छे आर्द्र प्रदेश हैं। किन्तु, दुर्भाग्य की बात है कि बहुत से प्रशासकों ने अभी इस बात को नहीं समझा है कि आर्द्र प्रदेशों को कृषि योग्य बनाने के बजाय, उन्हें सुरक्षित रखना अधिक श्रेयस्कर है। इस प्रसंग में, यह जानकर संतोष होता है कि रामसर, ईरान, में जनवरी १९७१ में आयोजित आर्द्र प्रदेशों और जल-पक्षियों के संरक्षण सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा स्वीकृत नियमावली की भारत सरकार शीघ्र ही सम्पुष्टि करने जा रही है। इसके फलस्वरूप, हमारे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के कुछ आर्द्र प्रदेश एक ओर तो परिभ्रमणशील जल-पक्षियों के स्थायी शरणस्थलों के रूप में संरक्षित रहेंगे, और दूसरी ओर, इन पक्षियों को एक प्रकार का 'हरित प्रवास-पथ' सुलभ करेंगे, जिसका अर्थ यह है कि हर राज्य में छोटे-छोटे आर्द्र प्रदेशों का अस्तित्व रहेगा, जहां एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुए पक्षी विश्राम और संरक्षण प्राप्त कर सकेंगे।

पक्षी जहां हानिकारक कीड़े-मकोड़ों की संख्या घटाये रखने में महत्वपूर्ण योग प्रदान करते हैं, वहीं ग्रामीण वातावरण को सुन्दर और स्वास्थ्यवर्धक बनाने में भी सहायक सिद्ध होते हैं। विकासोन्मुख संसार में योजना-निर्माताओं की शायद यह सबसे बड़ी भूल रही है कि उन्होंने ग्रामीण विकास पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। अर्थशास्त्र, समाजविज्ञान तथा पारिस्थितिकी की यह मांग है कि इस भूल को यथाशीघ्र सुधार लिया जाये। ग्रामीण पुनर्निर्माण, वस्तुतः, कोई वित्तीय साधनों का मामला नहीं है। यह तो मूलतः अपने वातावरण के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाने का प्रश्न है। सच तो यह है कि हमारे वनस्पति-विहीन, अनुर्वर, भूखण्ड अति-दोहन और पर्यावरण के विरुद्ध हमारी हिंसक कार्यवाहियों में निहित पापों के दुःखद स्थायी स्मारक हैं।

हमने अभी तक, पर्यावरण को संरक्षित रखने और उद्योगों, कृषि तथा अन्य संस्थाओं को विकसित करने के विषय में उन सिद्धान्तों के अनुसार, जिनसे हमारे भौतिक उद्देश्यों की

सर्वोत्तम ढंग से पूर्ति होती है; विचार किया है। किन्तु, संरक्षण का घनिष्ठ सम्बन्ध लोगों की संस्कृति और रीति-रिवाजों से भी है, जो ऐसी शक्तियां हैं, जिन्होंने हमारे संसार को इतना सुन्दर और आकर्षक बनाया है। बहुत सी पुरानी दक्षताएं लुप्त हो रही हैं, क्योंकि आर्थिक दृष्टि से अब उनकी कोई मांग नहीं रह गयी है। बहुत से परम्परागत रीति-रिवाज लुप्त होते जा रहे हैं, क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टि से कभी उनका मूल्यांकन नहीं किया गया है। पुराने समय में 'पुक्की' जाति के लोग हुआ करते थे, जिनका काम भटके हुए घरेलू पशुओं का पीछा करना और उन्हें पकड़ कर वापस लाना होता था। वे सैकड़ों प्रकार के पशुओं के पदचिन्हों को पहचानते थे। इसी प्रकार, १९वीं शताब्दी के भारतीय शिकारियों ने मैसूर के उपलिगा और कुरावा जनजातियों के पथ-प्रदर्शकों के अद्भुत गुणों की प्रशंसा की है, जो वन्य पशुओं की गन्ध और उनके पथ पहचान कर उनका पता लगा लेने की कला में दक्ष थे। आज के प्रकृति-विज्ञानी वनों में पशुओं की खोज के लिए विद्युदाणविक सूचनाप्रेषक उपकरणों पर निर्भर करते हैं। किन्तु, यदि प्रौद्योगिकी के विकास के कारण मानव की प्रत्यक्ष संवेदन-क्षमताएं कमजोर पड़ जायें, तो भावी संसार के लिए यह एक महान् क्षति होगी।

अभी तक मैंने सामान्यत: भारत की समस्याओं का उल्लेख किया है—एक तो इसलिए कि इनसे मैं भलीभांति परिचित हूं; दूसरे, इसलिए कि मेरे विचार में इनमें से अधिकांश समस्याएं विकासोन्मुख संसार के अधिकांश भाग की भी समस्याएं हैं। निस्सन्देह, प्रकृति एवं प्राकृतिक साधनों के संरक्षण सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय संघ और संयुक्तराष्ट्र-संघ की नयी पर्यावरण एजेंसी जैसी संस्थाएं भविष्य में पथ-प्रदर्शन और सहायता प्रदान करने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभायेंगी।

किन्तु, दक्षिण एशिया में प्रकृति-संरक्षण सम्बन्धी कोई भी विवेकपूर्ण नीति तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक जनसंख्या-वृद्धि की तीव्र गति पर अंकुश नहीं लगा दिया जाता। प्रत्येक परियोजना जनसंख्या में अप्रत्याशित वृद्धि के सामने पिछड़ जाती है, और अधिकांश लोगों का जीवन-स्तर दिन-पर-दिन गिरता ही जाता है। इस समय जनसंख्या में प्रतिवर्ष २.५ प्रतिशत की वृद्धि हो रही है तथा हर ३० वर्ष में उसके द्विगुणित हो जाने की सम्भावना बनी हुई है। ऐसी स्थिति में, जब तक जनसंख्या में वृद्धि की प्रवृत्ति को रोक नहीं दिया जाता, तब तक किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय सहायता अथवा राष्ट्रीय प्रयास द्वारा रहन-सहन के स्तर को गिरने से रोक पाना असम्भव है।

उदीयमान आशाओं की वर्तमान क्रान्ति परिवर्तन और आधुनिकीकरण की उस प्रवृत्ति का केवल एक पहलू है, जिसने विकासशील देशों में एक बड़ी जनसंख्या को प्रभावित किया है। यह क्रान्ति ऐसी परिस्थितियों में हो रही है, जो १९वीं शताब्दी में इस प्रकार की उदीयमान आशाओं की क्रान्ति के समय विद्यमान परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न हैं।

उत्पादकता में वृद्धि तथा जनसंख्या-वृद्धि के बीच असन्तुलन पैदा हो गया है। जनसंख्या-वृद्धि की गति आर्थिक विकास में वृद्धि की गति से कम-से-कम दुगनी है। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ऐसा नहीं था। उस युग में शहरीकरण औद्योगिक विकास से कदम मिला कर चलता रहा; देहातों की जनसंख्या, सामान्यत:, निम्न देहाती जीवन-स्तर के ढांचे में ही पलती रही। लेकिन, आज उदीयमान आशाओं की क्रान्ति ने शहरी और ग्रामीण जनसंख्या के बीच विद्यमान सन्तुलन के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया है। फलस्वरूप, हमारे सामने शहरी भीड़भाड़ और पर्यावरणीय असन्तुलन की गम्भीर समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं, जिनसे जीवन का स्वरूप खतरे में पड़ गया है। इन घटनाओं ने 'संरक्षण' की—हमारी सभ्यता के साधनों के आधार को सुरक्षित रखने की—समस्या को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से, जहां अधिक सम्पन्न देशों को प्रति व्यक्ति साधनों के अत्यधिक उपयोग पर अंकुश लगाना चाहिये, वहीं निर्धन देशों को निर्धनता मिटाने का उद्देश्य कायम रखते हुए भी अपने साधनों के संरक्षण की व्यवस्था करनी होगी, क्योंकि यह अनिवार्य नहीं कि साधनों के अधिक उपयोग से ही निर्धनता दूर हो। वस्तुत:, साधनों का अधिक अच्छा और बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग करके भी निर्धनता दूर की जा सकती है। फिर भी, इस प्रकार के संरक्षण के लिए जनसंख्या-वृद्धि पर नियन्त्रण लगाना पहली शर्त है।

उदीयमान आशाओं का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि समाज बेरोजगारी के प्रति अधिकाधिक असहिष्णु होता जा रहा है। एक सीमा से आगे बेरोजगारी गम्भीर सामाजिक अशान्ति उत्पन्न करती है। लोग बहुत बड़े पैमाने पर गांवों को छोड़ कर नगरों में आ गये हैं, जिससे गांवों की बेरोजगारी या अर्ध-बेरोजगारी नगरों में चली आयी है। अनुमान लगाया गया है कि अगले २० वर्षों में, विकासोन्मुख देशों में काम कर सकने योग्य २० प्रतिशत पुरुष बेरोजगारों की श्रेणी में आ जायेंगे। अगले दो दशाब्दों में, विकास के भरपूर प्रयत्नों द्वारा शायद १४ करोड़ नये रोजगार उत्पन्न किये जा सकें, जबकि इसी अवधि में काम कर सकने योग्य पुरुषों की संख्या २७ करोड़ बढ़ जायेगी। अगर सामाजिक पर्यावरण का संरक्षण एक युक्तिसंगत विश्वव्यापी उद्देश्य है, तो हमें अपना ध्यान उन शक्तियों पर केन्द्रित करना चाहिये, जो विश्व के विशाल भूभागों में सामाजिक पर्यावरण को नष्ट करने में योग दे रही हैं।

यदि परिवार-नियोजन के मामले में मानव-प्राणियों में भी पक्षियों जैसी अन्त:प्रेरणा होती, तो कितना अच्छा होता। उदाहरण के लिए, सलेटी रंग की फारेस्ट फाउल नामक चिड़िया तभी बड़ी संख्या में अण्डे देती है, जब वह देखती है कि 'स्ट्रोबिलांथेस' नामक पौधों पर भरपूर फूल खिले हैं। वह जानती है कि उसके चूज़ों को इन फूलों से अतिरिक्त आहार उपलब्ध होगा। अन्य वर्षों में, अण्डों की संख्या थोड़ी होती है। कई अन्य कोकिलकण्ठी पक्षियों के समान ही, मैगपी रॉबिन भी जब यह देखती है कि जिस भूमि पर वह अण्डे देगी, उससे उसके परिवार का भरण-पोषण नहीं हो सकेगा, तो वह ऋतुकाल में समागम ही नहीं करती। किन्तु, मानवों के बारे में बात ठीक उल्टी है। अकिंचनता और अभाव की परिस्थितियां हमारी संख्या को और भी बढ़ाने में सहायक होती हैं।

अन्त में, मैं वन्य जीव-जन्तुओं का उल्लेख करके अपना कथन समाप्त करना चाहूंगा, क्योंकि पशु-पक्षियों की अनेक जातियों के अचानक विलुप्त हो जाने के कारण ही सर्वप्रथम संसार के विचारकों का ध्यान प्रत्येक जाति और उसके आवास-स्थल के बीच विद्यमान निकट सम्बन्धों की ओर गया। जब एक बार यह देख लिया गया, तो यह निष्कर्ष निकालना भी युक्तिसंगत ही था कि जो पर्यावरण वन्य जीवन के लिए असुरक्षित है, वह मानवों के लिए भी असुरक्षित हो सकता है। यदि भारत सरकार ने चीते के संरक्षण के लिए एक विशिष्ट टोली बना रखी है, और उसके निवास-क्षेत्र को सुरक्षित रखने के लिए एक बड़ी धनराशि खर्च की जा रही है, तो इसका कारण यही है कि अब लोगों में पर्यावरण के संरक्षण की सुबुद्धि आ गयी है, और वन्य क्षेत्रों के संरक्षण को मानव-जीवन की श्रेष्ठता बनाये रखने के लिये आवश्यक समझा जा रहा है। (संसार वन्य जीव-जन्तुओं के संरक्षण की समस्या के प्रति अधिकाधिक जागरूक होता जा रहा है। हाल में, वाशिंगटन, डी० सी०, में आयोजित लुप्तप्राय वन्य जन्तुओं सम्बन्धी विश्व-सम्मेलन में, संरक्षण के लिए विश्व की यह चिन्ता विशेष रूप से उभर कर सामने आयी। इस सम्मेलन में, भारत सहित ८० देशों ने प्रकृति-संरक्षण सम्बन्धी एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौते पर हस्ताक्षर करना स्वीकार किया, जिसमें जल, थल एवं नभ में विचरण करने वाले जीव-जन्तुओं की ४०० नस्लों तथा वनस्पतियों को शामिल किया गया है। इस समझौते को 'पर्यावरण सम्बन्धी राजनय की एक अभूतपूर्व विजय' कहा गया है।) ■■

लेखक के विषय में : श्री ज़फर फत्तेहअली भारत के एक सुविख्यात प्रकृति-वैज्ञानिक हैं। वह संरक्षण और प्राकृतिक साधनों सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय संघ के उपाध्यक्ष और बम्बई की नैचुरल हिस्ट्री सोसायटी के मानद सचिव हैं। भारत और विदेशों की पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख प्राय: प्रकाशित होते रहते हैं। प्रस्तुत लेख उनके एक भाषण पर आधारित है, जो उन्होंने पिछले वर्ष बांफ, कनाडा, में संरक्षण और प्राकृतिक साधनों सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय संघ के ११वें महाधिवेशन में दिया था।

नई चिड़ियाघर

जिसका आनन्द जीव-जन्तु भी लेते हैं

छायाचित्र : क्रिस्टोफर स्प्रिंगमैन

अभी अधिक समय व्यतीत नहीं हुआ है, जब चिड़ियाघर केवल एक ऐसा स्थान होता था, जहां लोग मनोरंजनार्थ जाते और मूंगफलियां चबाते हुए, घूम-फिर कर जीव-जन्तुओं को निहारा करते थे। लेकिन, अब यह सब बदल चुका है। आज अमेरिका के चिड़ियाघर दक्षिण कैलिफोर्निया के सैनडियेगो चिड़ियाघर द्वारा प्रस्तुत मार्गदर्शक दृष्टान्त का अनुकरण करते हुए, पारिस्थितिकी सम्बन्धी शिक्षा के केन्द्र बनते जा रहे हैं। सैनडियेगो का यह चिड़ियाघर बहुत दिनों से विश्व के सर्वोत्तम चिड़ियाघरों में गिना जाता है।

शिक्षा देना इस चिड़ियाघर के प्रमुख क्रिया-कलापों में एक है। यहां पारिस्थितिकी, पर्यावरण और प्राकृतिक इतिहास सम्बन्धी विषयों पर व्याख्यानों की व्यवस्था होती है, जिससे प्रतिवर्ष एक लाख से अधिक व्यक्ति लाभान्वित होते हैं। इसके अतिरिक्त, हाईस्कूल और कालेज स्तर के विद्यार्थियों, शिक्षकों और विकलांग बच्चों के लिए विशेष कक्षाएं आयोजित की जाती हैं।

किन्तु, सैनडियेगो का वास्तविक आकर्षण तो उसके द्वारा जीव-जन्तुओं के निवास के लिए सुलभ की गयी विशाल एवं मौलिक प्राकृतिक आवास-क्षेत्रों की व्यवस्था है। इसके विस्तृत प्रांगणों के अंचल में, अफ्रीका की तृणभूमियों (फेल्ट), अमेजन के वनों, दक्षिण अमेरिका के घास के मैदानों और आस्ट्रेलिया के मरुस्थलों के दृष्टान्त उपलब्ध हैं। सच तो यह है कि सैनडियेगो के मध्यभाग में ही चिड़ियाघर के कल्पनाशील यात्री ऐसा अनुभव कर सकते हैं, मानो वे विश्वव्यापी आखेट-यात्रा पर निकले हुए हों—केवल इस अन्तर के साथ कि उनके हाथों में बन्दूकों के स्थान पर कैमरे होंगे। और, उनके सम्भावित 'शिकारों' में से कुछ हैं: अगले पृष्ठों पर दिये गये जीव-जन्तु।

ये वन्य जन्तु कई-कई एकड़ क्षेत्रफल में फैले हुए घास के मैदानों, झाड़ियों तथा वनभूमियों में पिंजरों के बन्धन से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरण करते हैं। उन्हें बीच में आने वाली एक खाई ही दर्शकों से पृथक रखती है। निस्सन्देह, वन के निर्जन वातावरण में सहज रूप में रहते और व्यवहार करते हुए, इन जन्तुओं को देख कर दर्शक जीव-जन्तुओं और उनके पर्यावरण के बीच विद्यमान घनिष्ठ सम्बन्धों को कुछ-कुछ समझने लगते हैं।

जीव-जन्तु प्रेमियों और बच्चों के लिए तो चिड़ियाघर सदा से प्रसन्नता के स्रोत रहे हैं। किन्तु सैनडियेगो चिड़ियाघर आने पर उनका आनन्द असीम हो उठता है, क्योंकि यह एक ऐसा चिड़ियाघर है, जो स्वयं जीव-जन्तुओं को भी आनन्दित करता है।

चौरस पहाड़ी (मैसा) और गहरी घाटी वाली भूमि के ५२ हेक्टेयर क्षेत्र में फैले सैनडियेगो चिड़ियाघर में जितने वन्य जन्तु रखे गये हैं, उतने विश्व के किसी अन्य चिड़ियाघर में नहीं हैं। यहां नमूने के तौर पर १,६६५ जातियों और उप-जातियों के कुल ५,५३० जन्तु हैं। इसके विशिष्ट जन्तुओं में, लम्बी नाक वाले प्रोबोसिस जाति के बन्दर और भारतीय गैंडे जैसे दुर्लभ और धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे जन्तु शामिल हैं।

प्रतिवर्ष ३० लाख से अधिक लोग इस चिड़ियाघर को देखने आते हैं। इस प्रकार, सैनडियेगो में यह चिड़ियाघर पर्यटकों के लिए आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है। सम्पूर्ण चिड़ियाघर को देखने में कम-से-कम दो दिन लगते हैं। जो लोग इसे पैदल देखना चाहते हैं, उन्हें दो विशाल पार्श्व-पथ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में ले जाते हैं। अन्य लोग ५ किलोमीटर की बस यात्रा से ४० मिनट में चिड़ियाघर देखते हैं। किन्तु इसे देखने का सबसे कौतुकपूर्ण ढंग जमीन से ६-मंजिल की ऊंचाई पर चलने वाली हवाई ट्राम से इसे देखना है। इसमें पक्षियों के रहने के लिए दो विशाल चिड़ियाखाने हैं, जिनमें हजारों रंग-बिरंगे पक्षी रखे गये हैं। दर्शक इन चिड़ियाखानों में घूम-फिर सकते हैं। बहुत से पक्षी तो दर्शकों के हाथों से ही दाना चुगते हैं। यहां से पास ही, ३,००० सीटों वाले एक ऐम्फीथियेटर में बड़े-बड़े कानों वाली सील मछलियां (सी लायन) दर्शकों के सम्मुख अपने करतब दिखातीं और अनेक प्रकार से उनका मनोरंजन करती हैं।

सैनडियेगो चिड़ियाघर शिक्षा पर विशेष बल देता है। अतएव, उसने बच्चों के लिए अलग से एक विशेष विभाग खोल रखा है। इस विभाग में बच्चों का अपना छोटा सा चिड़ियाघर है, जहां ४०० पक्षी, स्तनपायी जीव और रेंगने वाले जन्तु रखे गये हैं। यहां वे एक भीमकाय कछुए की सवारी कर सकते हैं, हिरण की नाक पर अपनी नाक रगड़ सकते हैं, तेन्दुए के बच्चे की पीठ पर हाथ फेर सकते हैं, और पानी के अन्दर बनी खिड़कियों से झांक कर सील मछलियों को देख सकते हैं। और, उनके इन व्यवहारों से ये जन्तु भी प्रसन्न होते हैं। ■■

नीचे : सैनडियेगो चिड़ियाघर में परम सन्तुष्ट वनमानुष ।

दायें : एक लाल तोता ।

दायें, नीचे : वृक्षों से घिरे वनपथ पर गिजाल नामक अफ्रीकी हिरण ।
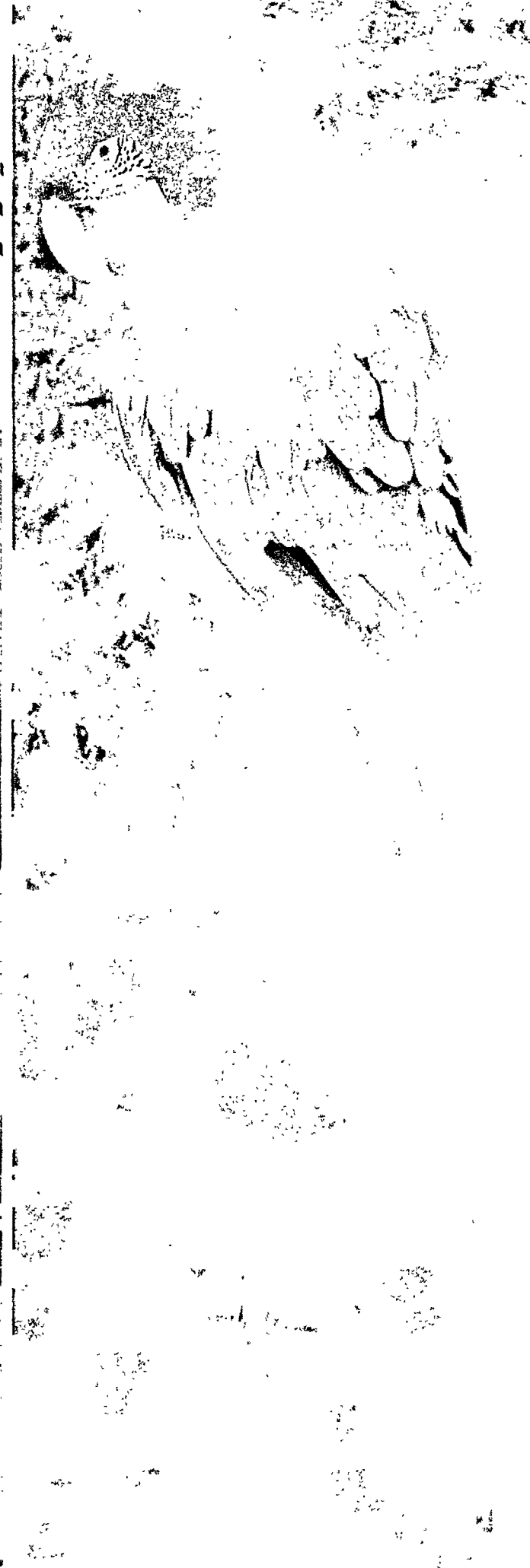
नीचे : लाल आंखों वाला वृक्षवासी मेंढक फोटोग्राफर को घूर रहा है।

दायें : अफ्रीकी शेर धूप सेंकते हुए।

सबसे नीचे : ध्रुव प्रदेश के भालू बर्फ के विशाल द्वीपों (टीलों) पर ठण्ड का आनन्द ले रहे हैं।

सतर्कता से सिर उठाये एक शुतुरमुर्ग।

'अपने शिल्प के प्रति न्याय ही मेरी प्रतिबद्धता है'

इसी प्रतिबद्धता से उत्प्रेरित होकर, खुशवन्त सिंह ने 'इलस्ट्रेटेड वीकली' को आज भारत की सर्वाधिक सजीव, आकर्षक और विवादास्पद पत्रिकाओं की पंक्ति में प्रतिष्ठित कर दिया है। यहां, 'चयनिका' के प्रश्नों का उत्तर देने में उन्होंने अपनी चिरपरिचित उन्मुक्त स्पष्टवादिता का परिचय दिया है, और इस बात का विश्लेषण किया है कि भारत की पत्रिकाओं पर अमेरिका का क्या प्रभाव पड़ा है।

Also: The TV Story

प्रश्न : आपकी राय में, आज भारत के जीवन में सामान्यतः सभी पत्रिकाओं की, और विशेषकर **'इलस्ट्रेटेड वीकली'** की, भूमिका क्या है?

उत्तर : मेरी दृष्टि में, पत्रिकाओं को चाहिये कि वे अपने पाठकों को शिक्षित करें, उनका मनोरंजन करें और उन्हें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में सोचने के लिए उत्तेजना दें। **'वीकली'** का प्रचलन देश की पत्रिकाओं में सबसे अधिक है, लेकिन मैं इसे अनावश्यक महत्व नहीं देना चाहता। अनेक अन्य पत्रिकाओं की भांति ही, यह भी एक शहरी बोध का लक्षण है। इसकी पहुंच उन्हीं लोगों तक है, जो अंग्रेजी पढ़ते हैं और कुल जनसंख्या में जिनका प्रतिशत दो से भी कम है।

मैं इस बात को नहीं मानता कि पत्रिकाओं को उपदेश देने या विचार-परिवर्तन का माध्यम बनाया जाना चाहिये। आइये, इस बात को

थोड़ा और स्पष्ट कर दें। प्राय: प्रतिबद्धता की चर्चा की जाती है, जिस पर सामान्यत: वामपंथी अथवा स्वघोषित प्रगतिशील लोग, समाजवाद या साम्यवाद के लिए प्रतिबद्धता के रूप में, अपने एकाधिकार का दम भरते हैं। मेरी ऐसी कोई प्रतिबद्धता नहीं है। मैं पूर्णत: अराजनीतिक हूं। लेकिन, मेरी भी अपनी एक प्रतिबद्धता है, जो एक अन्य प्रकार की है—मेरी प्रतिबद्धता अपने शिल्प के प्रति है, वास्तविकता के प्रति है। इसीलिए, जब मैं साम्यवादी प्रणाली की प्रशंसा में किसी साम्यवादी का लेख छापता हूं, तो मैं स्वतन्त्र पार्टी के दृष्टिकोण की प्रशंसा में उस पार्टी के नेता का भी लेख देता हूं। और, यदि मैं सोवियत संघ पर लेख देता हूं, तो अमेरिका के लिए भी स्थान रखता हूं।

प्रश्न : इससे हम एक-दूसरे विषय पर पहुंचते हैं, जिसके बारे में आज हम आपसे कुछ जानना चाहते हैं। क्या भारतीय पत्रिकाओं पर कोई उल्लेखनीय अमेरिकी प्रभाव है?

उत्तर : हां, है। वास्तव में, मेरी राय में यह प्रभाव बहुत कुछ स्पष्ट है और रहा है—न केवल सामग्री-संयोजन की दृष्टि से, वरन् प्रस्तुतीकरण और शैली की दृष्टि से भी। अमेरिकी पत्रिकाओं के हूबहू भारतीय प्रतिरूप, जिन्हें कार्बन कापी भी कहा जा सकता है, सबने देखे हैं। लेकिन यहां उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। मेरी राय में **'टाइम'** और **'न्यूजवीक'** की भाषा भारतीय पत्रिकाओं की भाषा पर हावी है—चुस्त पदावली, विशेषणों से लदा, कसा हुआ वाक्य।

प्रश्न : 'वीकली' के सम्पादक के रूप में आप कितने प्रभावित हुए हैं?

उत्तर : जिस समय मुझसे सम्पादक पद स्वीकार करने का प्रस्ताव किया गया, उस समय मैं पेन्सिल्वैनिया के स्वार्थमोर कालेज में शिक्षक था—मेरा विषय था : 'समकालीन भारत'। और, जब मैंने प्रस्ताव स्वीकार करने का निर्णय कर लिया, तब मैंने बड़ी तत्परता से अमेरिकी पत्रिकाओं का अध्ययन करने का प्रयत्न किया। तुरन्त ही, **'लाइफ'** पत्रिका सहज रूप से मेरा आदर्श बन गयी।

प्रश्न : 'लाइफ' ही क्यों?

उत्तर : क्योंकि **'लाइफ'** असंदिग्ध रूप से अंग्रेजी-भाषी संसार की अपनी श्रेणी की सबसे महान् पत्रिका थी। उसे बन्द होते देख कर मुझे बहुत दु:ख हुआ। छायाचित्रों के माध्यम से विचार-सम्प्रेषण की कला जिस ऊंचाई का स्पर्श **'लाइफ'** में कर सकी, उतनी कहीं अन्यत्र नहीं कर सकी। वस्तुत:, उसमें सब कुछ रहता था—सर्वोत्कृष्ट छायाचित्रण, समाचार, राजनीति, संस्कृति, यहां तक कि घोटालों का भी उत्तेजक मिश्रण। फिर भी, वह संवाद और ईमानदारी का एक विशिष्ट प्रकार का स्तर कायम रखती थी। मैंने कई अन्य सफल विदेशी पत्रिकाओं पर भी विचार किया—जैसे **'पेरिस मैच'**, **'स्काला'**, **'डेर स्पीगल'**। लेकिन **'लाइफ'** असंदिग्ध रूप से सर्वोत्तम थी।

प्रश्न : 'लाइफ' के विश्लेषण का क्या परिणाम निकला?

उत्तर : मेरी लाख टके की खोज **'लाइफ'** की यह विशेषता थी कि वह अमेरिकियों को अपने देश के बारे में जानकारी देती है। अत:, **'वीकली'** में सबसे पहले मैंने जो नयी बातें प्रारम्भ कीं, उनमें देश के विभिन्न समुदायों, जातियों और उपजातियों पर लेखमाला प्रकाशित करना भी शामिल था। भारत, वास्तव में, एक देश नहीं, बल्कि एक महाद्वीप है। और, हम एक-दूसरे के बारे में इतना कम जानते हैं कि भारतवासियों को यह जानकारी देना कि उनके संगी-साथी कौन हैं, वास्तव में उपयोगी होगा। मेरी राय में, इससे लोगों को यह बोध होगा कि वे एक-दूसरे के कितने समीप हैं—जितना वे सोचते हैं, उससे भी कहीं अधिक। शायद आपको ज्ञात हो, इस लेखमाला से अविश्वसनीय लाभ प्राप्त हुए। जिस समय मैं सम्पादक होकर आया था, उस समय **'वीकली'** की ग्राहक-संख्या ७५,००० थी। आज वह ३,००,००० है; और जैसा कि मुझे बताया गया है, इसका अर्थ यह है कि इसे ५० लाख से अधिक लोग पढ़ते हैं।

प्रश्न : क्या **'लाइफ'** के सिवाय, दूसरे नमूने भी आपके सामने थे?

उत्तर : हां, थे। मैंने अपने काम के प्रति एक ऐसा दृष्टिकोण अपनाया, जिसे आप गद्यात्मक रवैया कह सकते हैं। मैंने **'रीडर्स डायजेस्ट'** की अपूर्व सफलता का विश्लेषण किया, जिससे कई विशेषताएं देखने को मिलीं। पहली चीज थी प्रस्तुतीकरण—मैंने गौर किया कि उसमें दृष्टान्त और उपाख्यान देने की शैली कितनी बार और कितनी सफलता के साथ अपनायी गयी है। आज, जब मैं लोगों से **'वीकली'** के लिए लिखने को कहता हूं, तो अक्सर उन्हें यह सुझाव देता हूं : "कृपया **'रीडर्स डायजेस्ट'** की शैली अपनायें।"

एक अन्य विशेषता, जिसकी ओर मेरा ध्यान गया, इस पत्रिका की संक्षेपण-क्षमता थी। इससे मेरा तात्पर्य यह है कि कोई भी विषय, चाहे वह कितना ही दुर्बोध क्यों न हो, दो-तीन ऐसे पैराग्राफों में प्रस्तुत किया जा सकता है, जिनसे उसे आसानी से समझा जा सकता है। अतिसरलीकरण? इसके विपरीत, मेरी राय में यह अच्छा ही है। आखिर, पत्रिका का लक्ष्य विचार-सम्प्रेषण ही तो होता है—और, **'रीडर्स डायजेस्ट'** की सफलता का रहस्य उसकी सम्प्रेषण-क्षमता है।

मैंने **'डायजेस्ट'** के विषय-संयोजन का भी विश्लेषण किया। इसमें वामपन्थ-विरोधी प्रचार का नियतांश तो होता ही है। लेकिन उसमें प्रतिष्ठित संस्थाओं, जैसे मसीही चर्च, प्रकृति की प्रशंसा और संरक्षण तथा वैवाहिक सम्बन्ध की पवित्रता, के समर्थन में भी नियमित रूप से लेख होते हैं। अन्तिम विषय (वैवाहिक सम्बन्ध की पवित्रता) पर तो मुझे लगता है कि हर अंक में अमेरिकी पुरुष के लिए एक संदेश होता है—यह आश्वासन होता है कि जब तक वह एक-पत्नीवाद की परिधि के बाहर पांव नहीं रखेगा, तब तक अपना पुंसत्व नहीं खोयेगा।

प्रश्न : क्या आप **'वीकली'** में ऐसी कुछ विशेषताएं समाहित कर सके हैं?

उत्तर : प्रश्न वास्तव में इस प्रणाली को भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने का है। उदाहरण के लिए, मैं जानता हूं कि भारतीय लोग धर्म में, और सामान्यत: आध्यात्मिक विषयों में, बहुत रस लेते हैं। इसलिए, मैं अक्सर धर्म के विभिन्न पक्षों, विभिन्न धार्मिक नेताओं, आदि के बारे में विशेष लेख देता रहता हूं। इसके अलावा, यद्यपि निजी तौर पर ज्योतिष मेरी बर्दाश्त के बाहर है, फिर भी फलित ज्योतिष का नियमित स्तम्भ रहता है। मगर मुझे ऐसा नहीं लगता कि इस मामले में मेरी ईमानदारी पर कहीं जरा-सी भी जांच आ रही है।

प्रश्न : क्या **'रीडर्स डायजेस्ट'** से और कोई लाभ हुआ?

उत्तर : तथ्यों को सही रूप में ही प्रस्तुत करना—यह एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें मेरे विचार से **'डायजेस्ट'** सबसे आगे है। **'वीकली'** में हमने इसका अनुसरण करने की कोशिश की है—हम अपने तथ्यों को बारबार जांचते हैं। मैं **'वीकली'** के हर अंक को एक प्रकार से संदर्भ-अंक बनाने की कोशिश में रहता हूं, जिससे लोग उसका संग्रह करने के लिए उत्सुक रहें।

तालिकाएं देने का विचार मैंने **'टाइम'** से ग्रहण किया। इसीलिए, हम अनेक तालिकाएं, ग्राफ और रेखांकन देते हैं, और इसीलिए, हमारे लेखों में आंकड़ों की भरमार होती है। और,

मैं समझता हूं कि यह सही रास्ता है। इसका हमें प्रमाण भी मिल चुका है। उदाहरण के लिए, जब **'इलस्ट्रेटेड वीकली'** ने अपना पहला वार्षिक अंक, 'भारत के लोग', निकाला तो उसकी सभी ३५,००० प्रतियां पहले ही दिन बिक गयीं—और ६०,००० प्रतियों की मांग पूरी नहीं हो पायी।

एक और बात है, जो मैंने **'टाइम'** पत्रिका से सीखी—प्रतिकूल, यहां तक कि गाली-भरे, पत्र छापने की परम्परा। मेरे पास बहुत-सी डाक आती है, कोई १०० पत्र प्रतिदिन, जिनमें से १० प्रतिशत मुझे व्यक्तिगत रूप से बहुत नागवार गुजरते हैं। फिर भी, इन्हें प्रकाशित करने की ओर मैं विशेष ध्यान देता हूं—उन शेष पत्रों की ओर नहीं, जिनमें मेरी प्रशंसा ही प्रशंसा होती है। बहुत-से पत्र **'वीकली'** में छपे चित्रों पर—जैसे अल्पवसन अथवा निर्वसन हिप्पियों या उन प्रदर्शनकारियों के चित्रों पर, जो नग्न प्रदर्शन करते हैं—टीका-टिप्पणी करते हैं। यह तो युक्तिसंगत बात है : लोग जैसा करते हैं, वैसा हम छाप देते हैं; अगर लोग इसे पसन्द करते हैं, तो यह उनकी अपनी पसन्द है; और अगर वे इसे नापसन्द करते हैं और मेरी आलोचना करते हैं, तो उसे मैं ओढ़ लेता हूं।

प्रश्न : जब से आप **'वीकली'** के सम्पादक हुए हैं, तब से यही आलोचना अक्सर सुनने में आती है कि अब यौन विषय (सेक्स) पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जा रहा है। इसके बारे में आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

उत्तर : आप ठीक कह रहे हैं। मैं इस आलोचना से अच्छी तरह परिचित हूं। और, यह बात सही है कि **'वीकली'** में पहले से अधिक सेक्स है। लेकिन यह इसलिए है कि मैं लोगों को बंधन-मुक्त करना चाहता हूं, स्वतन्त्र बनाना चाहता हूं, कुंठाओं को त्यागने में उनका सहायक होना चाहता हूं। देश में हर जगह कामोद्दीपक मूर्त्तियां हैं; पश्चिम के सामने उनका हम गर्व से प्रदर्शन करते हैं। लेकिन यदि आप बिकिनी पहने लड़की का एक भी चित्र छाप दें, तो लोग शोर मचाने लगते हैं। अस्तु, लोग बराबर सेक्स सम्बन्धी दृष्टिकोण की ही चर्चा करते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि मैंने कई अन्य दृष्टियों से भी **'वीकली'** को विवाद का विषय बनाया है—ये पहलू हैं : सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक।

प्रश्न : आपने अमेरिकी पत्रिकाओं की कई खूबियां बतायीं, पर क्या उनमें आलोचना के योग्य कुछ नहीं है ?

उत्तर : है क्यों नहीं। उनमें से कितनों ही में, राजनीतिक छलकपट की झलक मिलती है। मैंने अभी जिन पत्रिकाओं के नाम गिनाये हैं, उन्हीं में से किसी एक को ले लीजिये। पहले उसके प्रत्येक अंक में कम-से-कम एक चीन-विरोधी लेख अवश्य होता था। राजनीतिक सम्बन्धों में अनुकूलता आते ही, अचानक, सारा दृष्टिकोण बदल गया। अब सूचीवेधन शैल्यक्रिया (अकुपंक्चर) की विशेषताओं को आसमान पर चढ़ाया जा रहा है; चीनी विवेक और वाक्-चातुर्य के उदाहरण और माओ के विचार छापे जा रहे हैं। और इसी तरह की दूसरी सारी बातें हो रही हैं।

अमेरिकी पत्रिकाएं और भी कई संदिग्ध तौर-तरीके अपनाती हैं, लेकिन वे इतने गम्भीर नहीं हैं। जैसे **'टाइम'** लोगों की गलत तस्वीर पेश करने वाले छायाचित्र छापता है। लेकिन, हमारे-आपके बीच की बात है—इस मामले में मैं खुद भी अपराधी हूं।

प्रश्न : आप तो स्वयं अमेरिकी पत्रिकाओं में लिखते हैं, है न ?

उत्तर : हां, **'न्यूयार्क टाइम्स मैगजीन'** के लिए मैं बहुत-कुछ नियमित रूप से लिखता हूं। **'हार्पर्स'** और **'एवरग्रीन रिव्यू'** के लिए भी कभी-कभी लिखता हूं। अमेरिकी पत्रिकाओं की आवश्यकताएं कितनी विविध हैं, यह अपने-आप में एक दिलचस्प कहानी है। उनके लेखों की लम्बाई को ही ले लीजिये—उतने लम्बे लेख छापने के लिए हमारे पास कागज ही नहीं होता।

प्रश्न : क्या आपको ऐसा लगता है कि अमेरिकी पत्रिकाओं का प्रकाशन एक नाजुक दौर में पहुंच गया है ?

उत्तर : मैं समझता हूं कि वह ऐसे दौर में सचमुच पहुंच गया है—विशेष कर **'लाइफ'** और दूसरी तड़क-भड़क वाली पत्रिकाओं के बंद होने के बाद से। अमेरिका का समूचा पत्रिका-जगत एक प्रकार से चौराहे पर पहुंच गया है। एक चीज जो मेरा ध्यान आकृष्ट करती है, वह है हमारी और उनकी स्थिति का अन्तर। देखिये न, न्यूयार्क शहर में केवल दो बड़े दैनिक हैं, जबकि बम्बई में १२ हैं। दिल्ली में १५, बल्कि इससे भी अधिक! अमेरिका में टेलिविजन जबर्दस्त चुनौती दे रहा है—वह विज्ञापनों को खींचे ले रहा है। किन्तु, कुछ भी हो, यह स्थिति हम भारतवासियों से अभी बहुत दूर है।

कई अन्य मामलों में कोई तुलना ही नहीं है। उदाहरण के लिए, पारिश्रमिक की दर को ही ले लीजिये। यदि मैं **'न्यूयार्क टाइम्स मैगजीन'** के लिए अधिक लिखूं, तो मुझे बहुत कमाई हो सकती है। लेकिन **'वीकली'** में अधिक आनन्द है। मुझे यहां अधिक श्रेय मिल रहा है। और, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मैं यहां सर्वेसर्वा हूं। रत्ती भर भी हस्तक्षेप नहीं है। एक बार क्या हुआ, यह भी सुन लीजिये। एक आयोजन में एक युवक मेरे पास आकर उन सुधारों के लिए मेरी प्रशंसा करने लगा, जो मैंने **'वीकली'** में किये हैं। इस तरह की स्थितियों का मैं आदी हूं, फिर भी, मैंने बहुत सहज ढंग से उसका नाम पूछ लिया। मुझे यह जानकर थोड़ा आश्चर्य हुआ कि वह व्यक्ति **'टाइम्स ऑव् इण्डिया'** प्रकाशन-समूह के निदेशक-मण्डल का सदस्य था। प्रबन्धकों की ओर से मुझे इतनी आजादी है कि उन्हें कुछ जानने की आवश्यकता ही नहीं रह गयी है।

अपने काम में मुझे आनन्द आता है। इसका एक कारण वे आनुषंगिक लाभ हैं, जो सम्पादक को मिलते हैं। यहां मुझे कुछ वर्ष पहले की एक घटना याद आ रही है। दिल्ली के अनेक अन्य लेखकों और सम्पादकों की तरह मुझे भी क्रिसमस पर कभी-कभी ह्विस्की की बोतल मिल जाया करती थी। एक बार मैंने सोचा कि इसमें बढ़ोतरी की जाय। इसलिए मैंने अपनी सबसे नयी पेपरबैक पुस्तक को खूबसूरत कागज में लपेट कर उपहारस्वरूप कई राजदूतों को भेज दी। यह उपहार मौका देख कर क्रिसमस से कुछ पहले ही भेजा गया था। शीघ्र ही, राजदूत गैलब्रेथ और उनकी पत्नी की ओर से मद्यपान का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। उत्सुकतापूर्वक मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा। पार्टी में इधर-उधर की बातें होती रहीं, और अन्त में, विदा होने का समय आ गया। जब हम लोग जाने ही वाले थे, श्री गैलब्रेथ ने कहा : "जरा ठहरिये, आपके लिए कुछ है।" और अन्दर चले गये। "अहा!" मैं मन-ही-मन खिल उठा : "यह आया ह्विस्की का क्रेट।" इतने में, श्री गैलब्रेथ लौटे। उनके हाथ में उपहारस्वरूप उनकी नवीनतम पुस्तक थी! ■■

जॉन अपडाइक

रिचर्ड लॉक

लेखक ने उन आलोचकों का प्रतिवाद किया है, जिनकी धारणा यह है कि अपडाइक एक कुशल शब्द-शिल्पी होने के बावजूद, इतने 'मूल्यवान' हैं कि एक गम्भीर उपन्यासकार नहीं हो सकते। उसने सम्यक् विश्लेषण एवं तर्कसंगत आधार पर यह सिद्ध किया है कि अपडाइक, कुछ तो अपने आश्चर्यजनक लेखन-परिमाण के आधार पर तथा कुछ अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के कारण, निस्सन्देह, एक महान् जीवित अमेरिकी लेखक हैं।

लेखक के विषय में : रिचर्ड लॉक **'न्यूयार्क टाइम्स बुक रिव्यू'** के एक सम्पादक हैं। वह विशेष रूप से कथा-साहित्य, चल-चित्र और मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों की समीक्षा करते हैं।

सन् १९३९ में, टामस मैन ने अपने भाई को एक प्रशंसा-पत्र भेजा। उसमें उन्होंने लिखा कि हाइनरिक का नया उपन्यास "प्रेम, कला, स्पष्टवादिता, स्वतन्त्रता, विवेक और दयालुता की दृष्टि से एक महान् रचना है; यह बुद्धि-विचक्षणता, वाक्-विदग्धता, कल्पना और अनुभूति से अत्यन्त समृद्ध—एक महान् और सुन्दर कृति है; यह तुम्हारे जीवन और तुम्हारे व्यक्तित्व का संश्लेषण और सारांश है।" यद्यपि इस कथन में विरस चाटुकारिता की गन्ध मिलती है, और यह हाइनरिक की ऐसी पुस्तक के विषय में, जो विस्मृति के क्रोड़ में कभी की लुप्त हो चुकी है, प्रथम उत्साहावेग में व्यक्त उद्गार मात्र है, फिर भी, जान अपडाइक के नवीनतम उपन्यास, 'रैबिट रिडक्स', को पढ़ने के बाद, मन में आता है कि इसी अतिशयोक्ति का प्रयोग करें। मैन आगे लिखते हैं : "कहना ही पड़ेगा कि ऐसा विकास—स्थैतिक का प्रवैगिक में ऐसा रूपान्तरण, ऐसी लगन और ऐसी सफल उपलब्धि—यूरोप की ही अपनी विशिष्टता है। यहां, अमेरिका में, तो लेखक अल्पजीवी होते हैं; वे एक अच्छी सी पुस्तक लिख लेते हैं, फिर दो घटिया पुस्तकें लिख डालते हैं, और उसके बाद चुक जाते हैं।"

इस उक्ति में सत्यांश तो है, परन्तु एक मंजी हुई कपटभद्रता भी है। इसमें सन्देह नहीं कि अमेरिकी लेखक पहले बिजली की तरह कौंधते हैं, फिर राख की तरह बुझ जाते हैं। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त, हमारे यहां के जिन उपन्यासकारों का ऐसा अन्त हुआ है, उनकी संख्या बहुत बड़ी है : जे० डी० सैलिंगर और जोज़ेफ हेलर—ये दो नाम तो मानस-पटल पर तत्काल उभर आते हैं। ये दोनों लेखक सृजन में एक-दूसरे से कितने भिन्न हैं, परन्तु असफलता में कितने समान! जॉन अपडाइक इस बात को अच्छी तरह जानते हैं : नबोकोव पर लिखे एक निबन्ध में उन्होंने कहा था कि यह उत्प्रवासी रूसी ही अमेरिका में एकमात्र ऐसा लेखक है, "जिसकी पुस्तकें, बशर्ते उन पर समग्र रूप से विचार किया जाय, हमारे मन पर यह सुखद छाप छोड़ती हैं कि उनके प्रणयन में लेखक ने घोर श्रम किया है; कि अनेक शैलियों का प्रयोग कर उसने अपना तारतम्यपूर्ण कृतित्व उत्तरोत्तर विकसित किया है। इन पुस्तकों में जहां लेखक के ठोस व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य प्रतिबिम्बित हुआ है, वहीं उनमें लेखक ने अपनी प्रभूत प्रतिभा को सप्रयास निखारा भी है। उसकी कृतियां एक ऐसे प्रासाद के सदृश हैं, जिसके हर प्रकोष्ठ, हर कोने, को देख कर सुख मिलता है। प्रत्येक पुस्तक. . .आनन्द देती है और पाठक की सौन्दर्य-भावना के समक्ष ऐसी परिपक्व वस्तु के रूप में प्रस्तुत होती है, जो सुष्ठुता से निष्पन्न तथा सोद्देश्य है।"

परन्तु, लेखन-वृत्ति के इस उच्च मानदण्ड को सामने रखें, तो क्या कुछ ऐसे समसामयिक अमेरिकी लेखक मिलते हैं, जो दृढ़ संकल्प के साथ विशिष्ट कोटि के साहित्य का सृजन कर रहे हों—जिन्होंने केवल एक या दो पुस्तकें लिख कर ही बस न कर दी हो, वरन् एक-से-एक बढ़ कर, कम-से-कम चार, पूरी-बड़ी पुस्तकें लिख डाली हों? गत एक या दो दशक में, अमेरिकी जीवन में जैसी असंगति और जैसी अस्थिरता दिखायी पड़ी है, उसकी सम्यक् अनुभूति हमारे कितने उपन्यासकारों को हुई है? कितनों ने उसको समर्थ अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा की है? कौन-से हैं वे लेखक, जिनकी ओर यह जानने के लिए हम उन्मुख हो सकते हैं कि हम कहां हैं और क्या अनुभव कर रहे हैं? कितने लेखक हैं, जो तथ्यों का निष्पक्ष, पूर्वाग्रहरहित, विवरण हम तक पहुंचा सकते हैं? मेरी विनम्र सम्मति में ऐसे लेखक पांच हैं : सॉल बेलो, नॉर्मन मेलर, बर्नर्ड मलामुद, फिलिप रॉथ—और स्वयं जॉन अपडाइक।

'रैबिट, रन' असन्दिग्ध रूप से जॉन अपडाइक का सर्वाधिक सफल उपन्यास है। किन्तु, उसके नायक, हैरी 'रैबिट' ऐंगस्ट्राम, की ओर तब, जबकि उसकी आयु १० वर्ष बढ़ चुकी होती है, आश्चर्यजनक रूप से वापस लौट कर, वह (**'रैबिट रिडक्स'** में) उसे १९६० वाले दशाब्द के अन्तिम भाग के ऐसे वात्याचक्र में ला पटकते हैं, जहां वह यौन-भावना, पितृत्व, विवाह, मादक

द्रव्यों, वियतनाम-युद्ध, अश्वेतों की समस्या और मानव की चन्द्र-यात्रा जैसी परिस्थितियों से निपटने की चेष्टा करता है। कहना पड़ेगा कि इस परिवेश को लेकर लिखित उपन्यासों में **'रैबिट रिडक्स'** सर्वोत्तम है।

निस्सन्देह, अपडाइक की प्रशंसा इन शब्दों में करना, उनको उपर्युक्त अन्य चार लेखकों की श्रेणी में रखना, या तो एक अन्याय है या एक निर्विवाद सत्य—किसकी दृष्टि में क्या है, यह इस पर निर्भर करता है कि इस प्रशस्ति का श्रोता कौन है। अपडाइक ने लेखक के रूप में अपने जीवन का आरम्भ १९५० के दशाब्द के मध्य में **'न्यूयार्कर'** पत्रिका के माध्यम से किया। उनकी रचनाओं ने शीघ्र ही उन्हें पाठकों का लाड़ला बना दिया। १९६२ तक, ३० वर्ष की आयु होते-होते, उनके दो उपन्यास, दो कहानी-संग्रह, एक बाल-पुस्तक और हल्की-फुल्की कविताओं का एक संकलन प्रकाशित हो चुके थे। **'सैटर्डे रिव्यू'** में ग्रैनविल से लेकर, पेरिस में मेरी मैकार्थी और **'दि न्यू लीडर'** में एडगर हाइमन तक, सभी की दृष्टि में ऐसा लगता था कि अपडाइक प्रायः प्रत्येक पाठक के प्रिय, सर्वश्रेष्ठ तरुण अमेरिकी लेखक, बन गये हैं। परन्तु, उस समय भी कुछ आशंकाएं प्रकट की गयी थीं। इस सम्बन्ध में, पहली शिष्ट टिप्पणी की मेल्विन मैडाक्स ने, जो कुछ ही वर्षों में आलोचनात्मक भर्त्सना का तराना बन गयी। मैडाक्स ने लिखा था : "अत्यन्त सूक्ष्म मनोवेगों को व्यक्त करने के लिए असीम सतर्कता बरती गयी है। परन्तु, जब तात्विक भावनाओं को प्रतिमूर्त्त करने का समय आता है, तब लेखक की पकड़ ढीली पड़ जाती है; असमर्थता का संकोच उसे लगभग जकड़ लेता है और वह अलंकृत भाषा के जाल में उलझ जाता है; तथा उसकी अनुभूतियां सौन्दर्यात्मक उद्वेग मात्र बन कर रह जाती हैं।"

जब अपडाइक का तीसरा उपन्यास, **'दि सेन्टौर'**, १९६३ में प्रकाशित हुआ, तब **'कमेण्ट्री'** के सम्पादक, नार्मन पोधोरेत्ज, ने उनको इन शब्दों में चाबुक लगाया : अपडाइक अनुभवशून्य, भावुक, निष्ठुर और अपरिपक्व है; वह यौन भावना का चित्रण निस्संकोच रूप से करता है और इसे युग की रीति मानता है; वह विषय-वस्तु की कमी को ढकने के लिए शाब्दिक चाकचक्य और मिथ्या गाम्भीर्य का प्रदर्शन करता है—"वह एक ऐसा लेखक है, जिसके पास कहने के लिए बहुत-थोड़ा है। उसकी प्रामाणिक संवेगात्मक परिधि इतनी संकीर्ण और क्षीण है कि उसके विषय में, बिना किसी अतिरंजना के, यह कहा जा सकता है कि युवकों में व्याप्त मतिभ्रम का चित्रण ही उसकी प्रिय वस्तु है; वह घूम-फिर कर उसी पर आ जाता है; उसके चित्रण में प्रगल्भता नहीं, बल्कि एक तरह की झिझक और भीरुता है।"

रही-सही कमी पूरी कर दी अल्फ्रेड काज़िन ने। उन्होंने फतवा दिया : "अमेरिकी उपन्यासकारों में, जान अपडाइक एक प्रतिभाशाली, बुद्धि-विचक्षण, व्यक्ति है।... मेरा तात्पर्य यह है कि वह एक ऐसा व्यक्ति है, जो वयस्कों के संसार का वर्णन तो कर सकता है, परन्तु उसके वर्णन में न तो गहराई होती है और न ही नयी ज़मीन तोड़ने की कोई कोशिश। वह पूर्णतः साहित्यिक है, अपनी प्रतिभा से चकाचौंध कर देने वाला। बच्चों की भांति उसमें चपलता है, त्वरा है; वह हर चीज को समझने और हर चीज का वर्णन करने के लिए तत्पर रहता है, क्योंकि ऐसा कोई विषय उसके लिए अरुचिकर नहीं, जिसे शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता हो।"

फिर भी, जब १९७० में अपडाइक ने एक काल्पनिक यहूदी लेखक, हेनरी बेच, के सम्बन्ध में कहानियों का अपना संग्रह प्रकाशित किया, तब समीक्षकों ने उसे सराहा था। यद्यपि कितनों ही ने क्षुद्रताओं के लिए अपडाइक की भर्त्सना की थी, फिर भी जब उन्होंने देखा कि जिस साहित्यिक संसार में वे रहते हैं तथा जिसे वे प्यार करते हैं, वही इस प्रकार की परिष्कृत व्यंग्योक्तियों का लक्ष्य बनने लगा है, तब उन्होंने इसे प्यार से अपने बाहुपाश में आबद्ध कर लिया। **'बेच'** अपडाइक की सर्वोत्तम पुस्तक घोषित कर दी गयी। अस्तु, प्रायः प्रत्येक व्यक्ति यह समझ गया कि अपडाइक के विरुद्ध आलोचना-अभियान बन्द कर दिया गया है। उनकी शैली का महत्व आंका गया, उनकी लेखनी के प्रवाह और उनकी आडम्बरपूर्ण शब्दावली को भी सराहा गया। उनके विषय में कहा गया कि जब कभी वह ग्रामीण पारिवारिक जीवन का चित्रण करते हैं, तब बहुत छोटे, हीन, जान पड़ते हैं। किन्तु, इसके अपवाद वह दिखायी देते हैं **'दि सेन्टौर'** में, जिसमें शब्दाडम्बरपूर्ण पौराणिक असंगतियां ठूंसने की चेष्टा की गयी है—यहां उनका कृतित्व अतीव विशाल है।

जो भी हो, कम-से-कम लोगों ने तो यही कहा। फिर भी, अपडाइक के पक्ष में, एक प्रबल तथ्य यह है कि गत १५ वर्षों में, जब से उन्होंने लेखनकार्य को अपना व्यवसाय बनाया, विविध विषयों पर उनके कितने ही छोटे-बड़े ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं; उनके कृतित्व के परिमाण और क्षेत्र-विस्तार को देख कर आश्चर्य होता है। इन रचनाओं को धड़ल्ले से बिकने वाले घासलेटी साहित्य का बुद्धिहीन भावावेग कह कर टाला नहीं जा सकता; न ही हम यह कह सकते हैं कि वे किसी शालीन 'उत्कृष्ट लेखक' के शुष्क बुद्धि-प्रवाह मात्र हैं। अपडाइक के साहित्य में तीन कविता-संकलन; पैरोडी काव्य, निबन्धों तथा पुस्तक-समीक्षाओं का एक बड़ा संग्रह; चार बाल-पुस्तकें; लघु कहानियों के चार संकलन; और छः उपन्यास शामिल हैं। निस्सन्देह, इस परिमाण को देख कर न तो अपडाइक के, और न ही हमारे, मन में ऐसा विचार आता है कि यह सारा सृजन नबोकोव के लेखन-श्रम के टक्कर की चीज है। परन्तु जब कोई व्यक्ति इन पुस्तकों को पढ़ता है, तब इनकी विषय-वस्तु एवं शैली सम्बन्धी विविधता तथा इनके ऊपर किये गये लेखकीय श्रम के कारण उसके हृदय में आदर की भावना जाग उठती है और वह इनके समीक्षात्मक विश्लेषण के लिए उत्प्रेरित हो जाता है। **'रैबिट रिडक्स'** के प्रकाशन के अनन्तर, लोगों को यह आवश्यक ज्ञान पड़ा कि अपडाइक के कृतित्व का पुनर्मूल्यांकन किया जाये।

अपडाइक के तीन काव्य-संकलनों—**'दि कारपेण्टर्ड हेन'** (१९५८), **'टेलीफोन पोल्स'** (१९६३) और **'मिडप्वाइण्ट'** (१९६९)—में, एक अकृत्रिम मोहकता तथा वाग्वैदग्ध्य की छटा दिखायी देती है। निस्सन्देह, ऐसी वाग्विदग्धता मिश्रित मान्यताओं और सामाजिक मूल्यों पर निर्भर करती है। कविताओं में एक तरह की बहक है और वे लौकिक शब्द-कौतुक मात्र बन कर रह गयी हैं। कुछ अधिक गम्भीर कविताएं भी हैं, जिनमें से एक है **'मिडप्वाइण्ट'**। इस कविता में विचार-गाम्भीर्य और आत्म-स्वीकारात्मक भावावेग हैं, जो औपचारिक कौशल की कंटीली बाड़ के पीछे धूमिल पड़ गये हैं—लेकिन, कुल मिलाकर, कविता छोटी है, चातुर्यपूर्ण है; उसमें एक पुराने ढंग की उत्कृष्ट कान्ति और गरिमा है। और, ये विशेषताएं उसमें हैं भी उतनी ही, जितनी सहज रूप से सम्भव हो सकती हैं।

'दि न्यूयार्कर' में प्रकाशित उनकी गद्यात्मक रचनाएं **'एसार्टेड प्रोज'** शीर्षक पुस्तक में संकलित हैं। यह पुस्तक १९६५ में प्रकाशित हुई थी। इसमें अधिक ठोस सामग्री है। आरम्भ में इसमें कुछ पैरोडियां (हास्यानुकृतियां) और **'टाक् ऑव् दि टाउन'** शीर्षक से कुछ रेखाचित्र दिये गये हैं। इनके विषय में, एक बार अपडाइक ने एक भेंट-वार्ता में कहा था : "यह एक कुतूहलपूर्ण और मनोरंजक काम था, जिसने मुझे शहर की राई-रत्ती से परिचित करा दिया। इस सिलसिले में, मैंने नौका-विहार किया, 'कोलिसियम' में इलेक्ट्रानिक प्रदर्शनी देखी, वहां की चीजों के बारे में प्रभाववादी कविताएं रचने की चेष्टा की और छिप-छिप कर लोगों की बातें सुनीं।" इसके बाद, **'हब फैन्स बिड किड ऐड्यू'** शीर्षक प्रसिद्ध निबन्ध आता है, जो टेड विलियम्स के अन्तिम बेसबाल खेल के विषय में है। क्रीड़ा-विषयक लेखन में, अपडाइक के निबन्ध की तुलना मेलर द्वारा पैटर्सन और लिस्टन के खेलों के विषय में लिखे गये लेखों से ही की जा सकती है।

परन्तु, **'एसार्टेड प्रोज'** का सबसे प्रभावशाली भाग है उसका अन्तिम खण्ड, जिसमें १७ पुस्तक-समीक्षाएं और साहित्यिक निबन्ध सम्मिलित हैं। इन समीक्षाओं को पढ़ने से, पुस्तक-समीक्षक के रूप में अपडाइक की बुद्धि और शिल्पगत कुशलता का तुरन्त पता चल जाता है। अपडाइक की रुचियों का क्षेत्र विस्तृत है; उनके गद्य में निखार और स्पष्टता है; उनमें वस्तु-संगठन तथा विषय-प्रतिपादन की प्रबल सामर्थ्य है।

कहानी-लेखक के रूप में, अपडाइक पाठकों के मन पर प्रायः उस आदमी जैसी छाप छोड़ते हैं, जो लम्बी दौड़ दौड़ने से पहले अपने अंगों को गरमा रहा होता है। आलोचना की दृष्टि से उनकी कहानियों की अपेक्षा उनके छः उपन्यास अधिक रोचक हैं। वे तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं : पहली श्रेणी में उनका पहला उपन्यास **'पूअरहाउस फेयर'** और पांचवां उपन्यास **'कपुल्स'** आते हैं—ये दोनों ही प्रबन्धात्मक उपन्यास हैं, और अपना कोई अच्छा प्रभाव नहीं छोड़ते। दूसरी श्रेणी में, उनके

क़हानी-लेखक के रूप में, 'अपडाइक उस व्यक्ति की छाप छोड़ते हैं, जो लम्बी दौड़ प्रारम्भ करने से पहले अपने अंगों को गरमा रहा होता है।' आलोचना की दृष्टि से, उनके उपन्यास अपेक्षाकृत अधिक रोचक हैं।

तीसरे उपन्यास, 'दि सेन्टौर', ग्रौर चौथे उपन्यास, **'ग्राव् दि फार्म'**, को रखा जा सकता है। ये दोनों ही उपन्यास ग्रपडाइक के परिवार के विषय में लिखे गये हैं; परन्तु, जैसा कि **'ग्रोलिंगर स्टोरीज़'** में हुग्रा है, इन दोनों की कथावस्तु एक होते हुए भी, इनमें ग्रप्रत्याशित ग्रौर ग्रत्यधिक भिन्न शैलियों तथा विधियों का प्रयोग हुग्रा है। ग्रन्तिम श्रेणी में, उनके शेष दो उपन्यास ग्राते हैं, जो सर्वाधिक सफल कहे जा सकते हैं—इन दोनों का नायक है 'रैबिट' ऐंगस्ट्राम नामक एक कल्पित चरित्र। उपन्यास-श्रृंखला में, **'रैबिट, रन'** ग्रपडाइक का दूसरा उपन्यास है, जबकि **'रैबिट रिडक्स'**, जो हाल ही में प्रकाशित हुग्रा है, छठां है।

'दि पूग्ररहाउस फेयर' (१९५९) ग्रौर **'कपुल्स'** (१९६८) दो प्रबन्धात्मक उपन्यास हैं, जो समाज, ईश्वर ग्रौर मनुष्य के विषय में एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए लिखे गये हैं। पृष्ठभूमि में, एक धार्मिक तार्किकता मंडराती रहती है, ग्रौर ग्रपडाइक परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया कर रहे व्यक्तियों के एक समूह पर—ग्रलग-ग्रलग व्यक्तियों पर नहीं—प्रकाश डालते हैं। मानव के ग्रावागमन के ऊपर काल्विन ग्रौर कार्ल बार्थ के ईश्वर का ग्रातंक छाया रहता है—वह ईश्वर नितान्त ग्रतीन्द्रिय, ग्रपौरुषेय, 'पूर्णत: ग्रन्य' है; वह ग्रपनी सृष्टि की उधेड़-बुन में संलिप्त है; ऋतुग्रों में परिवर्तन करता है; ग्रप्रत्याशित रूप से तुच्छ पुरस्कार बांटता है; ज्ञानप्रकाश ग्रौर ग्रनुग्रह प्रदान करता है। इस प्रकार, ग्रपडाइक का ध्यान मुख्यत: भू-दृश्यों, ऋतु-परिवर्तनों, भौतिक पदार्थों के बाह्य रूपों, तथा एक समाज की सामूहिक ग्रद्भुत कल्पनाग्रों एवं ग्रनुभूतियों की ग्रोर गया है। वह जटिल रूपकों द्वारा इन तत्वों को परस्पर सम्बद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। उनका लक्ष्य एक सुनिर्दिष्ट, सामान्यीकृत निर्वैयक्तिकता ग्रौर दूरी प्राप्त करना है। परन्तु, इस बात के कारण ही **'दि पूग्ररहाउस फेयर'** इतना संकीर्ण ग्रौर सजग बन गया है, जबकि **'कपुल्स'** ग्रपने पात्रों ग्रौर उनके क्रियाकलापों के मामले में शैतान की ग्रांत की तरह लम्बा ग्रौर भ्रामक हो गया है।

'दि पूग्ररहाउस फेयर' को चरित्रों, सम्वादों, दष्टिकोणों, ग्रतिव्याप्त ग्रनुभूतियों ग्रौर घटनाग्रों के द्वन्द्वों ग्रौर प्रतिक्रियाग्रों का एक छोटा 'बैले' कहा जा सकता है। मन्थर ग्रौर मन्द गति से यह ग्रौपन्यासिक प्रबन्ध ग्रपने-ग्राप को इस प्रकार रूपायित करता है: एक सौम्य, एकसत्तात्मक भावी ग्रमेरिका में, कुछ ग्रकिंचन वृद्ध जन एक सरकारी पूग्ररहाउस (निर्धन-निकेतन) के प्रांगण में टहल रहे हैं। वे 'पूग्ररहाउस' में रहते हैं ग्रौर हस्तशिल्प की कुछ वस्तुएं बनाते हैं। प्रतिवर्ष वे पड़ोस के सम्पन्न बुर्जुग्रा लोगों के ग्रामोद-प्रमोद के लिए उन वस्तुग्रों की प्रदर्शनी लगाते हैं। उन वृद्धों के हल्के-धीमे स्वरों के बीच से वाद-विवाद के तीखे स्वर उठने शुरू हो जाते हैं। एक ९४-वर्षीय धार्मिक, देशभक्त, वृद्ध ग्रौर 'पूग्ररहाउस' के प्रबन्धक के बीच विवाद छिड़ जाता है। वह वृद्ध व्यक्तिवादी युग का ग्रवशेष है ग्रौर प्रबन्धक धर्म-निरपेक्ष, सामाजिक, सुधार द्वारा धरती पर स्वर्ग लाये जाने के ग्रादर्श का पोषक। दोनों ग्रपने-ग्रपने पक्ष का समर्थन ग्रौर प्रतिपक्ष का खण्डन करते हैं, परन्तु पाठक को इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि लेखक की सहानुभूति किस पक्ष के साथ है। ग्रपडाइक प्रबन्धक के विचारों का स्पष्टत: विरोध करते जान पड़ते हैं। धार्मिक पृष्ठाधार के कारण गद्यशैली में निरन्तर प्रखरता ग्राती जाती है। पाठक के मन पर ऐसी छाप पड़ती है मानो कोई ग्रमित धैर्यशील मनीषा सुचिन्तित रूप से इस सूक्ष्म सृष्टि के ग्रंगीभूत एक-एक शब्द पर पच्चीकारी कर रही है।

तो भी, यदि **'पूग्ररहाउस फेयर'** में ग्रधिक कसावट है, तो उसके जोड़ीदार, **'कपुल्स'** में ग्रव्यवस्थित फैलाव है। इस उपन्यास में, ग्रपडाइक मैसाचूसेट्सके उपनगरीय इन्जिनियरों, दलालों, दन्त-चिकित्सकों, ठेकेदारों ग्रौर उनकी पत्नियों का वर्णन करते हैं। ये लोग 'ग्रानन्दवाद के युग में लौट जाने' के उद्देश्य से सप्ताहान्त में खेलों, दावतों ग्रौर व्यभिचार की ग्रानुष्ठानिक क्रीड़ाग्रों में संलिप्त रहते हैं, ग्रौर लाक्षणिक रूप से एक गिरजाघर का, 'रात को ग्राने न देने के लिए मुखियों के ऐन्द्रजालिक मण्डल का', संगठन कर लेते हैं। ग्रपडाइक पाठक को ग्रपने विस्तृत एवं सूक्ष्म वर्णन से दबा बैठते हैं; वह उपन्यास के चरित्रों ग्रौर उनकी भावनाग्रों को इस प्रकार मिश्रित कर देते हैं, ताकि साधारणीकरण सम्भव हो सके।

ग्रपडाइक के प्रबन्धात्मक उपन्यासों से भिन्न, उनके दो पारिवारिक उपन्यास, **'दि सेन्टौर'** (१९६३) ग्रौर **'ग्रॉव् दि फार्म'** (१९६५), ग्रत्यन्त पठनीय हैं, ग्रौर उनमें ग्रप्रत्याशित रूप से वैविध्य का संचार हुग्रा है। इनमें से पहला उपन्यास उनके पिता के विषय में है ग्रौर दूसरा एक काल्पनिक माता के विषय में।

यद्यपि ग्रब सामान्य रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि **'दि सेन्टौर'** एक ग्राडम्बरपूर्ण पौराणिक ग्रन्योक्ति-रूपक है, जो बचपन की एक छोटी-सी याद की नींव पर खड़ा किया गया है, तथापि इसमें वस्तुत: पेन्सिल्वैनिया के छोटे से कस्बे के हाईस्कूल के वातावरण का ग्रतिशय यथार्थ चित्रण हुग्रा है। निस्सन्देह, यह सजीव वर्णनों तथा स्पष्ट चरित्रांकनों से परिपूर्ण है, ग्रौर किसी भी दृष्टि से यह नहीं कहा जा सकता कि यह सारा-का-सारा उपन्यास पौराणिक शैली में लिखा गया है। इसमें कम-से-कम चार वर्णन-शैलियां ग्रपनायी गयी हैं: प्रथम, हाई स्कूल के एक ग्रध्यापक, जार्ज काल्डवेल, के जीवन के तीन दिनों में घटित घटनाग्रों का ग्रन्य पुरुष की शैली में यथार्थवादी वर्णन। द्वितीय, काल्डवेल के पुत्र द्वारा इन्हीं तीन दिनों के वृत्त का उत्तम पुरुष की शैली ग्रौर वर्तमानकाल के संक्षिप्त, सीमित, ढांचे में वर्णित यथार्थवादी संस्मरण (जो ऊपर से थोपा हुग्रा ग्रौर ग्रविश्वसनीय जान पड़ता है)। तृतीय, ग्रतीव ग्रलंकृत पौराणिक शैली, जिसमें सेन्टौर (नराश्व ग्रह) प्रेम की देवी वीनस (शुक्र ग्रह) से वार्तालाप करता है, या ग्रपने-ग्रापको झाड़ियों ग्रौर वृक्षों से भरी एक संकरी उपत्यका में पाता है। चतुर्थ, दुहरा प्रभाव डालने की एक प्रतिभाशाली शैली, जिसमें कल्पना ग्रौर यथार्थवाद को क्षिप्र ग्रति-यथार्थवादी समसामयिकता के साथ व्यक्त किया गया है, जिससे रचना में जेम्स ज्वायस की सी विशुद्ध जीवन्तता ग्रा गयी है। यह ग्रन्तिम शैली, पुस्तक के प्रथम ग्रध्याय में, ग्रपने सम्पूर्ण एवं सर्वोत्कृष्ट रूप में, प्रयुक्त हुई है, जिसकी परिणति हुई है ब्रह्माण्ड के इतिहास के विषय में छात्रों की कक्षा में दिये गये एक ग्राश्चर्यजनक ग्रोजस्वी व्याख्यान में। इस ग्रध्याय के विषय में, स्टैनले एडगर हाईमैन ने लिखा है: "**'यूलीसिस'** के नाइट टाउन सम्बन्धी दृश्य के लिखे जाने के बाद से, उपन्यास के क्षेत्र में किसी ग्रन्य कृति में इससे बढ़ कर कोई चीज लिखी गयी होगी, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।" निस्सन्देह, यह प्रशंसा ग्रति-रंजित है, परन्तु इसके पीछे जो भावना है, वह सर्वथा संगत है।

परन्तु, इस पुस्तक को महान् सफलता ग्रपडाइक की शिल्पीय सजीवता के रूप में नहीं ग्रांकी जा सकती। सफलता का वास्तविक मानदण्ड है पिता का—स्वयं सेन्टौर (नराश्व) का—व्यक्तित्व-चित्रण। महायुद्धोत्तरकालीन ग्रमेरिकी कथा-साहित्य में, सर्वव्यापी मन्दी के दिनों के भुक्तभोगी मनुष्य, मध्यवर्गीय ग्रमेरिकी, का इससे ग्रच्छा चित्रण ग्रन्यत्र नहीं हुग्रा है। वह चरित्र ग्रपने ऊपर तरस खाता-सा, उदार, भयाकुल, 'खुशामदी ग्रौर बेहूदा, लापरवाह ग्रौर हठीला', एक देहाती, ग्रायरिश-जर्मन प्रोटेस्टैन्ट, हरजोग, है जो एक जान-लेवा काम में एड़ी-चोटी का पसीना एक करके प्राणपण से जुटा हुग्रा है, जिसके कारण उसका प्रिय पुत्र, जार्ज कौल्डवेल, बराबर क्षुब्ध ग्रौर उद्विग्न रहता है। एक बार उसकी ग्रावाज को सुनकर उसे भुला पाना सम्भव नहीं है।

ग्रपडाइक का दूसरा पारिवारिक उपन्यास, **'ग्रॉव् दि फार्म'**, काफी छोटा (२०० से भी कम पृष्ठों का) है। १९६५ में जब यह प्रकाशित हुग्रा, तब ग्रालोचकों को ऐसा लगा कि "इसका वर्ण्य विषय कुछ भी नहीं है।" उपन्यास का नायक एक न्यूयार्कवासी ३५-वर्षीय व्यक्ति है, जो विज्ञापन-व्यवसाय में लगा हुग्रा है। वह ग्रपनी दूसरी पत्नी तथा उससे उत्पन्न लड़के के

साथ अपनी मां का कृषि-फार्म देखने जाता है। नायक की मां हाल ही में विधवा हुई है। वहां जाने पर, नायक सप्ताहान्त के अवकाश का उपयोग कर खेत की फसल काटता है, किराने का कुछ सामान खरीदता है और गिरजाघर जाता है। उसकी मां को हृदय-शूल का दौरा पड़ जाता है, अतः वह उसकी देखभाल भी करता है। उसके उपरान्त, वह अपनी पत्नी तथा बच्चे के साथ न्यूयार्क वापस आ जाता है। कथानक बस इतना ही है, परन्तु इस छोटे-से चौखटे में लेखक ने चारों पात्रों के बीच सगोत्र व्यभिचारमूलक पीड़क संघर्ष का चित्रण करते हुए एक पूर्ण उपन्यास लिख डाला है।

सुखान्त तथा मनोविश्लेषणात्मक अतिशयोक्ति से युक्त उपन्यास लिखने के बजाय, अपडाइक ने चेखव की शैली के प्रांजल यथार्थवाद को चुना है। वह माता और पुत्र के विगलित प्रेम को नाटकीय बना देते हैं। भयावह विश्वासघातों तथा यौन-विचलनों की कहानी सम्वादों के माध्यम से लगभग पूरी तरह कह दी जाती है।

'ऑव् दि फार्म' में, अपडाइक की शैली सुव्यवस्थित और अचूक है। परन्तु इस शैली के विषय में प्राप्त सम्मतियों में इससे बिल्कुल विपरीत बात कही गयी है। यह पुस्तक फ्लैनरी ओ'कोनोर की तरह ही छोटी है। अपने सीमित कलेवर के बावजूद, यह अमेरिका के श्रेष्ठतर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में एक है।

अपडाइक के **'रैबिट'** शृंखला के उपन्यास—**'रैबिट, रन'** और उसका उत्तरार्द्ध, **'रैबिट रिडक्स'**—उनके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। उनके प्रबन्धात्मक उपन्यास इसलिए असफल रहे, क्योंकि उनमें भावनात्मक आवेग का स्थान उनके संकल्प और उनकी मनीषा ने ले लिया था। जहां तक उनके आत्मकथात्मक पारिवारिक उपन्यासों का सम्बन्ध है, वे भावनात्मक आवेग से परिपूर्ण थे, किन्तु इस आवेग को सौन्दर्यात्मक नियन्त्रण में रखने के प्रयास में, **'दि सेन्टौर'** यदाकदा बहुत बड़ी और **'ऑव् दि फार्म'** बहुत छोटी छायाकृति बन गया। किन्तु, **'रैबिट'** उपन्यासों में, अपडाइक ने वर्तमान-कालिक क्रियापदों का प्रयोग किया है और ऐसे चरित्र-नायक का चयन किया है, जो उनके व्यक्तिगत अनुभव से असंपृक्त है। इसीलिए, इन उपन्यासों में वह उन अनुभूत्यात्मक आवेगों की लपेट में आने से बच गये हैं, जिनके कारण उनके अन्य उपन्यासों का गद्य अलंकारमय हो गया है और उनमें मनमानी गुत्थियां आ गयी हैं, अथवा विस्तार की समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं।

'रैबिट, रन' में, एक युवक मानसिक उत्तेजनावश पत्नी को छोड़ देता है और एक दूसरी स्त्री के साथ रहने लगता है। कुछ समय बाद, वह अपनी पत्नी के पास वापस चला जाता है, किन्तु एक बार फिर उसे छोड़ कर भाग खड़ा होता है। जब यह उपन्यास पहले-पहल प्रकाशित हुआ, तब रिचर्ड गिलमैन ने इसका सम्यक् विवेचन करते हुए लिखा : "एक स्तर पर, **'रैबिट, रन'** अमेरिकी जीवन पर एक विकृत अन्योक्ति है—उसमें सुख और सफलता विषयक अमेरिकी जीवन की कल्पित भ्रान्त मान्यताएं दी गयी हैं। उसमें अमेरिकी जीवन का भयावह भोलापन दर्शाया गया है और जीवन-मूल्यों तथा यथार्थ के बीच अमेरिका में पाये जाने वाले विरोध का, जिससे समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं हो पाता, चित्रण किया गया है। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह उस उद्विग्न अमेरिकी चेतना का एक लघु महाकाव्य है, जो आत्मसाक्षात्कार के लिए आतुर है, आत्मस्थ होना चाहती है और इस सबके लिए उपयुक्त अवकाश और स्थान की तलाश में विकल है—वह छिपती-छिपाती, चकमा देती, ऐसी प्रत्येक वस्तु की पहुंच से बाहर निकल जाना चाहती है, जो उसे धर-दबायेगी और हृदयहीन, जड़... कानूनों की सलीब पर, जिनको बनाने में उसका कोई हाथ नहीं रहा और जो उसकी समग्रता और निष्ठा का ध्यान नहीं रखते, कीलित कर देगी।"

'एस्क्वायर' पत्रिका में लिखते हुए, नॉर्मन मेलर ने अपडाइक के गद्य की बड़ी भर्त्सना की थी। किन्तु, उन्होंने भी यह स्वीकार किया था कि 'अपडाइक में परम्परागत उपन्यास का मर्म पहचान लेने की सहज वृत्ति विद्यमान है।' मेलर ने पुस्तक की भावनात्मक, और अन्ततः धार्मिक, तीव्रता को इन शब्दों में बड़ी कुशलता से व्यक्त किया था : "इस पुस्तक की उत्कृष्टता इस बात में निहित नहीं है कि इसमें चित्रित समस्या सीधी-सादी है। इसकी विशेषता, वस्तुतः, इस बात में निहित है कि अपनी शैली में साहित्य सम्बन्धी बाजारू नुस्खे अपनाने के बावजूद, अपडाइक एक ऐसे युवक के संत्रास को सम्प्रेषित करने में सफल हुए हैं, जो अपनी अमेरिकी आत्मा जैसी अमूल्य वस्तु खोना प्रारम्भ कर रहा है, फिर भी इसके लिए स्वयं दोषी नहीं है। उपन्यास की सप्राणता और ओजस्विता का मूल स्रोत यह सहज बोध है कि ब्रह्माण्ड हमारी नियति के ऊपर विस्तृत, विषण्ण, निराशामय आकाश की भांति झूल रहा है। और, यह बोध निश्चय ही उसी स्तर का है, जैसा टामस हार्डी के उपन्यासों में मिलता है। पुस्तक में वास्तविक पीड़ा है और है विस्मयजनक संत्रास का स्पर्श।"

जो विशेषता **'रैबिट, रन'** को इसके उत्तरार्द्ध, **'रैबिट रिडक्स'**, के प्रकाशित होने तक की अपडाइक की अन्य सभी कृतियों की तुलना में विशिष्ट बना देती है, वह यह है कि इसमें विवरण और वर्णन-क्षमता के बीच गतिशील सन्तुलन स्थापित करने की चेष्टा की गयी है : रैबिट जब एक परिस्थिति से बच कर दूसरी परिस्थिति के घेरे में पहुंचता है, तो उसके कदम कहीं डगमगाते दिखायी नहीं पड़ते, चाल कभी धीमी नहीं होती। और, फिर भी, इसमें भौतिक और मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म विवरणों पर जितनी प्रखरता से प्रकाश डाला गया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें १९५० वाले दशाब्द के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विवरण, जैसे निर्दर्शनीय मिक्की माउस का टेलिविजन पर प्रदर्शन; हाई स्कूल तक पढ़े फिल्म-नायकों के लिए अमेरिका भर में मोहक आकर्षण; छोटे-छोटे कस्बों में कम उम्र में ही विवाहित प्रियतमाओं की तंग-ठंसी कोठरियां; व्यायाम-प्रशिक्षकों और अभिभावकों का पावन अलंघनीय प्रभुत्व, आदि पूरी सजधज के साथ विद्यमान हैं।

परन्तु, सत्याभास अधिक सतही नहीं है। अपडाइक पारिवारिक जीवन की आकांक्षाओं और निष्फलताओं को; प्रेम, कोमलता, आक्रामकता और आत्माभिमानयुक्त वासना की क्रिया-प्रतिक्रिया को; और एक वर्ग से दूसरे वर्ग और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के बीच भावना और वाणी के स्तर पर आ जाने वाले अन्तर को अत्यन्त सूक्ष्मता और स्पष्टता से सम्प्रेषित करते हैं। उनका गद्य सर्वत्र गरिमामय और सशक्त है। वर्तमानकालिक क्रियापदों ने इसको नाटकीय तात्कालिकता प्रदान की है, और फिर भी, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अर्थवत्ता इसमें त्वरित गति से प्रवहमान है। रैबिट की पत्नी, उसकी प्रेमिका, रैबिट के आचरण का समर्थन न करने वाले माता-पिता, उसके पुराने व्यायाम-प्रशिक्षक, एक अत्याधुनिक विचारों वाले ईसाई पादरी और उनकी धर्मपत्नी तथा रैबिट के दोनों छोटे बच्चों का चरित्रांकन बड़ी कुशलता से किया गया है। रैबिट भंवर में फंस गया है—एक प्रकार से वह 'जोब' के विपरीत चरित्र वाला व्यक्ति है, जो 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' के सिद्धान्त को किसी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहता, अथवा 'मादाम बोवारी' का पुरुष प्रतिरूप है, जो आत्महत्या करने के बजाय, केवल पलायन कर जाता है।

इस प्रकार, **'रैबिट, रन'** की मूल विषय-वस्तु है सभ्यता और उसके कारण मानव-समाज में उत्पन्न असंतोष। व्यक्ति और समाज की परस्पर विरोधी मांगें हैं, अपेक्षाएं हैं। सभ्यता की मांग है कि हम अपनी शक्ति और वैयक्तिकता का बलिदान कर दें। **'रैबिट, रन'** में, अपडाइक १९५० वाले दशाब्द की मान्यताओं के विरुद्ध विचार प्रकट करते हैं; वह छोटे नगरों में रहने वाले श्वेत अमेरिकी लोगों की दमघोंटू आत्मतुष्टियों के विरुद्ध पूर्व-सामाजिक कामुक व्यक्ति की मांगों का समर्थन करते हैं। **'रैबिट रिडक्स'** (अर्थात् 'रैबिट की वापसी') में, वह १९६० वाले दशाब्द की मान्यताओं के विरुद्ध खम ठोंक कर खड़े होते हैं और एक ऐसे युग में सभ्यता के प्रति अपने नायक की नवीन प्रतिबद्धता का, सामाजिक और वैयक्तिक अनवरतता की उसकी आकांक्षा का, समर्थन करते हैं, जिसमें ये दोनों ही चीजें मिलनी कठिन हैं।

'रैबिट रिडक्स' के रैबिट में बहुत परिवर्तन आ गया है; घर से अन्तिम बार उसके पलायन की घटना भी दस वर्ष पुरानी हो चुकी है। ३६ वर्ष की आयु में वह पहले की तरह लम्पट नहीं रह गया है, बल्कि एक स्थानीय छापेखाने में लाइनोटाइपिस्ट के रूप में, अपने पिता की भांति खट रहा है। वह अपने उत्तरदायित्वों का अच्छी तरह पालन करता है और उन्हीं पुराने अमेरिकी नियमों—परिवार के प्रति निष्ठा, कठोर श्रम तथा यौन भावनाओं के साथ समझौता—के अनुसार अपने जीवन को ढाल कर चलता है, जिन्हें सीखने के लिए उसे इतनी मंहगी कीमत

अपडाइक ने कहा है: "न जाने क्यों, मुझे स्पष्ट और असन्दिग्ध से रूप से अभिव्यक्त कोई भी चीज निरर्थक, भोंडी, प्रतीत होती है।"

चुकानी पड़ी। परन्तु १९६० वाले दशाब्द में, इस तरह के नियम लागू होते नहीं दिखायी देते। उसने कहा है: "अब तो हर आदमी उसी रास्ते पर चल रहा है, जिस पर कभी मैं चला करता था।"

रैबिट की पत्नी, जेनिस, में भी परिवर्तन आ चुका है। वह चंचल और चपल हो गयी है; अब वह पहले जैसी उदास, 'घर की गुड़िया', नहीं रह गयी है। अब वह अपने पिता की नयी टायोटा एजेन्सी में काम करने के लिए उत्साह के साथ घर से बाहर जाती है। उधर, रैबिट का हाल यह है कि वह अपने उसी मजदूरी के लड़खड़ाते धन्धे में लगा है; और, अन्ततः, उसे निरुपयोगी बता कर नौकरी से हटा दिया जाता है। इस उपन्यास में, रैबिट किसी परस्त्री के साथ नहीं फंसा है, वरन् जेनिस ही एक परपुरुष के साथ फंसी है; और, अन्ततः, उसी के साथ घर से भाग जाती है—भागने का कारण बहुत-कुछ वही होता है, जो रैबिट के एक बार भागने का था।

अकेला, इधर-उधर भटकता हुआ, रैबिट एक १८-वर्षीया भगोड़ी लड़की को अपने घर में ले आता है। वह लड़की एक-दूसरे भगोड़े को घर ले आती है, जो वियतनाम युद्ध से भागा हुआ एक अश्वेत सैनिक है। इस प्रकार, परिवार में वृद्धि होती है। सैनिक अपने को अदृश्य का संदेशवाहक होने का दावा करता है—और घर पर आग और गंधकाश्म की वर्षा का परोक्ष रूप से कारण बनता है। रैबिट अपने माता-पिता के घर लौट जाता है। एक बार फिर, वह अपने पुराने कमरे में सोता है, अपनी किशोरावस्था की अद्भुत रंगीन कल्पनाओं में खो जाता है। लेकिन, अन्त में, उसकी पत्नी अपने परिवार में वापस आ जाती है। अब परिवार में पहले की अपेक्षा एक अधिक जटिल स्वास्थ्य और व्यवस्था आ जाती है।

अपडाइक ने अपने लेखकीय जीवन में पहली बार, **'रैबिट रिडक्स'** में, वियतनाम-युद्ध, अश्वेत लोगों की क्रान्ति, मादक द्रव्यों के सेवन एवं व्यसन, अमेरिकी मध्यम वर्ग के क्षोभ और उसकी हताशा, हिप्पी जीवन-पद्धति और चन्द्र-यात्रा जैसे सार्वजनिक विषयों की विस्तृत चर्चा की है। उन्होंने इन सजीव और सामाजिक प्रवृत्तियों को, १९६९ के परिवेश में, उपनगरीय जीवन पर आधारित एक यथार्थवादी उपन्यास के कलेवर में बड़े स्वाभाविक रूप से संजो दिया है और कथा-प्रवाह को भी विच्छिन्न नहीं होने दिया है। जहां तक रूपरेखा का सम्बन्ध है, ऐसा लग सकता है कि इस पुस्तक में घिसी पिटी बातों की भरमार है, परन्तु अपडाइक ने लोगों के विचारों, मांगों और भावनाओं को सही-सही व्यक्त करके तथा व्यक्तियों, स्थानों एवं घटनाओं का सूक्ष्म विवरण उपस्थित कर अपने वर्णन में जान डाल दी है।

'रैबिट, रन' में, नायक का सामना एक अनिवार्यतः गतिहीन सामाजिक परिस्थिति से होता है; वह उससे बचने के लिए अपने आन्तरिक जगत में जा बैठता है। **'रैबिट रिडक्स'** में, उसका सामना छक्के छुड़ा देने वाली एक गत्यात्मक सामाजिक परिस्थिति से होता है, और वह अपने परिवार, अपने वर्ग, अपनी जाति, अपनी सामान्य पार्थिव भावनाओं तथा आचरण से परे हट कर, क्रियाशील वाह्य जगत में छलांग लगा जाता है। **'रैबिट, रन'** १९५० वाले दशाब्द के परिवेश से सम्बद्ध एक प्रमुख पुस्तक है और **'रैबिट रिडक्स'** मेलर के **'आर्मीज ऑव् दि नाइट'** के सदृश १९६० वाले दशाब्द से सम्बद्ध एक प्रमुख ग्रन्थ है—यह दशाब्द ऐसा था, जिसमें निजी व्यक्तित्व के संघर्षों ने राजनीतिक घटनाओं का रूप ले लिया और राजनीतिक घटनाओं ने निजी जीवनों को प्रभावित और उद्वेलित किया।

आज, जब हम १९७० वाले दशाब्द में अग्रसर हो रहे हैं, उन अमेरिकी लेखकों में, जो अपनी रचनाओं द्वारा हमारी विषम मानवीय तथा सांस्कृतिक परिस्थिति को गत्यात्मक एवं विकासशील दृष्टि से समझने में हमारी सहायता कर रहे हैं, दो लेखक हाल के वर्षों में एक-दूसरे के पूरक बन गये हैं। उनका प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इन दोनों लेखकों के प्रयत्न को समझने में हमें यहां एक रूपक से सहायता मिल सकती है। मेलर को थोड़ी देर के लिए एक पर्वतारोही समझ लीजिये और अपडाइक को एक खनक। मेलर साहस और शौर्य के साथ पर्वत की ऊंचाइयों को पदमर्दित करते जा रहे हैं—ऐसी ऊंचाइयों को, जो स्वयं उनकी अपनी हैं, विचारों की हैं, शहरी जीवन की हैं, भविष्य की हैं, आकाश की हैं, वाह्य अन्तरिक्ष की हैं। वह आक्रामक, सार्वजनिक, आडम्बरी ढंग पर राजनीतिक और प्रचण्ड साहसी हैं, यहां तक कि वह स्वयं अपने को भी नहीं बख्शते। अपडाइक प्रच्छन्न रह कर कार्य करने वाले व्यक्ति हैं; वह तुच्छ, सामान्य परिस्थितियों और भावनाओं तर रन्दा चला पर उनकी छीलन उतारते रहते हैं; एक छोटी-सी जगह में ही वह रत्नों की खोज करते रहते हैं। यह पुस्तक लिखने से पहले, वह लगभग अराजनीतिक व्यक्ति थे, और यहां भी वह अपने पात्रों के राजनीतिक विचारों की चूल उनकी तात्कालिक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियों के साथ बैठाते रहते हैं। वह कोमल हैं, आक्रामक नहीं। उनके यौन वर्णनों में उच्छृंखलता नहीं, बल्कि एक प्रकार का संयम एवं शालीनता मिलती है। उनके प्रमुख चरित्रों में नारियां भी हैं और पुरुष भी—अमेरिकी कथा-साहित्य की दृष्टि से यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है। बालसाहित्य के तो वह अमेरिका के सर्वोत्तम लेखक हैं। वह अपने चरित्रों का समादर करते हैं, उनके उपन्यासों में खलनायक नहीं होते।

१९६६ में, एक भेंट-वार्ता के दौरान अपडाइक ने कहा था: "मुझे मध्यम वर्ग के लोग अच्छे लगते हैं। मध्यम वर्ग के लोगों में ही दो परस्पर विरोधी उग्र विचारों, मान्यताओं, परम्पराओं, जीवन-पद्धतियों, आदि का संघर्ष होता है; इसी वर्ग में अस्पष्टता और अनिश्चय की स्थिति बराबर बनी रहती है।" दो वर्ष पश्चात्, एक अन्य भेंट में उन्होंने इस कथन में यह बात और जोड़ दी: "न जाने क्यों, मुझे स्पष्ट एवं असन्दिग्ध रूप से व्यक्त कोई भी चीज निरर्थक, भोंडी, प्रतीत होती है। हर चीज असीम रूप से सूक्ष्म तथा सुन्दर होती है; वास्तविक वस्तु के विन्यास की तुलना में उसके विषय में व्यक्त कोई भी सम्मति अधिक रूक्ष होती है।....मेरी कृति कहती है 'हां, किन्तु'। **'रैबिट, रन'** में, हमारे अन्तःकरण की अत्यावश्यक कानाफूंसियों के लिए 'हां' है, 'किन्तु'—और, यहीं पर सामाजिक ढांचा घातक रूप से भहरा कर ध्वस्त हो जाता है। **'दि सेन्टौर'** में, 'हां' है आत्म-त्याग और कर्तव्य के लिए, 'किन्तु'—किसी व्यक्ति की निजी पीड़ा और पतन के बारे क्या कहा जाये? **'पूअरहाउस फेयर'** में, सामाजिक समधर्मिता और आस्थाहीनता के लिए 'नहीं' है, 'किन्तु—शाश्वत जीवन की पुकारों और आनन्द की ओर से अपने कान बहरे मत कर लीजिये। **'कपुल्स'** में, 'नहीं' है भौतिक और मानसिक क्रियाकलापों की अन्तर्व्याप्ति के आधार पर संगठित धार्मिक समाज के लिए, 'किन्तु'—जब ईश्वर हमारे गिरजाघरों (धार्मिक संगठनों) को नष्ट करने पर तुला हो, तब इसके अतिरिक्त हम और कर ही क्या सकते हैं? मध्यम वर्ग के भीतर पायी जाने वाली घरेलू जीवन की भीषणता; विचारशील प्राणी के लिए पहेलियों के रूप में, यौन-जीवन और मृत्यु; त्याग और अप्रत्याशित सुखों और पुरस्कारों के रूप में, सामाजिक जीवन; विकासमान प्रक्रिया के रूप में, भ्रष्टाचार—ये हैं मेरी कृतियों की कुछ विषय-वस्तुएं।"

इन विषयों का जितना सुष्ठु निरूपण अपडाइक ने **'रैबिट रिडक्स'** में किया है, उतना किसी अन्य पुस्तक में सम्भव नहीं हुआ है। इस पुस्तक में, सब कुछ अस्पष्ट और द्वन्द्वात्मक है, फिर भी औपन्यासिक विधा में संजोकर उसे बड़ी खूबी से सुलझा लिया गया है। शैली में न तो कोई 'अपडाइकी' अवगुण्ठन या घुमाव है, और न ही है प्रतीक और घटना के बीच चौड़ी दरार। सब कुछ नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। संरचना और कथा-संयोजन सम्बन्धी कुछ दोष अवश्य है; कुछ ऐसे क्षण भी आ जाते हैं, जब चरित्र यथार्थ नहीं जान पड़ते। फिर भी, अपडाइक के उपन्यास, वास्तव में, यथार्थवादी उपन्यास हैं। इस दावे का इससे प्रबल प्रमाण और क्या होगा कि उनमें समसामयिक अनुभव के विसंवादी (असंगत) तत्वों का असाधारण संश्लेषण किया गया है। **'रैबिट रिडक्स'** एक महान् उपलब्धि है। सच तो यह है कि अपडाइक ने जितनी भी पुस्तकें लिखी हैं, उनमें यह पुस्तक सबसे अधिक साहसिक और सफल है। ■■

अमेरिका का प्रथम भू-कक्षागत अन्तरिक्ष स्टेशन

यंत्रपुंज आवरण
अपोलो टेलिस्कोप मंच
बहु-संगमन उपायोजक
वायुबन्ध
यंत्र खण्ड
स्काईलैब कार्यशाला
११४ फुट
एस-२ द्वितीय खण्ड
२२२ फुट
एस-१सी प्रथम खण्ड
USA

१ २ ३ ४
कार्यशाला का स्वतः उद्घाटन
२८ दिन तक
५६ दिन तक
८४ दिन तक
मानवरहित सैटर्न-५ का प्रथम प्रक्षेपण
अपोलो अन्तरिक्ष-यान
समानव सैटर्न १ बी
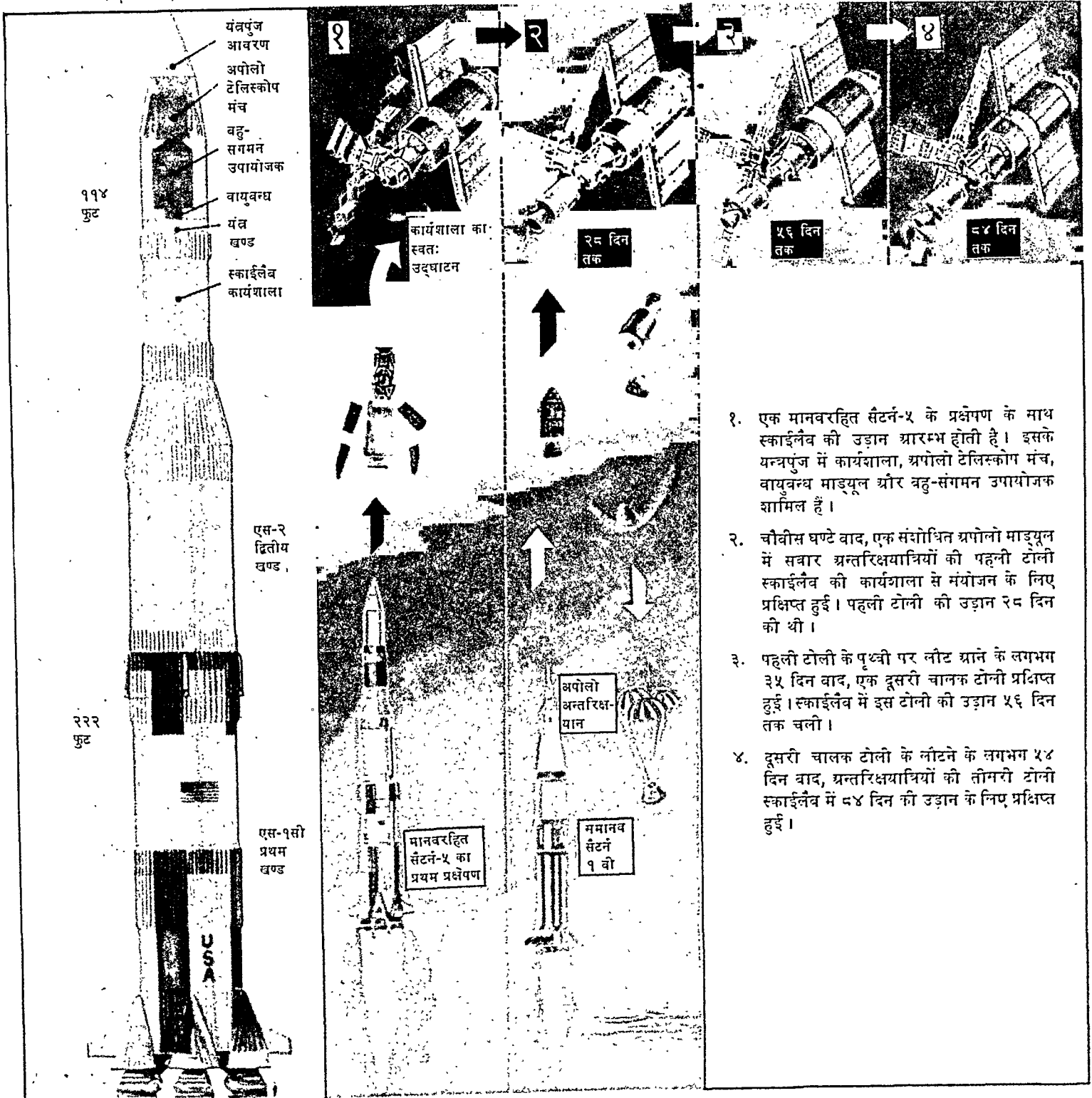
१. एक मानवरहित सैटर्न-५ के प्रक्षेपण के साथ स्काईलैब की उड़ान आरम्भ होती है। इसके यन्त्रपुंज में कार्यशाला, अपोलो टेलिस्कोप मंच, वायुबन्ध माड्यूल और बहु-संगमन उपायोजक शामिल हैं।

२. चौबीस घण्टे बाद, एक संशोधित अपोलो माड्यूल में सवार अन्तरिक्षयात्रियों की पहली टोली स्काईलैब की कार्यशाला से संयोजन के लिए प्रक्षिप्त हुई। पहली टोली की उड़ान २८ दिन की थी।

३. पहली टोली के पृथ्वी पर लौट आने के लगभग ३५ दिन बाद, एक दूसरी चालक टोली प्रक्षिप्त हुई। स्काईलैब में इस टोली की उड़ान ५६ दिन तक चली।

४. दूसरी चालक टोली के लौटने के लगभग ५४ दिन बाद, अन्तरिक्षयात्रियों की तीसरी टोली स्काईलैब में ८४ दिन की उड़ान के लिए प्रक्षिप्त हुई।

स्काईलैब

अपोलो की चन्द्रयात्राओं की समाप्ति पर, जिसने मनुष्य को पृथ्वी से बांध रखने वाले बन्धनों को तोड़ दिया, अमेरिका ने अन्तरिक्ष के अन्वेषण एवं अनुसन्धान के क्षेत्र में एक और नाटकीय प्रयोग किया। अमेरिका का प्रथम अन्तरिक्ष स्टेशन, स्काईलैब, पृथ्वी की कक्षा में अप्रैल १६७३ में स्थापित किया गया। उसके बाद के आठ महीनों में तीन-तीन अन्तरिक्ष-यात्रियों की तीन टोलियां इस अन्तरिक्षगत प्रयोगशाला में रहीं और काम किया। उन्होंने वहां से पृथ्वी तथा अन्य ग्रह-क्षेत्रों का अध्ययन किया, क्योंकि उनका उद्देश्य मानव-जीवन में सुधार करना तथा ब्रह्माण्ड के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करना था।

स्काईलैब के अन्तरिक्षयात्रियों के 'विलासिता-पूर्ण' कक्ष को देख कर अपोलो चन्द्रयात्रा के अन्तरिक्षयात्रियों को भी ईर्ष्या हुई होगी। नये कक्षागत स्टेशन में रहने तथा काम करने का स्थान तीन शयनकक्ष वाले मकान के बराबर है। इसमें एक शयनकक्ष, एक स्नानगृह (शावर सहित), एक पाकशाला और एक विशाल प्रयोगशाला की व्यवस्था है। स्काईलैब के अनेक दूरवीक्षण यन्त्रों ने सूर्य का अध्ययन किया।
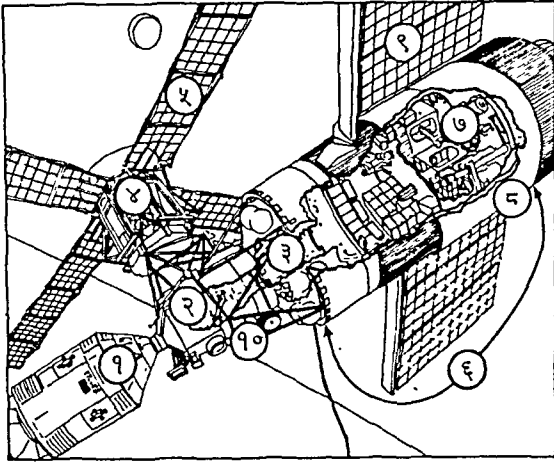
१. अपोलो कमान एवं सर्विस माड्यूल

२. बहु-संगमन उपायोजक

३. वायुबन्ध माड्यूल

४. सौर प्रयोगों के लिए अपोलो टेलिस्कोप मंच

५. अपोलो टेलिस्कोप मंच के सौर पटल

६. स्काईलैब की सैटर्न कार्यशाला

७. चालकों के लिए आवास-खण्ड

८. सूक्ष्म उल्का-कवच

९. कार्यशाला के सौर पटल

१०. भू-साधन शोधक उपकरण-पुंज

स्काईलैब में पृथ्वी के साधन-स्रोतों के अध्ययनार्थ एक उपकरण-पुंज है, जिसे 'भू-साधन शोधक उपकरण-पुंज' कहते हैं। इसमें पांच सेंसर शामिल हैं, जिनके द्वारा पृथ्वी का अध्ययन किया गया।

स्काईलैब के अन्तरिक्षयात्रियों ने सूर्य, तारों तथा पृथ्वी के बारे में मानव का ज्ञान बढ़ाने के लिए अनेक प्रयोग किये। उनकी अनेक अनुसन्धान-योजनाओं का उद्देश्य पृथ्वी पर जीवन को श्रेष्ठतर बनाना रहा है। इन पृष्ठों पर उन ५० से अधिक प्रयोगों में से कुछ को प्रदर्शित किया गया है, जो स्काईलैब के अन्तरिक्षयात्री-वैज्ञानिकों द्वारा किये गये। इनमें से एक प्रयोग का उद्देश्य, जिसकी रूपरेखा भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन, अहमदाबाद, के डा० पी० राम पिशरोती ने तैयार की थी, भारत के विशाल प्राकृतिक साधनों की अधिक अच्छी तरह व्यवस्था करना रहा। ■■

सूर्य का अध्ययन

सौर गतिविधि

स्काईलैब के सौर प्रयोग मुख्यतः बहु-संगमन उपायोजक खण्ड (ऊपर) में किये गये। यहां यात्रियों ने स्काईलैब के दूरवीक्षण यन्त्रों द्वारा अंकित सूर्य की छायाओं को देखने के लिए एक टेलिविजन-प्रणाली का उपयोग किया। इन छायाओं के नमूने 'सौर गतिविधि' शीर्षक के अन्तर्गत सूर्य के छायाचित्रों (सबसे ऊपर) में दिये गये हैं। स्काईलैब के अपोलो टेलिस्कोप मंच के आठ बड़े-बड़े सौर यन्त्रों से सूर्य के विकिरण-क्षेत्र के विषय में उपयोगी सूचनाएं उपलब्ध हुईं। सूर्य की गतिविधियों का अध्ययन महत्वपूर्ण है, क्योंकि पृथ्वी पर उपलब्ध ऊर्जा और जीवन का महत्वपूर्ण स्रोत सूर्य ही है और इसकी गतिविधियों का प्रभाव मनुष्य के वातावरण के हर पहलू पर पड़ता है।

पृथ्वी का

स्काईलैब का सुदूर-टोहक उपकरण, बहु-संगमन उ
साधन-स्रोतों का अध्ययन करने वाले उपकरण-पुंज में
देख रहा है। स्काईलैब के अन्तरिक्षयात्रियों ने अने
का सर्वेक्षण किया। उन्होंने विश्वव्यापी स्तर पर
और मूल्यांकन किया। उन्होंने ऐसे आंकड़े एकत्र किये,
अनुमान लगाना, जलस्रोतों का श्रेष्ठतर प्रबन्ध करना
होगा। स्काईलैब ने महासागरीय विज्ञानवेत्ताओं,
के लिए भारी मात्रा में आंकड़े सुलभ किये हैं।

नीचे) से, जहां पृथ्वी के स्थित हैं, पृथ्वी की ओर ... से पृथ्वी के साधनों और साधनों का पर्यवेक्षण गणना करना, उपजों का की पहचान करना सम्भव ... तथा भूगोलविदों

मनुष्य का अध्ययन
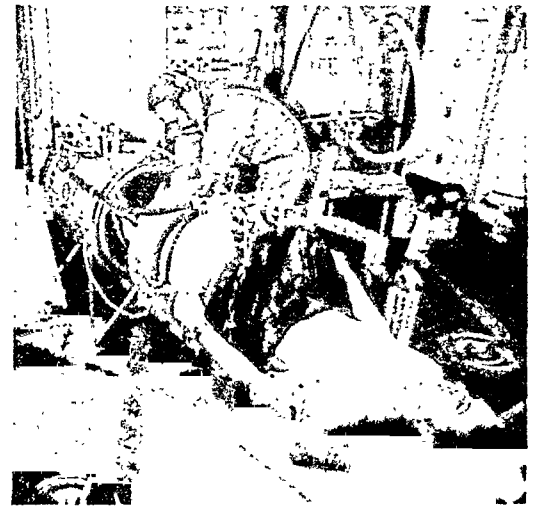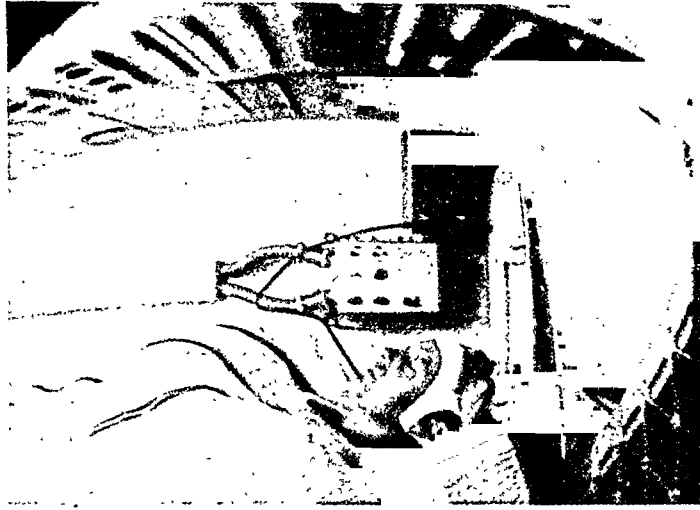
स्काईलैब की तीनों उड़ानों में मानव-शरीर पर चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी प्रयोग किये गये, जिनमें से एक का दृश्य यहाँ (ऊपर, दायें) दिखाया गया है। इसमें यह दिखाया गया है कि अन्तरिक्षयात्री के शरीर के निचले भाग पर वायुहीनता का हल्का सा प्रभाव डालने से उसके हृदय और रक्त-वाहिनियों पर दबाव पड़ता है। यात्रा से पूर्व, यात्रा के दौरान और उसके बाद इस प्रकार के दबाव डालने से मनुष्य के शरीर ने जैसी प्रतिक्रिया की, उसके आंकड़ों से लम्बी अन्तरिक्षयात्राओं के दौरान मनुष्य के हृदय की धड़कनों को सन्तुलित रखने के सम्बन्ध में उपयोगी जानकारी प्राप्त हुई। एक और प्रयोग (ऊपर, बायें) के अन्तर्गत, निर्धारित अवधि में यात्री की नींद की नापजोख की गयी। इस प्रयोग का उद्देश्य नींद में गड़बड़ी के फलस्वरूप यात्रियों को होने वाली थकान की समस्या का हल ढूंढ़ना रहा है।

अन्तरिक्ष-विज्ञान का अध्ययन

...रहीन परिस्थिति का सामना करने के लिए ...यी विधियों की खोज और उनका परीक्षण ...न अनेक योजनाओं में शामिल हैं, जिनका ...द्देश्य अन्तरिक्ष सम्बन्धी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ... विषय में मानव के ज्ञान को विस्तृत करना है। ...नका एक उदाहरण है घुमाने-फिराने के लिए ...ाथ से पकड़ रखा गया यह उपकरण (बायें), ...जसका परीक्षण स्काईलैब की कार्यशाला में ...कया गया। अन्तरिक्ष-विज्ञान सम्बन्धी ...नुसन्धान के अन्य क्षेत्रों में, अतिकाशनी नक्षत्रों ...वषयक खगोल विज्ञान तथा शून्य गुरुत्वाकर्षण ...ी स्थिति में पिघली धातु की विशेषताओं के ...ध्ययन शामिल हैं।

स्काईलैब में निवास

स्काईलैब में, जो पृथ्वी की कक्षा में परिक्रमा कर रहे एक मकान के समान है, २८० घन मीटर स्थान है, जिसमें रहने और काम करने की सारी सुविधाएं उपलब्ध हैं। इसके वार्डरूम (ऊपर) में, जिसका क्षेत्रफल १० वर्ग मीटर से अधिक है, एक खाने की मेज, भोजन रखने के लिए एक फ्रीजर, भण्डारन-स्थान तथा बाहर का दृश्य देखने के लिए एक वातायन की व्यवस्था है।

अमरीका, जिसे मैंने कभी देखा नहीं

त्रिवादी

रेखाचित्र : गोपी गजवानी

आरामकुर्सी पर पड़े-पड़े कल्पना-लोक में विचरण करने वाला स्वप्न-यात्री विशेष रूप से सौभाग्यशाली होता है। उसे पासपोर्ट की चिन्ता नहीं होती, वह आवेदनपत्रों के लिए लाइन नहीं लगाता, वीज़ा के लिए भागदौड़ नहीं करता। मज़े लेने में अलबत्ता वह पिछड़ जाता है—थोड़ा सा, विशेषकर लड़कियों के मामले में। लेकिन वह उलझन में पड़ने से तो बच ही जाता है!
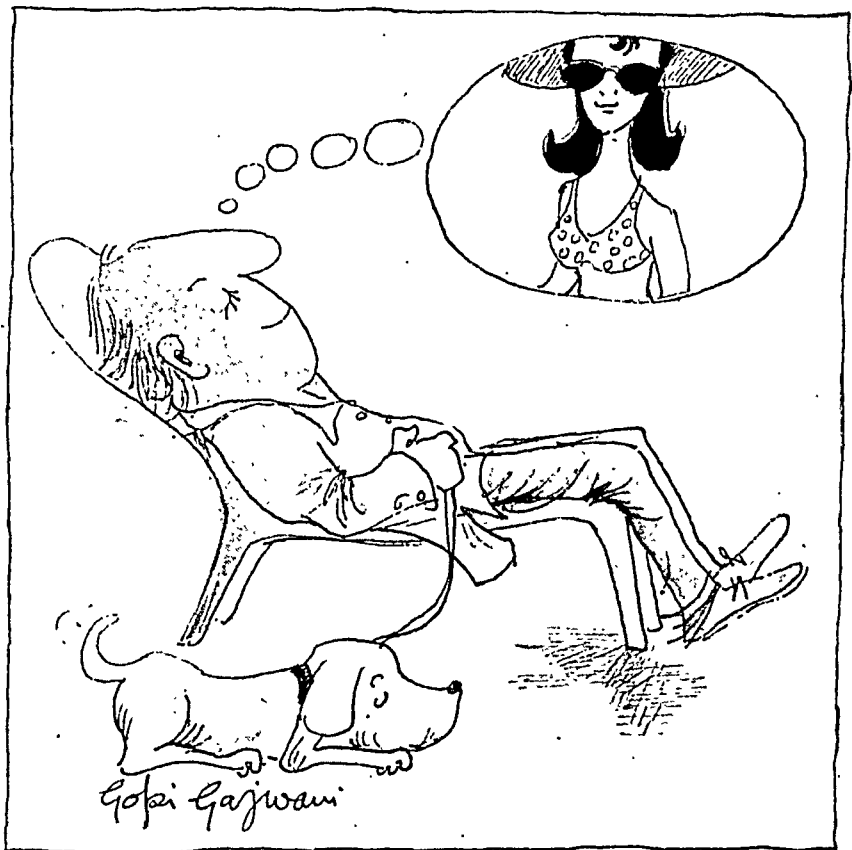
लेखक के विषय में : हास्य रस के लेखक, श्री त्रिवादी, के प्रशंसकों और भक्तों की संख्या काफी बड़ी है, मुख्यत: इसलिए कि वह 'टाइम्स ऑव् इण्डिया' में नियमित रूप से लिखते हैं। पत्रकारिता, विज्ञापन और जन-सम्पर्क के क्षेत्रों में लम्बे और शानदार कार्यकाल के दौरान, श्री त्रिवादी की परिहास-वृत्ति उत्तरोत्तर निखरती रही है।

अमेरिका, जिसे मैंने कभी देखा नहीं, लिंकन से ऊंचा, ग्लीसन से चौड़ा, गैलब्रेथ से अधिक सम्वेदनशील, मैकनामारा से अधिक वौद्धिक और, निश्चय ही, एक अरव राकफेलरों से भी अधिक धनी है। वह ५० राज्यों को मिला कर बना है और इसमें कोई बुराई नहीं है : आखिर, राष्ट्रों के गठन की एक विधि यह भी तो है, हालांकि कुछ ऐसे भी हैं, जो इससे कम में ही काम चला लेते हैं—उदाहरण के लिए, लक्ज़मवर्ग शायद अपने-आप में ही देश, राज्य, नगर, सभी कुछ है। ज़रा सोचिये तो, मैंने लक्ज़मवर्ग भी नहीं देखा है; लेकिन यह एक अलग किस्सा है।

अमेरिका में, जिसे मैंने कभी देखा नहीं, एक संवैधानिक सरकार है, जिसका प्रधान एक प्रेसिडेण्ट होता है। अमेरिका का प्रेसिडेण्ट केवल अमेरिकावासी ही वन सकता है, लेकिन सभी अमेरिकावासी प्रेसिडेण्ट नहीं होते। होटलों के भी प्रेसिडेण्ट हैं और वे कहीं अधिक सम्पन्न हैं; कुछ यूनियनों के प्रेसिडेण्ट हैं, जो कहीं अधिक शक्तिशाली हैं। अव कूलिज की ही बात ले लीजिये। उनके बारे में उस कहानी से तो हम सभी परिचित हैं, जिसमें उन दिनों, जव वह राष्ट्र के प्रथम व्यक्ति थे, एक वार वह किसी दूरदराज के होटल में जा टिके थे। और, आधी रात को वहां आग लग गयी। हर कोई जान बचाने के लिए पाजामा पहने हुए ही, हड़बड़ी में, इधर-उधर भागता नज़र आया। कूलिज भी बाहर निकले। उन्हें एक उल्टी बाल्टी दीखी और वह उसी पर जा बैठे। वह बैठे-बैठे आग बुझाने वालों की कारगुजारी देख ही रहे थे कि उनमें से एक ने आकर उनसे कहा : "अरे, तुम ! क्या समझते हो तुम अपने आप को? इधर आ भले आदमी! और हमारी सहायता कर आग बुझाने में।" कूलिज अपनी ५ फुट ३ इंच (या लगभग इतनी ही) ऊंची काया तान कर खड़े हो गये और कड़ाई से बोले : "तुम्हें मालूम होना चाहिए कि तुम प्रेसिडेण्ट (राष्ट्रपति) से बात कर रहे हो।" उसने माफी मांगी, फौजी सलाम ठोंका और चल दिया; परन्तु, कुछ सोचते ही, वह पलट पड़ा और वोला : "अरे हां, क्या कहा, काहे के प्रेसिडेण्ट हो?" "संयुक्त राज्य अमेरिका का", कूलिज ने उत्तर दिया। सुन कर उस व्यक्ति ने कहा : "अच्छा, यह बात है! तो, जाओ, मौज करो। मैंने तो समझा था कि तुम इस होटल के या ऐसी ही किसी चीज के प्रेसिडेण्ट हो!"

अमेरिका में, जिसे मैंने कभी देखा नहीं, अन्य लोग भी रहते हैं—अमेरिकी और भारतीय भी। इन भारतीयों में, मैं अपने भाई बालाकृष्णन् को भी शामिल करता हूँ; वह १९४८ में कोलम्बिया विश्वविद्यालय का छात्र था, जिसके डीन ड्वाइट आइजनहॉवर थे। उसने 'ब्रेकिंग ऑव् इण्डक्शन मोटर्स' विषय पर शोध-प्रवन्ध लिखकर वहुत यश कमाया। 'उस' से मेरा तात्पर्य अपने भाई से है, 'आइक' से नहीं, जिनके सामने न जाने कितने वड़े-वड़े काम थे।

अमेरिका से मेरे व्यक्तित्व का एक लघु अंश भी जुड़ा हुआ है। मैं अव जो दृश्य प्रस्तुत करने जा रहा हूं, वह तव का है, जव मैं १४ वर्ष का था और गेटिसवर्ग-भाषण को अलंकृत करने की फिराक में अपनी पंक्तियों में जोड़-तोड़ कर शेक्सपियर के 'दोस्तो और रोमवासियो' सरीखे वाक्यांश घुसेड़ रहा था। नहीं मालूम, मेरे सिर पर क्या झक सवार थी (सम्भव है यह मेरी प्रखर स्मरणशक्ति का ही चमत्कार रहा हो), लेकिन 'सौ वर्ष हुए' ('फोर-स्कोर-ऐण्ड-ट्वेण्टी-इयर्स-एगो') लिखने के वाद ही मैं गड़वड़ा गया, और कुछ ऐसी नयी वात लिख बैठा, जिसके बारे में किसी को भी कुछ मालूम नहीं था। इस वहक में मैंने जो कुछ लिखा था, उसका थोड़ा जायजा तो लीजिये : "इस गौरवशाली भूमि में जो लोग दफन हैं, वे सभी बहुत सम्मानित व्यक्ति हैं; और मैं इन्हें दफनाने आया हूं, इनकी प्रशंसा करने नहीं।" चूंकि प्रिंसिपल की पूर्व अनुमति के विना गड़े मुर्दों को, यहां तक कि अमेरिका के भी गड़े मुर्दों को, उखाड़ना सम्भव नहीं था, अतएव मुझे अपने लेख पर लट्टू मिला! मुझे मालूम हुआ कि अबे लिंकन इस मामले में मुझसे अधिक खुशकिस्मत था। उसे उच्चारण, विराम, सन्तुलित वाक्य, या वाक्यशैली के जंजाल में नहीं फंसना पड़ा था, और इसीलिए, जैसा चाहा वैसा लिख कर वह उत्तीर्ण हो गया था। लेकिन मुझे तो अपनी सीट छोड़ कर पिछली सीटों पर जा कर बैठने की नौवत आ गयी। वहां पहले से ही जमे खेलकूद के चैम्पियन रंगा ने, जिसके लिए सभी साहित्य 'काला अक्षर भैंस बराबर' था, बड़ी गर्मजोशी से मेरा स्वागत किया!

और, यह तो मैं भूल ही चला था कि मेरा अमेरिका वही अमेरिका होगा, जिसका प्रतिनिधित्व मेरे चचेरे भाईबन्द, लीला और जयराम, तथा उनके पुत्र, श्याम और अर्जुन, करते हैं। हाल हीं में, वे भारत आये थे, और जव इन छोटे बच्चों को मालूम हुआ कि मेरे पास मोटरकार नहीं, तो उन्हें वड़ा धक्का लगा, वड़ी हैरानी हुई—उनका यह आहत भाव मुझे दीर्घकाल तक नहीं बिसरेगा। उन्होंने शिकायती लहजे में कहा : "लेकिन हमारे पास तो दो-दो मोटरें हैं, लान की घास काटने वाली मशीन है और एक कपड़े धोने की भी है। क्या कहा, आपके पास ये सब नहीं हैं?" सच, मुझे बड़ी शर्म आयी; मैंने वड़ी मायूसी से, उदासी में, सिर हिला दिया। बेशक, उन्हें मुझ पर दया आ गयी, और वे बोले : "तो, क्या हुआ? आपके पास तीन टांग की कुर्सी तो है, जो हमारे पास नहीं है।" शायद मुझे तसल्ली देने की गरज़ से ही यह कहा गया था। मैंने उन्हें नहीं बताया कि कोई ज़माना था, जव इस कुर्सी की भी चार सुन्दर-सुन्दर टांगें थीं! और, जव टांगों की चर्चा चल ही पड़ी, तो बता दूं कि अमेरिका सम्बन्धी मेरे स्वप्नों में लम्बी सुडौल टांगों वाली वे खूबसूरत माडलें मँडराती रहती हैं, जो ऊंचे और चुस्त कटि-आवरण और अधोवस्त्र, तथा जालीदार टीशर्ट और चुस्त स्वेटर, धारण करके उत्तेजक मुद्राओं में दर्शकों को लुभाया करती हैं।

अमेरिका, जिसे मैंने कभी देखा नहीं, मेरे लिए गरट्रूड स्टीन है स्टीन है स्टीन है जिसका गुलाव एक गुलाव है एक गुलाव है एक गुलाव का ऐसा परिष्कृत रूप है कि किसी भी नाम से पुकारिये, खुशवू उतनी ही प्यारी होगी (ऐसा होगा नहीं)। क्या वह अपनी लाड़ली गरट्रूड ही नहीं, जिसे तुम्हारे वारे में इतनी सारी जानकारी थी? "तुम इसलिए तुम हो, क्योंकि तुम्हारा छोटा कुत्ता तुम्हें जानता है, लेकिन जव तुम्हारी जनता तुम्हें जानती है और तुम्हारा सत्कार करना नहीं चाहती, लेकिन जव तुम्हारी जनता तुम्हें जानती है और तुम्हारा सत्कार करना नहीं चाहती, तो तुम वही तुम नहीं होते।" अपने देश में वही एकमात्र शव्दविलासी नहीं थी। उसके अतिरिक्त भी कितने ही और हैं, और हुए हैं—जैसे फॉकनर और हेमिंग्वे, टेनेसी विलियम्स और अर्ल स्टैनली गार्डनर। और '**टाइम**' पत्रिका। और अव मृत '**लाइफ**' भी, जिसके सचित्र फीचर्स (लेखों) का मैंने एक लम्वे अरसे तक आनन्द लिया है और जिसके चित्र-परिचय दो-टूक होते थे—शब्दों के श्लिष्ट प्रयोग की एक वानगी लीजिये : "ब्लर आन राइट इज़ मैक्मिलन"।

एक समय था, जव अमेरिका, मेरा अमेरिका, 'इनसाइड गुंथर' (गुंथर-कृत '**इनसाइड**' पुस्तक-माला) तक ही सीमित था। अव गुंथर की चर्चा आ ही गयी, तो उनकी पुस्तक, '**डेथ बी नाट प्राउड**', की याद किये विना नहीं रहा जाता। यह पुस्तक इतनी मर्मस्पर्शी थी कि उसे पढ़ कर मैं सिसकने लगा था, और फिर, वेहयाई से आंख में आये आंसू पोंछ डाले थे। जव मेरी आयु कम थी, तव 'गुडवाई, मिस्टर चिप्स' नामक एक फिल्म देखी थी, जो इतनी सुन्दर थी कि उसे दोवारा देखने का साहस नहीं कर सकता, क्योंकि भय है कि अव शायद मैं उस तरह न सोच सकूं। यह एक भय है, जो उम्र वढ़ने के साथ-साथ लोगों को जकड़ता जाता है; और यह सही भी है, क्योंकि अधिक उम्र होने से अन्तर्दृष्टि नहीं, वल्कि सनक वढ़ती है; विवेक नहीं वढ़ता, वल्कि शेष संसार के प्रति दृष्टिकोण दिग्भ्रमित हो जाता है।

अमेरिका, जिसे मैंने कभी देखा नहीं, एक ऐसा अमेरिका भी है, जो ज़ोर की भूख लगने पर मुझे हमेशा याद आयेगा। वह विशाल खाद्य-भण्डार है, जिसकी तुलना में तंजौर के अन्न-भण्डार भी कहीं नहीं टिकते। वैसे, मुझे आंकड़ों से विल्कुल लगाव नहीं है, लेकिन मैंने सुना है कि अमेरिका के नागरिक जितना खाद्य-पदार्थ साल भर में गप कर जाते हैं, उसे ढोने के लिए ८ मालगाड़ियां चाहियें; और वह भी तव, जव हर मालगाड़ी न्यूयार्क से सनफ्रांसिस्को तक, यानी ३,००० मील लम्वी हो! दूकानों में पैकेटों और लेवलों के अम्वार नज़र आते हैं। वड़ी दूकानों में तो खाने-पीने की ८,००० से अधिक किस्में मिल जायेंगी। और, जव अकेले पनीर की ही सौ किस्में हों, तो मेरा ख्याल है कि ऐसा होना अवश्यम्भावी है। लेकिन, चाहे आप गरीव हों या अमीर, मोटे हों या पतले, एक वार में अधिक-से-अधिक आप एक वक्त का ही तो भोजन कर सकते हैं (मेरी भी नीति यही है)।

फिर भी, इसका मतलव यह नहीं कि अमेरिकी लोग हमेशा खाने-पीने की ही वात करते रहते हैं। एक सन्दिग्ध प्रामाणिकता

Get with it, man,
Friends. Romans..
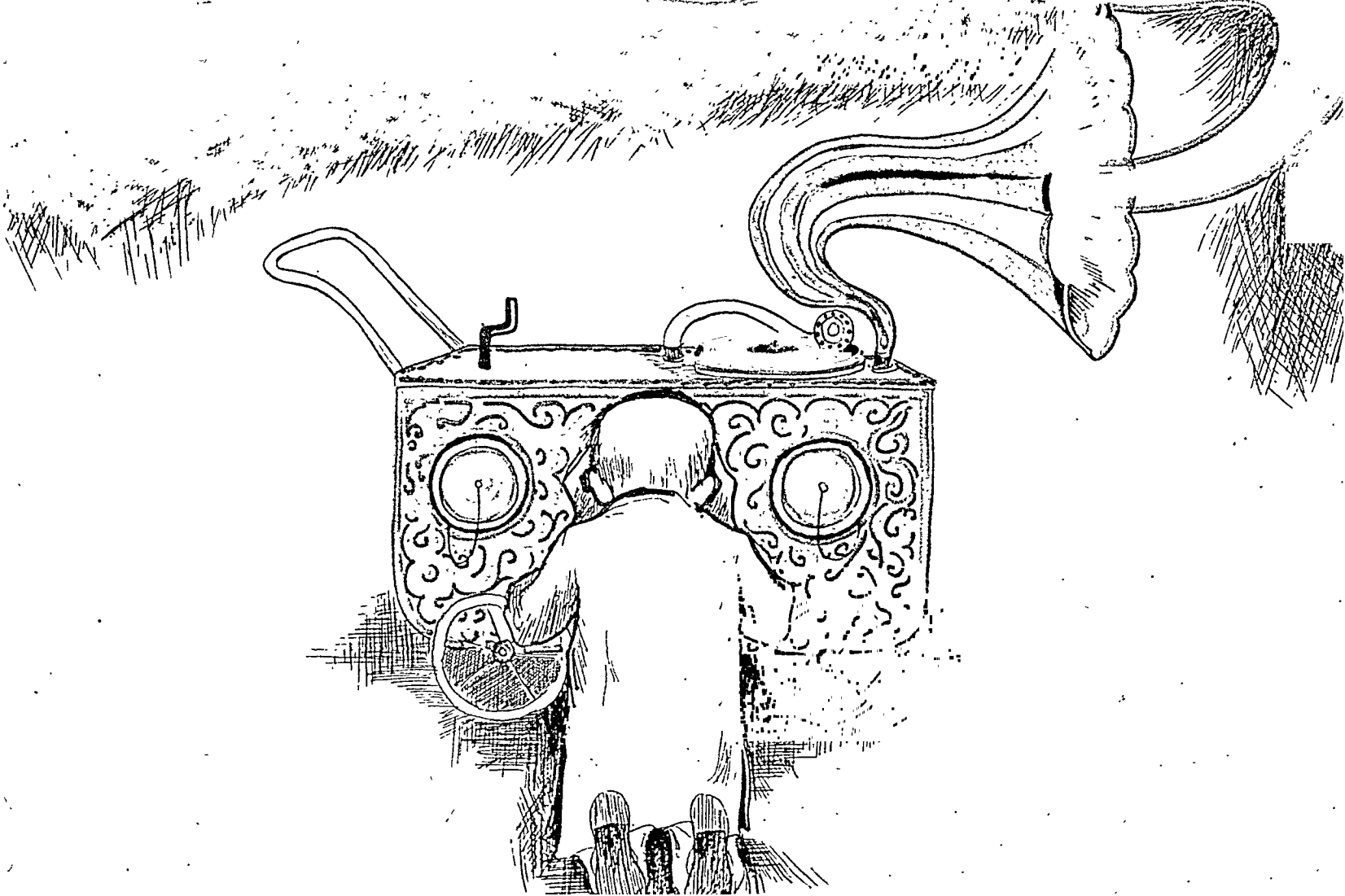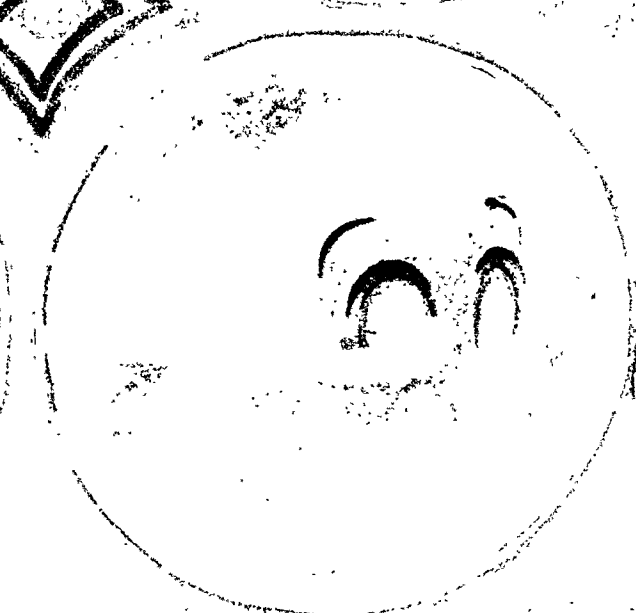
यदि मैं अमेरिका गया होता, तो ऐसा कुछ कहने से पूर्व, कि 'कृपया, नमक इधर बढ़ाइये', शायद मेरा दम ही घुट गया होता।
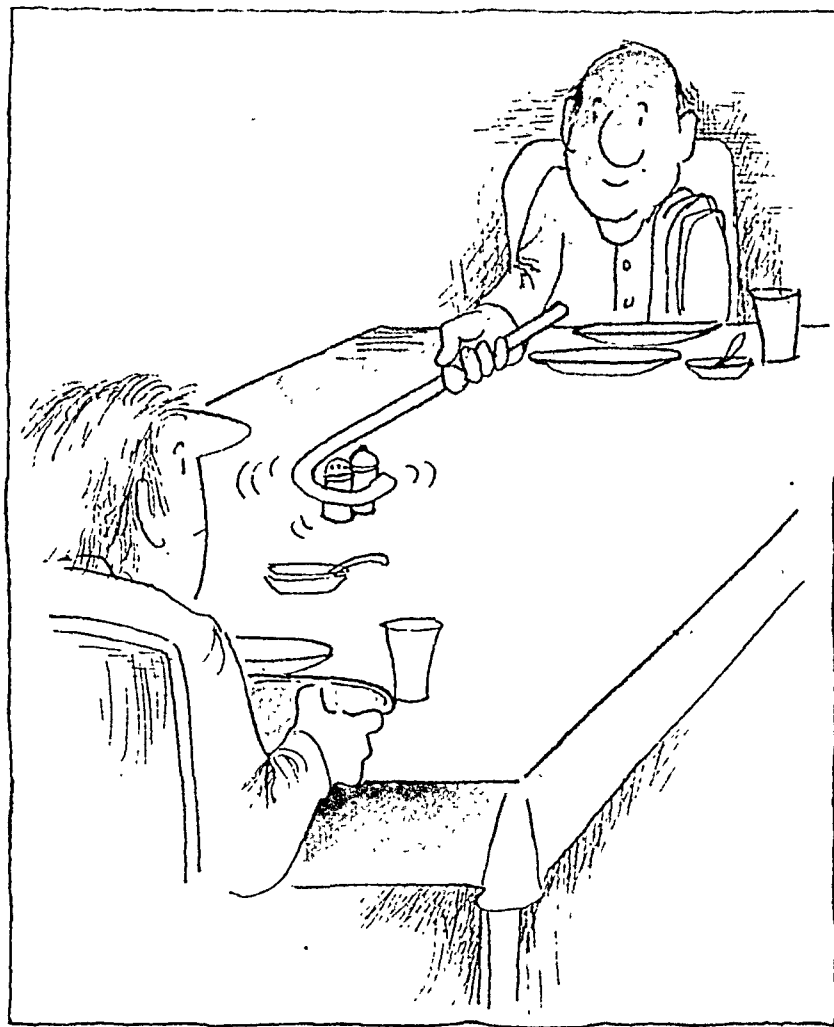
वाली निर्देशन-पुस्तिका समुद्रपार के सम्भावित छात्रों को चेतावनी देती है: "याद रखें, भोजन की मेज पर भोग्य पदार्थों सम्बन्धी बातचीत करना शोभनीय नहीं माना जाता।" अगर मैं अमेरिका गया होता, तो ऐसा कुछ कहने के पूर्व कि 'कृपया, नमक इधर बढ़ाइये', शायद मेरा दम ही घुट गया होता। इसी पुस्तिका में यह भी लिखा है कि "छात्र को अमेरिकी परिवार के साथ रहने पर अंग्रेजी भाषा सीखने में बड़ी सहूलियत होगी।" विचार तो यह उत्तम हो सकता है, लेकिन जरूरी नहीं कि सब इससे सहमत ही हों। इसलिए, यह विषय यहीं छोड़ देना श्रेयस्कर होगा।

अमेरिका, जिसे मैंने कभी देखा नहीं, तब से बहुत बदल चुका है, जब मैंने उसके बारे में पहली बार पढ़ा था। उदाहरण के लिए, मैंने पढ़ा था कि १८७२ में, उदार दृष्टिकोणों का एक अमेरिकी था, जो किशोरों के अभिभावकों को उदार बनने की सीख देता था। वह कहता था: "चुम्बन, आलिंगन, वाल्ट्ज नृत्य और उपन्यास पढ़ने की भी छूट दो।" अब तो, खैर, वहां फ्रायडवादी विश्लेषण की ओर विशेष झुकाव हो गया है, जिसे सी० पी० स्नो ने हाईस्कूल के बास्केट बाल या 'आभार-प्रदर्शन दिवस' के रात्रिभोज जैसी ही एक अमेरिकी थाती माना है।

अमेरिका, जिसे मैंने कभी देखा नहीं, 'स्वतन्त्रता की प्रतिमा' का भी देश है—गॉलिक स्थापत्य के उस उपहार का देश, जो एक स्वागतशील सागर से उभरता हुआ, शरण तथा मान्यता का आश्वासन देता है। एक सर्वाधिक प्रख्यात निर्वासित व्यक्ति, जिसे यहां शरण मिली, आइन्स्टीन था, जो गान्धी का प्रशंसक था, ब्रह्माण्ड का उपासक था और जिसने 'ई=एमसी²' जैसा मामूली सा 'नारा' देकर दुनिया के हर राष्ट्र में बिजली सी दौड़ा दी। उसने तो दुनिया की विचारधारा को ही हमेशा के लिए बदल दिया। मैंने इस नारे के बारे में कई बातें सुनी हैं—जैसे, यह कि संसार भर में केवल १३ व्यक्तियों ने ही इसे समझा था; फिर उनकी संख्या घट कर ६, और अन्त में, केवल २ रह गयी। हो सकता है कि अब इसे कोई भी न समझता हो, लेकिन इससे क्या? आइन्स्टीन को तो इसने 'गुरूणाम् गुरुः', सत्य का उद्‌घोषक और अज्ञान का संहारक बना ही दिया है।

अमेरिका, जिसे मैंने कभी देखा नहीं, चन्द्रयात्रा का समारम्भ-स्थल भी है। केप कैनेडी वह स्थान है, जहां से भावी 'एलिस विस्मयलोक में' अपना नया यात्रा-अभियान प्रारम्भ करेगी, और कौन कह सकता है कि उसके पास हमें सुनाने के लिए क्या-क्या कथाएं होंगी। क्या वह नील आर्मस्ट्रांग के पैड से ढंके पावों के निशानों का अध्ययन करेगी, और चीख कर कहेगी कि उसका सिर तैर रहा है; और क्या यह पहली बार होगा, जब किसी का सिर इस तरह 'धूल' में तैरेगा? यह अमेरिका चन्द्रमा की कक्षा में परिक्रमा करने वाला मूल यान और इस पर सवार कॉलिन्स भी है, जो अपने परिहासप्रिय स्वभाव के कारण चन्द्रतल 'पर' सचमुच उपस्थित अपने साथियों की प्रशंसा के पुल बांधने के बजाय, उन्हें यों सम्बोधित करता है: "अरे, यहां अकेले पड़े मुझको भूल मत जाना।" यह परिहास की एक ऐसी भावना का प्रतीक है, जो समय, अवस्था और दर्शन से परे है, और इस प्रकार, देश और काल की सभी सीमाओं को लांघ जाती है।

यह वह अमेरिका है, जिसे मैंने कभी देखा नहीं। लेकिन जिस अमेरिका को मैं भविष्य में देखूंगा, वह यही होगा, क्योंकि मस्तिष्क वही ग्रहण करता है, जो आंखें देखना चाहती हैं और आंखें वही ग्रहण करती हैं, जो मस्तिष्क प्रयुक्त करना चाहता है। मेरे लिए तो यह, अधिकांश समय, सदा टी० एस० इलियट का ही अमेरिका होगा, हालांकि आप उसे निर्वासित व्यक्ति की संज्ञा देंगे। मेरे लिए यह हालीवुड के चलचित्रों का, डिज़नीलैण्ड का और अन्य रंगीन कामिकों का ही अमेरिका रहेगा। वह उस बृहत्तर भारत का अंग होगा, जिसमें, जैसा कि कुछ लोगों का कहना है, 'कपिलारण्यम्'—आज का कैलिफोर्निया—शामिल था। सच मानिये, यह एक ऐसी बात है, जिसमें मैं हृदय से विश्वास करना चाहता हूं! ■■
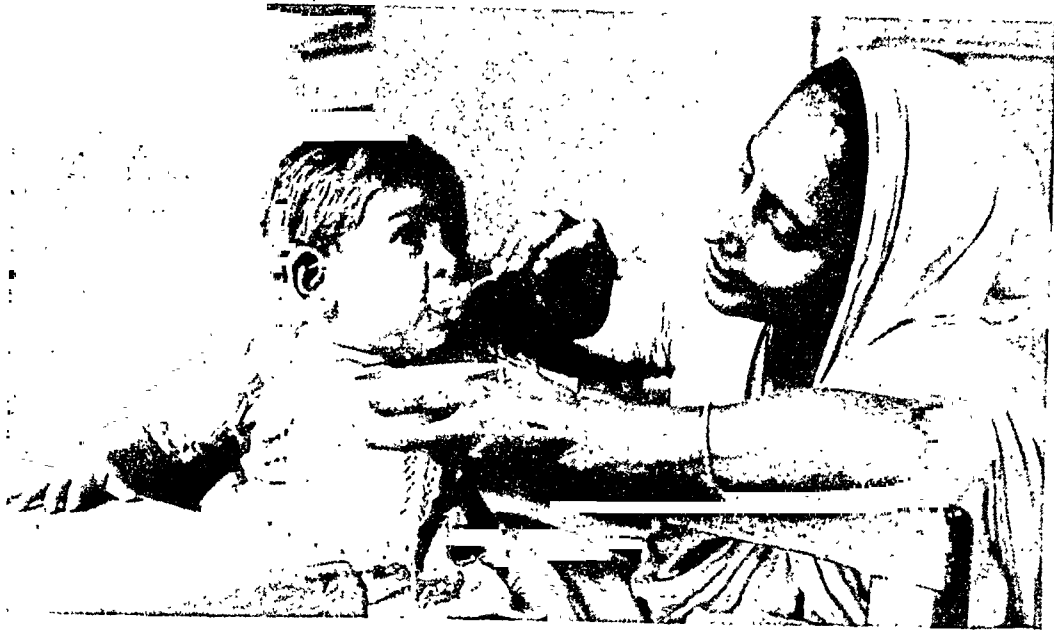
इस शिशु को पी एल-४८० कार्यक्रम के अन्तर्गत सुलभ निःशुल्क पौष्टिक आहार खिलाया जा रहा है।

पी एल-४८० रुपया-कोष

एक विवरणिका

पी. आर. गुप्त

भारत और अमेरिका की सरकारों के बीच 'पी एल-४८० रुपया-कोष' के अन्तिम निपटान के विषय में वार्ता चल रही है। 'पी एल-४८० रुपया-कोष' क्या है और इन वर्षों में भारत के लाभार्थ उसका किस प्रकार प्रयोग हुआ है—इस सम्बन्ध में सम्प्रति तरह-तरह की भ्रान्तियां व्याप्त हैं। इसी को दृष्टिगत रखकर, यहां तत्सम्बन्धी तथ्य-तालिका प्रस्तुत है।

प्रश्न : पी एल-४८० रुपया-कोष से क्या अभिप्राय है?

उत्तर : अमेरिकी कांग्रेस ने सन् १९५४ में पब्लिक ला-४८० (पी एल-४८०) पारित किया। इस कानून के अधीन, अमेरिका को अनुमति दी गयी कि वह भारत को अकाल का सामना करने के लिए रियायती दर पर प्रभूत मात्रा में कृषि-उत्पादन (मुख्य रूप से खाद्यान्न) भेजे। 'रियायती दर' का अर्थ यह है कि अमेरिका ने भारत को यह छूट दी कि वह इन खाद्यान्नों का मूल्य डालर के बजाय मुख्यतः रुपयों में चुकाये। इस पर व्याज दर भी बहुत मामूली रखी गयी। इन बिक्रियों से अमेरिका के खाते में जो रुपया जमा हुआ, वही 'पी एल-४८० रुपया-कोष' कहलाता है। भारतीय रिजर्व बैंक में अमेरिका का जो खाता खुला है, भारत सरकार उसी खाते में यह रुपया जमा कराती है। इस खाते से अमेरिका की सरकार भारत सरकार की सहमति से, और उभय पक्षों को मान्य शर्तों पर, भारत को अनुदान या ऋण के रूप में प्रचुर धन प्रदान करती रहती है। इन ऋणों पर लगने वाले व्याज और अदा की गयी किस्तों को 'अमेरिकी सरकार द्वारा प्रयोज्य' रुपया-कोष में जमा कर दिया जाता है। ये रुपये भी भारत सरकार को अनुदान के रूप में प्रदान किये जा सकते हैं।

प्रश्न : पी एल-४८० के अन्तर्गत वस्तुएं कैसे प्राप्त की गयीं?

उत्तर : वाशिंगटन स्थित इण्डिया सप्लाई मिशन ने अमेरिका के निर्यातक व्यापारियों से अनाज खरीदा। अमेरिकी व्यापारियों को इन वस्तुओं के मूल्यों का भुगतान अमेरिकी कमोडिटी क्रेडिट कारपोरेशन ने डालरों में किया। अनाजों की किस्म, आदि का ब्योरा इण्डिया सप्लाई मिशन ने तय किया।

प्रश्न : पी एल-४८० कोष में कितने रुपये जमा हैं?

उत्तर : भारत ने इस कार्यक्रम के अन्तर्गत, लगभग ६ करोड़ टन खाद्यान्न तथा अन्य वस्तुओं का आयात किया है, जिनका कुल मूल्य २,५५७ करोड़ रुपये होता है। इसमें से ३१४ करोड़ रुपये (४१ करोड़ ८० लाख डालर) की राशि डालरों में अदा की जानी है। खाद्यान्नों की यह सारी बिक्री पी एल-४८० कानून के 'शीर्षक-१' के अन्तर्गत सम्पन्न हुई। इस शीर्षक के अधीन होने वाला आयात १९७१ में समाप्त हो गया।

कार्यक्रम की एक व्यवस्था और है, जिसे 'शीर्षक-२' कहा जाता है। उसका आरम्भ सन् १९५५ में हुआ। इस व्यवस्था के अन्तर्गत, अमेरिका के लिए यह सम्भव हुआ कि वह अकाल अथवा अन्य प्रकार की राहत सम्बन्धी तात्कालिक आवश्यकताएं पूरी करने और कुपोषण, विशेष रूप से बच्चों में कुपोषण, की समस्या हल करने में सहायता देने के लिए भारत को 'उपहारस्वरूप' खाद्य-पदार्थ दे सके। 'शीर्षक-२' के अधीन, १९५५ में उसके आरम्भ से लेकर जून १९७३ तक, भारत को कुल मिला कर ८२ करोड़ ४४ लाख डालर (६१८.३ करोड़ रुपये) मूल्य के खाद्य-पदार्थ उपहारस्वरूप दिये गये। 'शीर्षक-२' के अधीन, भारत को खाद्यान्नों का उपहार देना जारी है।

खाद्यान्नों के इस आयात के फलस्वरूप, भारत अपनी जनता पर आने वाले व्यापक संकट को टालने में सफल हुआ। उन वर्षों में भी, जब वर्षा सामान्य हुई, भारत में खाद्यान्न का उत्पादन प्रायः आवश्यकता से कम हुआ; खाद्य के आयात से बढ़ती हुई मुद्रास्फीति को रोकने में सहायता मिली। १९७० में, जब भारत में, खाद्यान्न-उत्पादन के इतिहास में पहली बार, उत्पादन १० करोड़ टन से अधिक हुआ, भारत ने पी एल-४८० के आयात से अपने खाद्यान्न-भण्डार का निर्माण किया।

प्रश्न : भारत के विदेशी मुद्रा-विनिमय की स्थिति पर पी एल-४८० के 'शीर्षक-१' के अन्तर्गत किये गये आयात का क्या प्रभाव पड़ा?

उत्तर : पी एल-४८० के अन्तर्गत वस्तुओं का आयात करके भारत ने २,२४३ करोड़ रुपये मूल्य की विदेशी मुद्रा बचायी।

प्रश्न : क्या पी एल-४८० के अन्तर्गत किये जाने वाले सभी आयातों का मूल्य अदा किया जाता है?

उत्तर : नहीं। इनमें से कुछ मुफ्त होते हैं। जैसा कि हमने तीसरे प्रश्न के उत्तर में बताया है, 'शीर्षक-२' के अन्तर्गत अमेरिका ने ८२ करोड़ ४४ लाख डालर (६१८.३ करोड़ रुपये) मूल्य के खाद्य-पदार्थ उपहारस्वरूप दिये हैं। विश्व में खाद्य-पदार्थों के उपहार का यह सबसे बड़ा कार्यक्रम है। अमेरिका के चालू वित्तीय वर्ष में (जो जून १९७४ में समाप्त होगा), अमेरिका ३ लाख ६ हजार टन अतिरिक्त खाद्य-पदार्थ उपहारस्वरूप देने का आयोजन कर रहा है, जिसका मूल्य ५ करोड़ २० लाख डालर (३९ करोड़ रुपये) होगा। इस उपहार में, गेहूं, दुग्ध के प्रोटीन से युक्त खाद्य-पदार्थ और वनस्पति तेल शामिल होंगे।

प्रश्न : उपहारस्वरूप दिये जाने वाले इन खाद्य-पदार्थों से किन्हें लाभ होता है?

उत्तर : इसका लगभग ९१ प्रतिशत भाग कुपोषण से पीड़ित भारतीय बच्चों में वितरित किया जाता है—इससे लगभग एक करोड़ स्कूली बच्चों और ३८ लाख उन बच्चों के भोजन में पोषक तत्वों की कमी दूर होती है, जो स्कूल जाने से पूर्व की अवस्था में हैं। यह निःशुल्क मध्यान्ह-आहार के रूप में वितरित किया जाता है। इसमें भारत की राज्य सरकारें और स्थानीय निकाय भी पुष्कल योग प्रदान करते हैं। खाद्य-पदार्थों का कुछ भाग वयस्कों में भी वितरित किया जाता है। 'श्रम के बदले भोजन' कार्यक्रम के अधीन, कई विकास-परियोजनाओं में लगभग १२ लाख श्रमिकों को किये गये श्रम के आंशिक पारिश्रमिक के रूप में खाद्य-पदार्थ दिये जाते हैं।

भारत में, अमेरिका 'शीर्षक-२' के अन्तर्गत, खाद्य-पदार्थों के जो उपहार भेजता है, उनका वितरण 'केयर' (कोआपरेटिव फॉर अमेरिकन रिलीफ एव्रीह्वेयर), कैथोलिक रिलीफ सर्विस, चर्च वर्ल्ड सर्विस और लूथरन वर्ल्ड रिलीफ जैसी स्वयंसेवी संस्थाएं करती हैं।

प्रश्न : आइये, एक बार फिर 'शीर्षक-१' के रुपये—वास्तविक 'रुपया-कोष'—के बारे में विचार करें। यह रुपया कहां है और इसका उपयोग किस प्रकार किया गया है?

उत्तर : यद्यपि यह रुपया अमेरिकी सरकार की सम्पदा है, तथापि यह भारत में ही, मुख्यतः, भारत सरकार को दिये गये ऋणों के रूप में, रिजर्व बैंक में अमेरिका के खाते में जमा है। समझौतों में यह व्यवस्था की गयी है कि २,२४३ करोड़ रुपये (शीर्षक-१ के रुपया-कोष के अधिकांश) का ८१ प्रतिशत भाग आर्थिक विकास के लिए ऋण और अनुदान के रूप में (जिसमें १८ प्रतिशत अनुदान और ६३ प्रतिशत ऋण के रूप में होगा) भारत सरकार को ही लौटा दिया जायेगा। कुल कोष का ६ प्रतिशत भाग निजी उद्योगों को 'कूली ऋण' देने के लिए सुरक्षित है। इन ऋणों के मूलधन और इन पर लगने वाले व्याज के लौटाये जाने के फलस्वरूप जो राशि प्राप्त होती है, वह 'अमेरिका द्वारा प्रयोज्य' रुपया-कोष का भाग बन जाती है, किन्तु इस राशि का भी बहुत बड़ा भाग भारत के लिए उपयोगी कार्यों को बढ़ावा देने के हेतु प्रयुक्त होता है (पृष्ठ ८४ पर दिया गया चार्ट देखिये)। पी एल-४८० समझौतों की शेष ३१४ करोड़ रुपये (४१ करोड़ ८० लाख डालर) की राशि की अदायगी डालरों में की जानी है।

अमेरिकी कांग्रेस ने अमेरिका और विदेशों में कृषि की बदलती हुई स्थिति को दृष्टिगत रख कर सन् १९६६ में 'शीर्षक-१' की व्यवस्थाओं में संशोधन कर दिया और ऋणों की वापसी सम्बन्धी शर्तों को भी संशोधित किया। सन् १९६६ के बाद भारत के साथ जो समझौते किये गये, उनमें व्यवस्था की गयी कि ऋणों की वापसी सम्बन्धी भुगतान धीरे-धीरे रुपये के बजाय डालरों में होने लगेगा। परन्तु ऋणों की वापसी सम्बन्धी शर्तों में यह रियायत की गयी है कि वापसी सम्बन्धी भुगतान ४० वर्षों में किया जायेगा और प्रथम १० वर्ष में कोई भुगतान नहीं करना होगा।

प्रश्न : भारत में चल रहे अमेरिका के कुल सहायता-कार्यक्रमों में, पी एल-४८० सहायता का अनुपात क्या है?

उत्तर : गत २० वर्षों में, अमेरिका ने भारत को जितनी सहायता दी, उसकी कुल राशि में 'शीर्षक-१' और 'शीर्षक-२' के अन्तर्गत प्राप्त पी एल-४८० सहायता का अंश ५० प्रतिशत से भी अधिक रहा है। १९५१ से अमेरिका ने भारत को जितनी सहायता दी, उसका कुल योग १० अरब डालर (वर्तमान विनिमय दर पर ७,५०० करोड़ रुपये) है। पी एल-४८० कार्यक्रम के अन्तर्गत लाभान्वित होने वाले देशों में भारत का स्थान प्रमुख रहा है। इस कार्यक्रम के आरम्भ होने के बाद से रियायती दर पर जितने क्रय-विक्रय हुए और खाद्य-पदार्थों के जितने उपहार दिये गये, उनका लगभग एक-चौथाई भाग भारत को प्राप्त हुआ।

प्रश्न : पी एल-४८० रुपया-कोष से भारत को अपनी कृषि का विकास करने में किस प्रकार सहायता मिली है?

उत्तर : खाद्य की तात्कालिक आवश्यकता पूरी करने, अकाल को टालने, मुद्रास्फीति का सामना करने और कुपोषण की समस्या हल करने में इस रुपया-कोष से भारत को बड़ी सहायता मिली है। कृषि के विकास के लिए अमेरिका ने पी एल-४८० रुपया-कोष से लगभग ८०० करोड़ रुपये के ऋण और अनुदान दिये हैं। यह सहायता भारतीय कृषि को मिली अमेरिकी डालर-सहायता के अतिरिक्त है। स्मरणीय है कि अमेरिका ने भारतीय कृषि को डालर-सहायता के रूप में ७० करोड़ डालर (५२५ करोड़ रुपये) से भी अधिक की राशि प्रदान की।

सन् १९५२ में भारत और अमेरिका के बीच जो सर्वप्रथम प्राविधिक सहयोग समझौता हुआ, वह कृषि से ही सम्बद्ध था। जिस समय यह कृषि-सहायता कार्यक्रम अपने चरमोत्कर्ष पर था, उस समय लगभग १०९ अमेरिकी विशेषज्ञ भारत में अपनी सेवाएं प्रस्तुत कर रहे थे। सिंचाई, उन्नत किस्म के बीज तैयार करने का कार्यक्रम, उर्वरक-उत्पादन, पौध संरक्षण, भूमि और जल प्रबन्ध, ग्रामीण विद्युतीकरण, कृषि-यन्त्र विकास, खाद्यान्न-भण्डारन सुविधाएं, कृषि-विश्वविद्यालय तथा कई अन्य कार्यक्रम इन परियोजनाओं की परिधि में आते हैं।

प्रश्न : पी एल-४८० रुपये से सिंचाई में किस प्रकार मदद मिली?

उत्तर : सन् १९५२ में, भारत में लगभग ५ करोड़ ६० लाख एकड़ भूमि के लिए ही सिंचाई

की सुविधा उपलब्ध थी। बीस वर्ष में, कुल सिंचित भूमि का क्षेत्रफल लगभग दुगना हो गया। १९७२ में, लगभग १० करोड़ एकड़ भूमि के लिए सिंचाई की सुविधा उपलब्ध थी। अमेरिका ने इस सफलता को प्राप्त करने में सहायता दी, और इस सहायता का एक अंश पी एल-४८० रुपये से प्राप्त हुआ। यहां कुछ आंकड़े प्रस्तुत हैं: अमेरिकी सरकार ने १० राज्यों (आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल) में सिंचाई-व्यवस्था को सुधारने के लिए पी एल-४८० रुपया-कोष से कुल मिला कर २४१.८ करोड़ रुपये के ऋण और अनुदान दिये। इस राशि से १२ बड़ी नदी-घाटी परियोजनाओं के निर्माण में मदद मिली। इसके अतिरिक्त, पी एल-४८० कोष से १७४.८ करोड़ रुपये के अन्य ऋण भी दिये गये, जिनका उपयोग लघु सिंचाई योजनाओं को विकसित करने में किया गया।

प्रश्न : पी एल-४८० कार्यक्रम से रासायनिक खाद के उत्पादन में किस प्रकार सहायता मिली?

उत्तर : इससे रासायनिक खाद के तीन बड़े कारखाने स्थापित करने में मदद मिली। इनमें से एक सार्वजनिक क्षेत्र में है, जो बम्बई के पास ट्राम्बे में स्थित है। शेष दोनों निजी क्षेत्र में हैं, जिनमें से एक कारखाना गोवा में और दूसरा विशाखापतनम् में है। १,३५,००० टन की उत्पादन-क्षमता वाले ट्राम्बे कारखाने को भारत सरकार का उर्वरक निगम चलाता है, जिसे पी एल-४८० के रुपया-कोष से १३.४३ करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया गया। विशाखापतनम् में ५० करोड़ रुपये की लागत से निर्मित कारोमण्डल उर्वरक कारखाना एक भारत-अमेरिकी संयुक्त उद्यम है। पी एल-४८० रुपया-कोष से इसे १२.२९ करोड़ रुपये का कूली-ऋण प्राप्त हुआ। गोवा में 'जुएरी एग्रो-केमिकल्स' का उर्वरक कारखाना भी एक भारत-अमेरिकी संयुक्त उद्यम है। अमेरिका ने रुपया-कोष से जुएरी केमिकल्स को २१.६६ करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया।

प्रश्न : कृषि के किन अन्य क्षेत्रों को सहायता दी गयी?

उत्तर : कीटनाशक दवाएं तैयार करने में प्रयुक्त होने वाले कई आवश्यक रसायन भारत-अमेरिकी संयुक्त उद्यमों द्वारा तैयार किये जाते हैं। इन संयुक्त उद्यमों को पी एल-४८० कोष से ऋण दिये गये हैं। खाद्यान्नों का भण्डारन एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र है। आधुनिक ढंग के भण्डार बनाने और उनकी क्षमता बढ़ाने के लिए अमेरिका ने लगभग २९ करोड़ रुपये की सहायता दी। यह सहायता अधिकांशत: अनुदानों के रूप में दी गयी।

प्रश्न : कृषि सम्बन्धी शिक्षा के क्षेत्र में क्या-कुछ किया गया है?

उत्तर : पिछले १३ वर्ष में लगभग १९ कृषि-विश्वविद्यालय स्थापित किये गये, जो भारत में कृषि-क्रान्ति के ध्वजावाहक बने हुए हैं। इनमें से प्रथम कृषि-विश्वविद्यालय सन् १९६० में पन्तनगर, उत्तर प्रदेश, में स्थापित किया गया। इसकी स्थापना में अमेरिका के इलिनोय विश्वविद्यालय ने सहायता दी। पन्तनगर विश्वविद्यालय को पी एल-४८० कोष से भी एक करोड़ रुपये का अनुदान प्राप्त हुआ। आन्ध्र प्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब और राजस्थान में स्थापित सात अन्य कृषि-विश्वविद्यालयों को भी पी एल-४८० रुपया-कोष से सहायता दी गयी।

प्रश्न : क्या इस राशि से कुछ रुपया कृषि-अनुसन्धान के लिए भी दिया गया है?

उत्तर : इसके लिए पी एल-४८० कोष से अतिरिक्त धन दिया गया है। कृषि-उत्पादन बढ़ाने में भारतीय कृषि-अनुसन्धान परिषद के वैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अमेरिका ने परिषद को १७ करोड़ रुपये से अधिक का एक ऋण दिया। यह भी एक तथ्य है, और हो सकता है कि इससे कुछ लोगों को आश्चर्य हो, कि शीर्षक-१ के अन्तर्गत आयातित सामग्री के विक्रय से प्राप्त राशि का जो अंश भारत में अमेरिकी दूतावास द्वारा प्रयुक्त होने के लिए सुरक्षित रखा जाता है, उससे ही अमेरिकी विदेश कृषि-अनुसन्धान अनुदान कार्यक्रम के लिए भी धन की व्यवस्था की जाती है। एक सामान्य और भ्रान्त धारणा यह व्याप्त है कि अमेरिका द्वारा प्रयुक्त होने के लिए जो रुपया-कोष सुरक्षित है, उसका उपयोग केवल अमेरिकी सरकार द्वारा भारत में किये जाने वाले व्यय को पूरा करने के लिए ही होता है। पी एल-४८० रुपया-कोष से अनुसन्धान-कार्य के लिए भारत में पहला अनुदान १९५८ में दिया गया। इसके बाद से अब तक भारत में कालेजों, विश्वविद्यालयों, अनुसन्धान-संस्थाओं तथा अन्य अभिकरणों को रुपया-कोष से ३८० से भी अधिक सहकारी कृषि-अनुसन्धान अनुदान दिये जा चुके हैं। इस समय भी इन अनुदानों के बल पर भिन्न-भिन्न ६० संस्थाओं में १२२ अनुसन्धान-कार्य चल रहे हैं।

प्रश्न : क्या पी एल-४८० रुपया-कोष से कुछ अन्य शिक्षण संस्थाएं भी लाभान्वित हुई हैं?

उत्तर : हां। इस सम्बन्ध में, सबसे पहले कानपुर स्थित इण्डियन इन्स्टिटयूट ऑव् टेक्नालाजी का नाम याद आता है, जिसे भारत में इन्जिनियरी की शिक्षा का अग्रदूत कहा जा सकता है। अमेरिका ने आई. आई. टी., कानपुर, को लगभग १० करोड़ रुपये के ऋण और अनुदान दिये। यह धन भी रुपया-कोष से
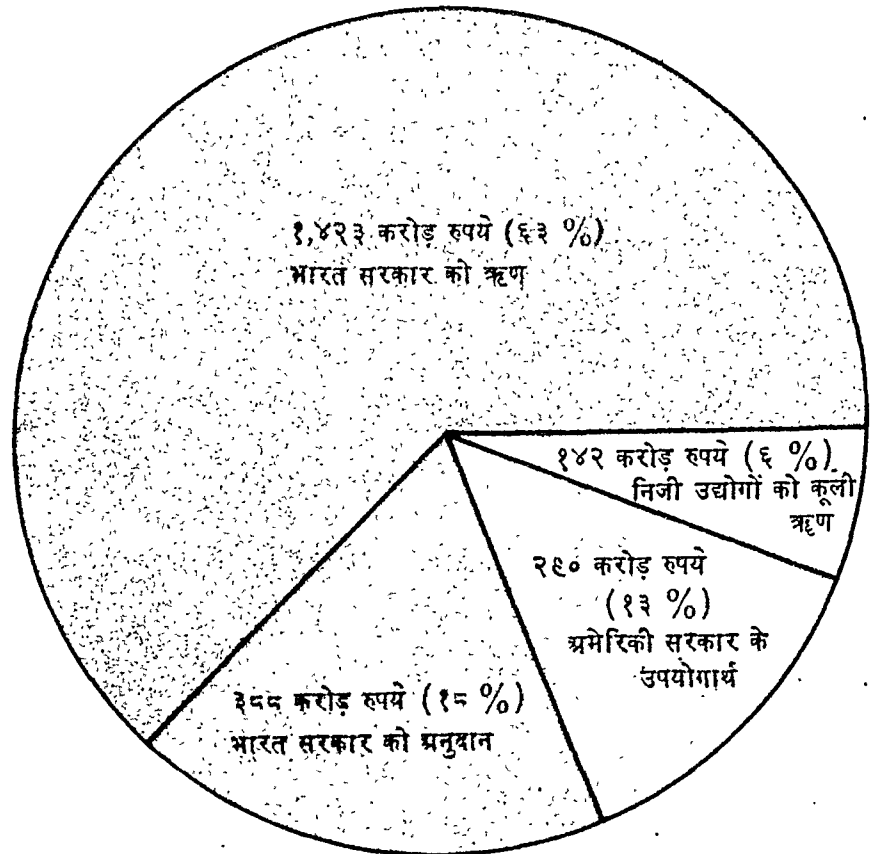
रेखाचित्र में दिखाया गया है कि कुल २,५५७ करोड़ रुपये में से २,२४३ करोड़ रुपये का आवण्टन किस प्रकार हुआ है। ३१४ करोड़ रुपये की शेष राशि डालर के रूप में लौटानी पड़ेगी।

ही दिया गया। इसी प्रकार, इलाहाबाद, भोपाल, दुर्गापुर, जयपुर, जमशेदपुर, कोजीकोड़, कुरुक्षेत्र, मंगलौर, नागपुर, राउरकेला, सिल्चर, सूरत, त्रिचुरा और वारंगल में स्थापित १४ क्षेत्रीय इन्जिनियरिंग कालेजों की स्थापना के लिए भी कुल ४४ करोड़ रुपये से अधिक के ऋण और अनुदान इसी कोष से दिये गये।

आधारभूत स्तर पर, अमेरिकी सरकार ने ८० करोड़ रुपये के ऋण और अनुदान देकर या तो व्यावसायिक स्कूलों की स्थापना में मदद दी या इस प्रकार के पहले से स्थापित स्कूलों को सहायता दी। इस अमेरिकी सहायता से भारत में सात केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान और ३५७ औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित करने में मदद मिली, जिनमें एक लाख छात्रों को प्रशिक्षित करने की क्षमता है।

प्रश्न : अब हम समग्र रूप में शिक्षा पर चर्चा करें। क्या पी एल-४८० कोष के रुपयों से भारत की समूची शिक्षा व्यवस्था का स्तर ऊँचा करने में कुछ सहायता मिली है?

उत्तर : हां। शिक्षा के समूचे ढांचे का आधार व्यापक बनाने के उद्देश्य से भारत सरकार अच्छी पाठ्य पुस्तकें जुटाकर, अध्यापकों का वेतन बढ़ा कर, अधिक स्कूल खोल कर और विज्ञान की शिक्षा का स्तर ऊंचा करके प्राथमिक स्कूलों को सुधारने का प्रयत्न कर रही है। अमेरिका ने इस कार्य के लिए रुपया-कोष से ११० करोड़ रुपये दिये, जिसका दो-तिहाई भाग अनुदान के रूप में दिया गया।

प्रश्न : क्या भारत को दी जाने वाली अमेरिकी सहायता का कोई ऐसा क्षेत्र भी है, जिससे पी एल-४८० रुपया-कोष सम्बद्ध नहीं है? विद्युत्-विकास के क्षेत्र में स्थिति क्या है?

उत्तर : प्रश्न के पूर्वार्द्ध का उत्तर है: "नहीं"। उत्तरार्द्ध के उत्तर में कहा जा सकता है कि भारत की २४ विद्युत्-परियोजनाओं के लिए पी एल-४८० कोष से ऋण या अनुदान के रूप में ३४६ करोड़ रुपये दिये गये। इनमें जल-विद्युत् और ताप-विद्युत् सम्बन्धी परियोजनाएं शामिल हैं, जिनकी कुल उत्पादन-क्षमता ५८ लाख किलोवाट है और जो भारत की सम्पूर्ण विद्युत् उत्पादन-क्षमता के एक-तिहाई के बराबर है। इनमें से कुछ बहु-उद्देश्यीय परियोजनाएं हैं, जिनसे सिंचाई सुविधाओं के विस्तार में भी मदद मिली है।

अमेरिकी सहयोग दो रूपों में सुलभ हुआ है। लगभग १० परियोजनाओं को, जिनकी कुल उत्पादन-क्षमता २४ लाख किलोवाट है, या तो आर्थिक सहायता मिली है या उन्होंने अमेरिकी आर्थिक सहायता से खरीदे गये निर्माण-यन्त्रों का उपयोग किया है। शेष १४ विद्युत्-परियोजनाओं को अमेरिकी आर्थिक सहायता से खरीदी गयी विद्युत्-उत्पादक मशीनें सुलभ हुई हैं।

अमेरिकी सहायता-प्राप्त ये २४ परियोजनाएं देश भर में फैली हुई हैं। इनमें दक्षिण भारत की विशाल शरावती जल-विद्युत् परियोजना (७ लाख १२ हजार ८ सौ किलोवाट), पश्चिम भारत की धुवारण ताप-विद्युत् परियोजना (५ लाख ३४ हजार किलोवाट), और पूर्वी भारत का चन्द्रपुरा ताप-विद्युत्घर (४ लाख २० हजार किलोवाट) जैसी विशाल योजनाएं भी शामिल हैं। शायद बहुत कम लोग ही इस तथ्य से अवगत होंगे कि विद्युत्शक्ति के विकास में अमेरिका भारत का मुख्य सहायक रहा है।

प्रश्न : और ग्रामीण विद्युतीकरण के क्षेत्र में?

उत्तर : जुलाई १९६९ में, अमेरिका ने नव-संस्थापित ग्रामीण विद्युतीकरण निगम को रुपया-कोष से १०५ करोड़ रुपये का अनुदान दिया। यह अनुदान भी भारत में 'अमेरिकी दूतावास के उपयोग के लिए सुरक्षित' अमेरिका द्वारा प्रयोज्य रुपया-कोष से प्राप्त हुआ। भारत सरकार ने इस निगम को ४५ करोड़ रुपये दिये। इस राशि और अमेरिकी सहायता से प्राप्त राशि से गांवों में बिजली के विस्तार में मदद मिली। अपने दूतावास के लिए सुरक्षित कोष से १०५ करोड़ रुपये के इस अनुदान के अतिरिक्त, अमेरिकी सरकार ने ग्रामीण विद्युतीकरण की अन्य परियोजनाओं के लिए १३८.५ करोड़ रुपये के ऋण पी एल-४८० कोष से प्रदान किये।

प्रश्न : स्वास्थ्य के क्षेत्र में पी एल-४८० रुपये का योगदान क्या रहा?

उत्तर : भारतीय जनता का स्वास्थ्य सुधारने के उद्देश्य से आरम्भ की गयी दर्जनों परियोजनाओं के लिए इस कोष से सहायता दी गयी। गत दो दशाब्दों में जन्म के समय जीवन की औसत आशा ३२ वर्ष से बढ़ कर ५२ वर्ष हो गयी। इस प्रकार, २० वर्ष में ही जीवन की औसत आशा में २० वर्ष की वृद्धि हुई! कैसे? क्योंकि जूड़ी-ताप (मलेरिया) और चेचक जैसे संघातक रोगों का उन्मूलन करने के लिए राष्ट्रव्यापी अभियान आरम्भ किये गये। जीवन की औसत लम्बाई में यह नयी वृद्धि विषाणुनाशक औषधियों की सुलभता तथा डाक्टरों, नर्सों और गांवों में अस्पतालों की संख्या में वृद्धि का भी परिणाम है।

एक समय था, जब भारत में प्रतिवर्ष १० लाख लोग मलेरिया से मरते थे। अब इस घातक रोग का प्रायः समूल अन्त हो गया है। सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में, भारत सरकार द्वारा चलाया जा रहा मलेरिया-उन्मूलन कार्यक्रम विश्व के विशालतम कार्यक्रमों में एक है। अमेरिका ने इस कार्यक्रम में १९५८ से सहयोग देना आरम्भ किया। अमेरिका ने इस कार्यक्रम के लिए पी एल-४८० कोष से ८६ करोड़ रुपये के अनुदान और १७ करोड़ रुपये के ऋण दिये।

प्रश्न : क्या भारत के औद्योगिक विकास के बारे में भी हम कुछ चर्चा कर सकते हैं?

उत्तर : गत दो दशाब्दों में, भारतीय उद्योगों ने महत्वपूर्ण प्रगति की है। अमेरिका ने इस प्रगति में सहयोगी बनने के उद्देश्य से भारत के उद्योग विकास बैंक, उद्योग वित्त निगम और औद्योगिक ऋण एवं पूंजी-विनियोजन निगम को रुपया-कोष से कुल १९० करोड़ रुपये के ऋण दिये।

प्रश्न : और, परिवहन-व्यवस्था के विषय में स्थिति क्या है?

उत्तर : राष्ट्रीय राजमार्गों तथा बड़े और छोटे बंदरगाहों के निर्माण एवं विकास के लिए अमेरिका ने पी एल-४८० कोष से ६५.२ करोड़ रुपये के ऋण तथा अनुदान प्रदान किये हैं।

प्रश्न : ऐसा प्रतीत होता है कि पी एल-४८० रुपये से दी गयी अधिकांश सहायता भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के विकास में सहायक हुई। क्या इस रुपये से निजी क्षेत्र को भी कुछ मदद मिली है?

उत्तर : हां, कुछ रुपया इस क्षेत्र को भी मिला है। अमेरिकी सरकार ने निजी क्षेत्र में ७१ भारत-अमेरिकी संयुक्त उद्यमों, अथवा अमेरिकी फर्मों की भारतीय सहयोगी फर्मों, को कुल मिला कर १२३ करोड़ रुपये के ऋण दिये। ये ऋण पी एल-४८० रुपये के कूली-कोष से दिये गये।

प्रश्न : अमेरिकी सरकार भारत में अपने दूतावास का खर्च चलाने के लिए पी एल-४८० कोष का उपयोग किस प्रकार करती है?

उत्तर : अमेरिकी सरकार पी एल-४८० कोष से भारत में अपने दूतावास का खर्च चलाती है, अमेरिका द्वारा भारत को उपहारस्वरूप दिये गये कृषि-उत्पादन की जल और थल पर ढुलाई का भाड़ा चुकाती है और ग्रामीण विद्युतीकरण जैसी परियोजनाओं के लिए भारत सरकार को विकास-अनुदान प्रदान करती है। पी एल-४८० कार्यक्रम जबसे आरम्भ हुआ, तब से लेकर ३० जून, १९७३, तक 'अमेरिका द्वारा प्रयुक्त होने के लिए सुरक्षित रुपया-कोष' से केवल ४७७ करोड़ रुपये खर्च किये गये। इसमें १०५ करोड़ रुपये की वह राशि भी शामिल है, जो भारत सरकार को, मुख्यतः, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम के लिए, अनुदान के रूप में अर्पित की गयी। 'अमेरिका द्वारा प्रयुक्त होने के लिए सुरक्षित रुपया-कोष' से रकम निकालते समय अमेरिका इस बात की पूरी सावधानी बरतता है कि भारत में मुद्रास्फीतिकारी शक्तियों को किसी प्रकार बढ़ावा न मिले और जिन वस्तुओं की कमी है, उनको अनावश्यक रूप से, और बड़ी मात्रा में, न खरीदा जाय। ३० जून, १९७३, को समाप्त होने वाले अमेरिकी वित्त वर्ष में भारत स्थित अमेरिकी दूतावास ने इस कोष से लगभग ८० करोड़ रुपये खर्च किये। इस राशि का लगभग दो-तिहाई भाग अमेरिकी सरकार ने भारत सरकार को अनुदान देने और शीर्षक-२ के अन्तर्गत भारत को उपहारस्वरूप समर्पित खाद्य-पदार्थों की जल और थल पर ढुलाई का भाड़ा चुकाने पर खर्च किया।

प्रश्न : पी एल-४८० रुपया-कोष का अन्तिम निपटान किस प्रकार होगा?

उत्तर : इस विषय पर वार्ता जारी है। अमेरिकी सरकार को पूरा भरोसा है कि वार्ता के फलस्वरूप ऐसे समझौते का प्रारूप तैयार किया जा सकेगा, जो दोनों सम्बद्ध राष्ट्रों को मान्य होगा। ■■

बहुराष्ट्रीय निगमों से समायोजन

रॉबर्ट डब्ल्यू० सारनॉफ

आज विश्व की १०० वृहत्तम आर्थिक इकाइयों में से केवल ५० ही राष्ट्र हैं। शेष ५० अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियां हैं।

अकेले इसी आंकड़े से यह स्पष्ट हो जाता है कि पिछले दो दशाब्दों में बहुराष्ट्रीय व्यवसायों के विकास के फलस्वरूप, आर्थिक सत्ता के विश्वव्यापी वितरण में कितना क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है।

इस यथार्थवादी सहज प्रेरणा से प्रेरित होकर कि जहां-कहीं विकास और लाभ प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध हो, वहां उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय, कम्पनियों ने अधिक विस्तृत मण्डियों का विकास करने, प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाने, व्यापारिक प्रतिबन्धों से बच निकलने तथा आवश्यक कच्चे माल तक पहुंचने के लिए राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सीमाओं के आरपार अपना भाग्य आजमाने का अधिकाधिक प्रयत्न किया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की विदेशी शाखाओं का कुल उत्पादन अब ३ खरब डालर प्रतिवर्ष से अधिक पहुंच चुका है—यह उत्पादन अमेरिका और सोवियत रूस को छोड़ कर विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के कुल राष्ट्रीय उत्पादन से अधिक है।

बहुराष्ट्रीयतावाद का अत्यन्त त्वरित विकास, परिमाण और गुण, दोनों ही दृष्टियों से, इससे पूर्व घटित किसी भी परिवर्तन से भिन्न है। अमेरिकी तथा यूरोपीय व्यावसायिक निगमों ने काफी समय से विदेशों में अपनी शाखाएं खोल रखी हैं। लेकिन केवल पिछले २० वर्षों में ही; वे अपने केन्द्रीय प्रधान-कार्यालय से समान निगमित नीति का संचालन करने तथा अपनी शाखाओं से, चाहे उनकी संख्या अथवा दूरी कितनी ही क्यों न हो, निरन्तर और अविलम्ब सम्पर्क स्थापित करने में समर्थ हो सके हैं।

यह प्रगति, निस्सन्देह, प्रौद्योगिकी की—तार और उपग्रह के माध्यम से संचालित उच्च क्षमतापूर्ण संचार-प्रणालियों, तीव्र गति वाले विद्युदाणविक संगणकों और अन्तर्महाद्वीपीय उड़ान भरने वाले जेट विमानों की—देन है। यह प्रगति एक ऐसी अवधि में हुई है, जिसमें पश्चिमी यूरोप और सुदूर पूर्व के देश आर्थिक पुनरुत्थान और राजनीतिक विकास के पथ पर अग्रसर थे। इस प्रकार, इस प्रगति ने व्यवसायों में बड़े पैमाने पर पूंजी लगाने और औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण योग प्रदान किया। इसका अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ कि बहुराष्ट्रीय व्यवसायों के विकास की गति बहुत तीव्र हो गयी। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत, सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन और पश्चिमी यूरोप के देशों में विदेशी, मुख्यतः अमेरिकी, पूंजी का प्रत्यक्ष विनियोजन हुआ। लेकिन, हाल के कुछ वर्षों में, इस प्रकार के पूंजी-विनियोजन के प्रवाह की दिशा पलट गयी है। अब यूरोपीय और जापानी व्यवसायी अमेरिकी उद्योगों में अपनी पूंजी का प्रत्यक्ष विनियोजन कर रहे हैं। इसी काल में, विकासोन्मुख क्षेत्रों, विशेष कर लैटिन अमेरिका और दक्षिण-पूर्वी एशिया के कुछ भागों, में बहुराष्ट्रीय व्यवसायों की गतिविधियों में धीमी गति से, परन्तु महत्वपूर्ण, विस्तार हुआ है।

इससे जो लाभ हुए, वे निर्विवाद हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने विश्वव्यापी संचार, यातायात, बैंकिंग तथा ऐसी अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सेवाएं सुलभ की हैं, जो किसी एक राष्ट्रीय संगठन द्वारा सुलभ नहीं की जा सकती थीं। विकसित देशों में, इनके क्रियाकलापों से आर्थिक विकास को और अधिक प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि इस प्रकार प्रौद्योगिक आदान-प्रदान, तथा विपणन एवं उत्पादन की सम्मिलित व्यवस्था, के लिए नये माध्यम उपलब्ध हो जाते हैं। विकासोन्मुख देशों में, इनसे प्राकृतिक साधनस्रोतों की खोज और विकास करने तथा नये-नये उद्योगों की स्थापना करने में मदद मिलती है; पूंजी-निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है; और प्रबन्ध तथा व्यावसायिक कौशल का, जो आधुनिक विश्व में प्रगति के लिए अनिवार्य हैं, सन्निवेश होता है।

उन देशों के लिए, जिनमें मूल कम्पनियां स्थित होती हैं, बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विदेशी मण्डियां सुलभ करने तथा उनका अधिक विकास करने में सहायक होती हैं। इसके अतिरिक्त, वे निर्यात-व्यापार में वृद्धि करती हैं और विदेशी मुद्रा अर्जित कर भुगतान-सन्तुलन को अनुकूल बनाने में सक्रिय योग प्रदान करती हैं।

लेकिन, इन सभी स्पष्ट लाभों के बावजूद, बहुराष्ट्रीयता के सिद्धान्त का अभी तक विश्व ने खुले हृदय से स्वागत नहीं किया है। विश्व के अधिकांश देश आज भी राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने के लिए वचनबद्ध हैं। और, इस बात को समझना कठिन भी नहीं है, क्योंकि यह परिवर्तन शायद इतने बड़े पैमाने पर, और इतने कम समय में, घटित हुआ है कि उसके साथ आसानी से तालमेल बिठा पाना सम्भव नहीं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियां प्राविधिक जानकारी और उत्पादन को—और इसलिए, नौकरियों को—एक देश से दूसरे देश में स्थानान्तरित करने में समर्थ हैं। अपनी इसी क्षमता के कारण वे अनेक देशों के श्रमिकों को एक खतरा प्रतीत होती हैं। विकासोन्मुख देशों की दृष्टि में, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विकास की प्रवृत्ति अभी तक उद्योग-प्रधान देशों के लिए ही अधिक हितकर रही है। वे समझते हैं कि इससे सम्पन्न देशों और निर्धन देशों के मध्य विद्यमान खाई और भी चौड़ी हो गयी है।

सरकारें भी बहुराष्ट्रीय कारोबार से होने वाले आर्थिक लाभों का यथोचित मूल्यांकन नहीं कर पातीं, क्योंकि उन्हें यह भय बराबर लगा रहता है कि इस प्रकार की कम्पनियों को, जिनका मूल कार्यालय विदेशों में स्थित होता है, कहीं आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रता न

बहुराष्ट्रीय निगम न केवल संसार के अनेक राष्ट्रों में कुशल श्रमिकों के लिए रोज़गार सुलभ कर रहे हैं, प्रत्युत् एक सच्ची अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास की दिशा में उन्मुख एक अप्रत्यावर्त्ती अभियान के ध्वजावाहक भी बन रहे हैं।

प्राप्त हो जाये। वे यह समझती हैं कि यदि इन विदेशी कम्पनियों के क्रियाकलापों पर अंकुश नहीं लगाया गया, तो वे पूंजी, मांग और लाभ को देश के बाहर ले जाकर या देश के भीतर लाकर, राष्ट्र की आर्थिक और मुद्रा सम्बन्धी नीतियों को निष्फल कर सकतीं हैं।

जब तक नागरिकों और सरकारों को यह भय सताता रहेगा कि वे अपने घर के मालिक स्वयं नहीं हैं, तब तक बहुराष्ट्रीय व्यवसायों के कारोबार पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए अधिकाधिक दबाव पड़ता रहेगा। इस सम्बन्ध में, अनेक प्रतिरोधी और जवाबी उपायों पर विचार भी हो रहा है। उदाहरण के लिए, अमेरिका में लोगों को यह भय सता रहा है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां नौकरियों और प्रौद्योगिकी का निर्यात कर राष्ट्रीय हितों को ठेस पहुंचा रही हैं। उसी भय के कारण, वहां बर्क-हार्टके विधेयक जैसे कानूनी उपायों का प्रस्ताव किया गया है। इस विधेयक के अन्तर्गत, राष्ट्रपति को विदेशों में अमेरिकी कम्पनियों का पूंजी-विनियोजन सीमित करने का अधिकार दिया गया है। अन्य उद्योग-प्रधान देशों में भी यह पता लगाने के लिए अध्ययन जारी है कि विदेशी कम्पनियों के कारोबार पर प्रतिबन्ध लगाना कहां तक उपयुक्त है, और यदि उपयुक्त है, तो इन प्रतिबन्धों का स्वरूप क्या होना चाहिये। विकासोन्मुख देशों में तो किसी भी बहुराष्ट्रीय कम्पनी की स्थानीय शाखाओं के कारोबार पर पर्याप्त या पूर्ण नियन्त्रण लगाने पर बल देने की प्रवृत्ति आम तौर पर दृष्टिगोचर होती है।

इनसे इस बात की चेतावनी मिलती है कि बहुराष्ट्रीय व्यवसायों और राष्ट्रीय हितों में किसी भी समय टकराव हो सकता है। यद्यपि यह सत्य है कि दोनों ही पक्ष अधिकाधिक व्यवहार-कुशलता का परिचय दे रहे हैं, परन्तु यदि पारस्परिक समझदारी और समायोजन की दिशा में अधिक जोरदार प्रयास नहीं किये गये, तो अनेक मँहगे विवादों से बच पाना सम्भव नहीं हो सकेगा।

अतएव, वातावरण को सुधारने की दिशा में दोनों ही पक्षों को पहल करने की आवश्यकता है। कुछ उपयोगी उदाहरण हमारे सामने मौजूद भी हैं। लेकिन ये उदाहरण केवल अपवादों के रूप में हैं, जबकि आवश्यकता यह है कि वे, देर-सवेर, सामान्य व्यवस्था का रूप ग्रहण कर लें।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए उन सभी देशों में, जहां वे अपने कारोबार चलाती हैं, सबसे प्रमुख चुनौती यह होती है कि वे अपनी श्रेष्ठ एवं असन्दिग्ध नागरिकता का प्रदर्शन करें और आतिथेय देश की सरकार और जनता को अपनी योजनाओं और कारोबार में अधिक प्रत्यक्ष रूप में शामिल करें:

—आतिथेय देश के नागरिकों को न केवल स्थानीय शाखा की प्रबन्ध-व्यवस्था में, बल्कि उसका संचालन करने वाले मूल बहुराष्ट्रीय निगम की प्रबन्ध-व्यवस्था में भी, योगदान करने का पर्याप्त अवसर मिलना चाहिये। जब तक नीति-निर्धारण सम्बन्धी केन्द्रीय अधिकार मूल देश के नागरिकों के हाथों में ही केन्द्रित रहेगा, तब तक एक शक्तिशाली विदेशी उद्यम की उपस्थिति के कारण उत्पन्न आशंकाओं और विरोध-भावना का परिहार कर पाना बहुत कठिन होगा।

—स्थानीय शाखा की सफलता में कर्मचारियों और जनता का सीधा और प्रत्यक्ष स्वार्थ निहित होना चाहिये। ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के लिए जो उपाय सम्भवत: अपनाये जा सकते हैं, उनमें लाभांश में भागीदारी, पेंशन सम्बन्धी उदार कार्यक्रम, चुनाव द्वारा शाखा के निदेशक-मण्डल में स्थानीय निदेशकों की नियुक्ति, कम्पनी के व्यवसाय के लिए आवश्यक माल और सेवाओं का अधिक भाग स्थानीय तौर पर ही जुटाने का प्रयास, आदि सम्मिलित हो सकते हैं।

—विदेश में होने वाले प्रत्येक प्रत्यक्ष पूंजी-विनियोजन से स्थानीय आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रमों को बल मिलना चाहिए, ताकि एक नये उद्योग की स्थापना के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले लाभों को स्थायित्व प्रदान किया जा सके। यह बात विकासोन्मुख देशों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, हालांकि यह आम तौर पर सर्वत्र लागू होती है। उदाहरण के लिए, कारखाने की स्थापना के लिए स्थान का चुनाव, कुछ सीमा तक, क्षेत्रीय विकास सम्बन्धी राष्ट्रीय आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर किया जा सकता है। बहुराष्ट्रीय व्यवसाय उन क्षेत्रों में, जहां वे अपने कारोबार चलाते हैं, छोटे-छोटे स्थानीय व्यवसायियों को प्रशासनिक, विपणन सम्बन्धी तथा इसी प्रकार के अन्य कौशल उधार देने की नीति अपना सकते हैं।

—इन तथा अन्य स्पष्ट एवं सुनिश्चित उपायों के साथ-साथ, कम्पनी की उन नीतियों और गतिविधियों के बारे में सही-सही जानकारी देने के लिए, जो देश के हितों को प्रभावित करती हैं, एक जन-सूचना कार्यक्रम भी होना चाहिए। इसके अभाव में, प्राय: ऐसा होता है कि कुछ थोड़े से विदेशी व्यवसायों के वास्तविक अथवा काल्पनिक अपराधों का कुफल सभी बहुराष्ट्रीय व्यवसायों को भुगतना पड़ता है।

सरकारें इस सम्बन्ध में क्या पहल कर सकती हैं? मुझे दो कदम सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं:

—उन्हें अपने नागरिकों द्वारा विदेशों में प्रत्यक्ष पूंजी-विनियोजन को प्रोत्साहन देने के लिए कदम उठाना चाहिये। यदि बहुराष्ट्रीय व्यवसायों के विकास में स्थानीय व्यवसायों का भी स्वार्थ सन्निहित हो जाये, तो बहुत सम्भव है कि स्थानीय शाखाओं के विदेशी स्वामित्व के प्रति उनका विरोध घट जाये। उदाहरण के लिए, बहुत से देशों में अमेरिका के आर्थिक

प्रभुत्व सम्बन्धी आशंकाएं सम्भवतः उस दशा में बहुत घट जायेंगी, जब उन देशों के और अधिक व्यवसायी अमेरिका के विस्तृत घरेलू बाजार में अपने व्यवसाय स्थापित कर लेंगे, अथवा वहां के अन्य व्यवसायों में शामिल हो जायेंगे। अमेरिका के घरेलू उद्योगों में यद्यपि विदेशी पूंजी-विनियोजन निरन्तर वृद्धि पर है, फिर भी अभी तक यह विनियोजन मुख्यतः कनाडावासियों, अंग्रेजों और पश्चिमी यूरोप के निवासियों के हाथों में ही केन्द्रित है—और, यहां भी पूंजी-विनियोजन की गति को और तेज करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जा सकता है।

—विभिन्न सरकारें कर सम्बन्धी भारी रियायतें देकर तथा अन्य तरीके अपना कर विदेशी पूंजी को आकृष्ट करने के लिए आपस में जिस विनाशकारी प्रतिस्पर्धा में संलग्न हैं, उसे समाप्त करने के लिए सहकारी कार्यवाही की जानी चाहिये। इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा कम्पनियों को एक सरकार को दूसरे के विरुद्ध भड़काने का अवसर देती है, जिससे अन्ततोगत्वा सबको नुकसान पहुंचता है। बहुधा ऐसा भी, हुआ है कि एक नये उद्योग की स्थापना के उपलक्ष्य में खुशी मनाने के कुछ समय बाद ही, जनता ने उस उद्योग को दी गयी उदार शर्तों पर क्षोभ प्रकट किया है और इस जन-असंतोष के फलस्वरूप अधिकारियों ने शर्तों में परिवर्तन करने का प्रयास किया है। इसके फलस्वरूप उत्पन्न संघर्ष न केवल सम्बद्ध कम्पनी के प्रति, अपितु सभी बहुराष्ट्रीय व्यवसायों के प्रति भी, लोगों के दृष्टिकोण को प्रभावित कर सकता है।

अलग-अलग पहलों के अतिरिक्त, बहुराष्ट्रीय व्यवसायों और सरकारों के समक्ष संयुक्त रूप से यह चुनौती भी विद्यमान है कि वे पारस्परिक संचार-व्यवस्था में सुधार करें और उसे नियमित रूप दें। ऐसी स्थिति में, जबकि बहुराष्ट्रीय व्यवसायों की आर्थिक शक्ति में निरन्तर वृद्धि हो रही है, सरकार के नीति-निर्णायकों को चाहिये कि वे कम्पनियों की उन नीतियों और क्रियाकलापों पर पूरी तरह विचार करें, जो राष्ट्रीय, आर्थिक एवं सामाजिक लक्ष्यों से किसी भी रूप में सम्बद्ध हों। कम्पनियों को भी, सरकारी योजनाओं और नीतियों की यथेष्ट जानकारी रखनी चाहिए, ताकि राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुसार, वे अपनी कार्य-विधियों में उचित फेर-बदल कर सकें।

आतिथेय सरकारों और बहुराष्ट्रीय व्यवसायों की प्रबन्ध-व्यवस्था के सर्वोच्च अधिकारियों के मध्य सूचना का सीधा और नियमित आदान-प्रदान इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का सबसे तर्कसंगत उपाय है। उन पक्षों के लिए, अतीत में जिनका झुकाव परस्पर सहयोग के बजाय टक्कर लेने की ओर रहा है, इस प्रकार का विचार-विनिमय एक सर्वथा नयी बात होगी।

इससे आगे, अधिक सामान्य आवश्यकता यह है कि सभी सरकारें व्यावसायिक बहुराष्ट्रीयता के व्यवस्थित विकास के लिए एक आचार-संहिता का आधार तैयार करने में एक-दूसरे से विस्तृत सहयोग करें। निरन्तरता और सामंजस्य का वातावरण बनाने के लिए इस आचार-संहिता की परम आवश्यकता है। उन्हें उन विभिन्न राष्ट्रीय कानूनों और नियमों में सामंजस्य लाने का प्रयास करना चाहिए, जो आयकर, विलयन, मूल्य-निर्धारण, न्यास-विरोधी नीतियों, उचित श्रम-प्रथाओं तथा अन्य विवादग्रस्त क्षेत्रों से सम्बद्ध हैं।

इस प्रकार की किसी भी आचार-संहिता में, किसी भी बहुराष्ट्रीय व्यवसाय द्वारा सत्ता के दुरुपयोग के विरुद्ध सुरक्षा की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। व्यवहार में, इसका अर्थ यह हुआ कि अनेक देशों में व्यवसायों का नियमन करने के लिए निर्धारित सिद्धान्तों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण किया जाये। विशेष रूप से, यदि विकासोन्मुख देशों में ऐसी मान्य आचार-संहिता लागू की जा सके, जिससे बहुराष्ट्रीय व्यवसायों की श्रेष्ठ नागरिकता के बारे में आश्वस्त हुआ जा सके, तो विदेशी स्वामित्व वाले व्यवसायों के प्रति विद्यमान विरोध बहुत सीमा तक समाप्त हो सकता है।

आर्थिक सहयोग एवं विकास संघटन ('आर्गेनाइजेशन फॉर इकोनामिक कोआपरेशन ऐण्ड डेवलपमेण्ट') जैसा सम्प्रति विद्यमान कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संघटन बहुराष्ट्रीय व्यवसायों के लिए आचार-संहिता तैयार करने के उद्देश्य से एक उपयुक्त संघटन सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार के प्रस्तावों में, बहुराष्ट्रीय व्यवसायों के कारोबार का निरीक्षण करने के लिए एक नये विधि-संघटन या एक नयी अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसी की स्थापना का सुझाव भी शामिल है। किन्तु अभी इसमें सन्देह है कि इस प्रकार की कोई एजेंसी वांछनीय होते हुए भी व्यावहारिक सिद्ध होगी, क्योंकि हितों, विचारधाराओं और क्रियाकलापों में इतनी अधिक विविधता होगी कि सभी को सन्तुष्ट कर पाना सम्भव नहीं हो सकेगा। ऐसी परिस्थितियों में, ऐसे सामान्य प्रतिमानों के बारे में सहमति प्राप्त करना श्रेयस्कर प्रतीत होता है, जिनमें मान्य सीमाओं के भीतर लोचशीलता की गुंजाइश रहे।

वस्तुतः, बहुराष्ट्रीय व्यवसाय एक सच्ची अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए चल रहे एक अटल एवं अप्रत्यावर्ती अभियान का ध्वजावाहक है। यदि इसका कोई अन्धकारमय पक्ष है, तो वह केवल उस खतरे में निहित है, जो बहुराष्ट्रीय व्यवसायों को उपलब्ध असीम शक्ति के प्रभावशाली प्रति-सन्तुलन के अभाव के कारण उत्पन्न हो सकता है। जब तक उनके कारोबार को नियन्त्रित करने के लिए बनाये गये राष्ट्रीय कानूनों में समन्वय का अभाव रहेगा, तब तक सांयोगिक और असमन्वित प्रतिक्रियाओं का खतरा बना ही रहेगा। फलस्वरूप, संसार के अनेक भागों में सोने के अण्डे देने वाले हंसों की हत्या होती रहेगी, और अन्ततः, सोने के अण्डों का भण्डार समाप्त हो जायेगा।

विदेशों में केन्द्रस्थ निजी बहुराष्ट्रीय निगमों के क्रियाकलापों सम्बन्धी उन समस्त मौलिक आशंकाओं के बावजूद, जो राष्ट्रीय सरकारों की आर्थिक नीतियों पर हावी हो सकती हैं, यह बात निर्विवाद है कि अभी तक किसी ऐसी संस्था की कल्पना नहीं की जा सकी है, जो आर्थिक और प्रौद्योगिक क्षमताओं को राष्ट्रीय और महाद्वीपीय सीमाओं के आरपार प्रसारित या विकीर्णित करने में बहुराष्ट्रीय निगमों की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी सिद्ध हो सके।

निस्सन्देह, यह एक महान् और उपयोगी शक्ति है। अतएव, हमारे समय की एक प्रमुख राजनीतिक चुनौती यह है कि राष्ट्रीय सरकारों और बहुराष्ट्रीय व्यवसायों के मध्य ऐसे विश्वव्यापी सहयोग को प्रोत्साहन दिया जाय, जिससे इस शक्ति का उपयोग रचनात्मक उद्देश्य की पूर्ति के लिए करना सम्भव हो जाय। ऐसा होने पर, निश्चय ही, एक ऐसा सामंजस्यपूर्ण वातावरण तैयार किया जा सकेगा, जिसमें सत्ता का उपयोग सभी के कल्याणार्थ हो सकेगा। ■■

लेखक के विषय में : रॉबर्ट डब्ल्यू० सारनॉफ आर० सी० ए० कार्पोरेशन के अध्यक्ष हैं। यह एक प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय निगम है, जिसकी शाखाएं २० से अधिक राष्ट्रों में स्थापित हैं।
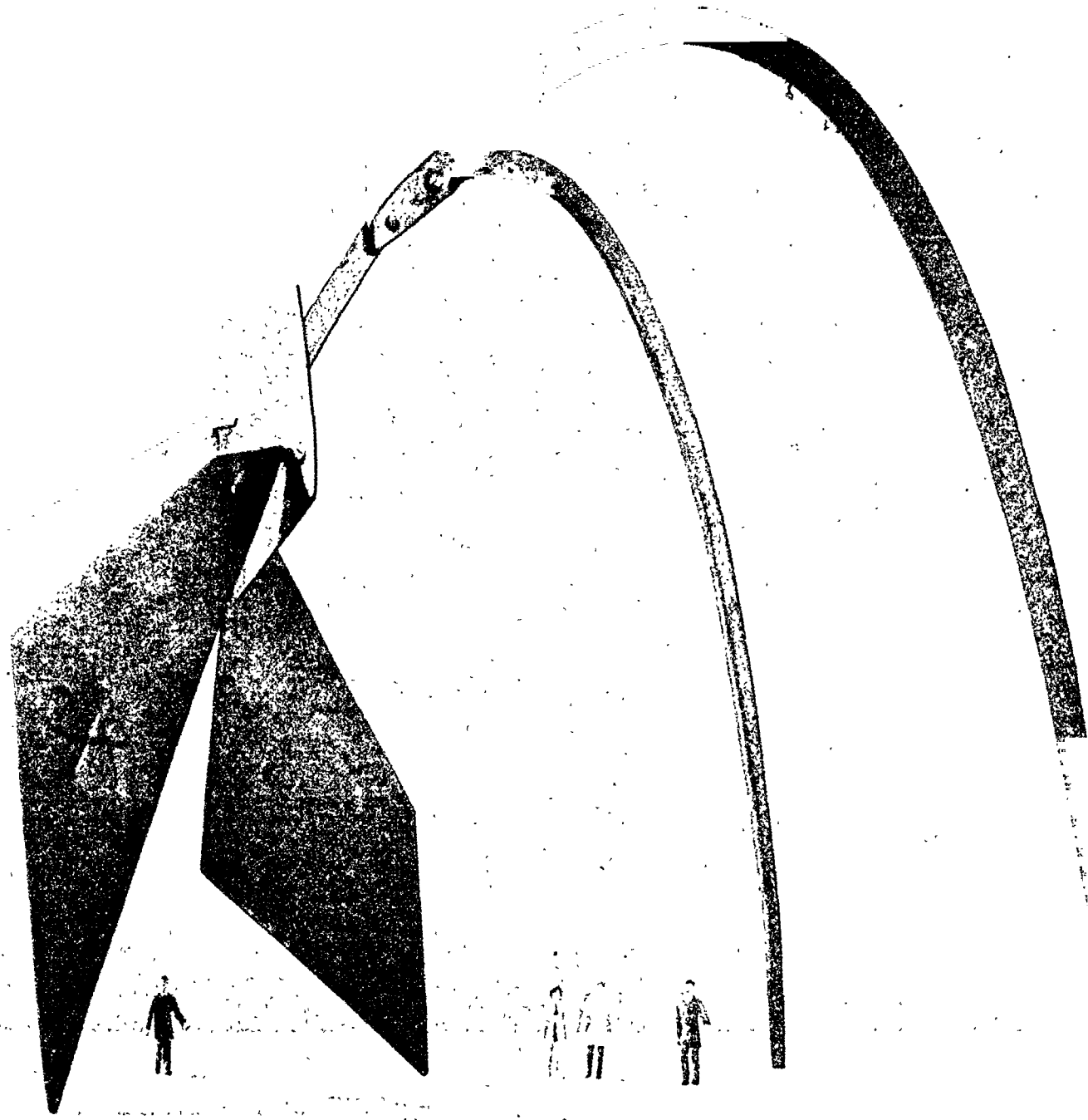
कॉल्डर द्वारा निर्मित 'फ्लैमिंगो' (अबाबील) १६ मीटर ऊंची स्थावर मूर्त्ति (नमूना, ऊपर) होगी। यह मूर्त्ति शिकागो के फेडरल सेण्टर के लिए बनायी जा रही है। इस पर ३,२५,००० डालर लागत आयेगी। राष्ट्रपति निक्सन ने इसे 'शिकागो की जनता' के लिए अमेरिकी सरकार की ओर से दिया जाने वाला 'उपहार' बताया है। सरकार सार्वजनिक स्थानों में कलाकृतियों की स्थापना के लिए जो आर्थिक सहायता दे रही है, उसी नयी योजना के अन्तर्गत इस मूर्त्ति का निर्माण हो रहा है। श्री निक्सन के शब्दों में, "संघीय भवनों में ललित कला को प्रोत्साहित करने विषयक मेरे कार्यक्रम के अन्तर्गत, जिन प्रमुख कलाकृतियों की रचना का आदेश दिया गया है, उनमें यह 'फ्लैमिंगो' प्रथम प्रमुख कृति है।"

एक मूर्द्धन्य कलाकार

अपनी आयु के ७५वें वर्ष में भी स्फूर्तिवान् और स्वस्थ, 'अन्तरिक्ष का वातायान-प्रसाधक' अपनी 'चरम जंगम शिल्पकृति' के सृजन में, ब्रैनिफ इण्टनैशनल एयरवेज़ के एक जेट विमान पर चित्रकारी करने में, अतीव मनोयोग से संलग्न है।

"बुलबुल जैसी कोमल आत्मा वाला एक समर्थ व्यक्ति, जिसकी प्रत्येक श्वास में जंगम-शिल्प स्पन्दित है।"

पिछले पृष्ठ परः कॉल्डर फ्रांस के साचे नगर में स्थित अपनी शिल्पशाला में कार्यरत।

दायें: अलेक्जेण्डर कॉल्डर मैक्डानेल डगलस डी० सी०-८ जेट विमान के उन कई छोटे-छोटे नमूनों में से एक को चित्रित करने में संलग्न हैं, जिन्हें वह इस वर्ष (१९७३ में) ब्रेनिफ इण्टर्नेशनल एयरवेज़ के लिए चित्रित करेंगे। इन नमूनों को अपने-आप में कॉल्डर की 'मौलिक कृतियां' माना जा रहा है और इन्हें विभिन्न कला-संग्रहालयों को प्रदर्शनार्थ दे दिया जायेगा। ४८ मीटर लम्बे (डैने का विस्तार: ५० मीटर) वास्तविक विमान पर चित्रकारी का कार्य इस वर्ष शरद ऋतु में आरम्भ हो रहा है। इस 'चरम जंगम शिल्पकृति' (अल्टिमेट मोबाइल) सम्बन्धी उनके कार्य के लिए ब्रेनिफ एयरवेज़ कॉल्डर को १,००,००० डालर पारिश्रमिक दे रही है।

धुर दायें: कॉल्डर की एक अन्य कलाकृति श्वेत और काले संगमरमर-चूर्ण से निर्मित चित्र-विचित्र पार्श्व-पथ है, जो न्यूयार्क नगर की पर्ल्स कलादीर्घा की एक दर्शनीय वस्तु है। प्रति वर्ष लाखों लोग इसे देखने आते हैं।

अलेक्जेण्डर कॉल्डर, जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय कला-समीक्षकों ने बीसवीं शताब्दी के सर्वोत्तम कलाकारों की कोटि में रखकर अभिनन्दित किया है, आजकल सात नयी परियोजनाओं पर कार्य कर रहे हैं। न्यूयार्क की पर्ल्स कलादीर्घा में उनकी वार्षिक प्रदर्शनी हो रही है, जिसमें प्रदर्शित कलाकृतियों में से एक है 'पार्श्व-पथ' (ऊपर, धुर दायें)। लॉस एन्जेलस, हार्टफोर्ड, फोर्ट वर्थ और शिकागो के सार्वजनिक भवनों और मनोरंजन-स्थानों के लिए चार विशाल स्थावर मूर्त्तियों ('स्टेबाइल्स') के निर्माणार्थ उन्हें आदेश मिल चुके हैं (नमूना, पृष्ठ ८९ पर); फिलाडेल्फिया के एक बैंक में दुनिया की सबसे बड़ी जंगम मूर्त्ति ('मोबाइल') के निर्माण का कार्य उन्हें सौंपा गया है; और उनके जीवन की सबसे नाटकीय परियोजना—ब्रेनिफ इण्टर्नेशनल एयरवेज़ के एक जेट विमान (नमूना, ऊपर, दायें) के बाहरी भाग पर चित्र बनाने का कार्य—भी उनके हाथ में है। कलाकार के महत्व को देखते हुए, यह निश्चय किया गया है कि विमान पर ब्रेनिफ का नाम नहीं लिखा होगा—केवल कॉल्डर का हस्ताक्षर होगा। यह जेट विमान इस साल के अन्त तक संयुक्त राज्य अमेरिका और लैटिन अमेरिका के बीच व्यापारिक यात्रा पर उड़ान करने लगेगा। अन्ततः, शायद एक दिन वह भी आयेगा, जब कॉल्डर के विमान किसी भी अन्य मौलिक समकालीन कलाकृति की अपेक्षा अधिक देखे जा सकेंगे। निश्चय ही, यह उस मनुष्य के जीवन की उपलब्धियों का उपयुक्त चरम बिन्दु होगा, जिसकी कलाकृतियां पेरिस से शिकागो तक, कराकास से माण्ट्रियल तक और मैक्सिको से दिल्ली तक (देखिये, पृष्ठ ९६ पर, 'ला मास्क्स' चित्र-यवनिका, जो भारत में अमेरिकी राजदूत के राजकीय निवास, रूज़वेल्ट हाउस, नयी दिल्ली, में लगी है) ७० से अधिक नगरों को सुशोभित कर रही हैं।
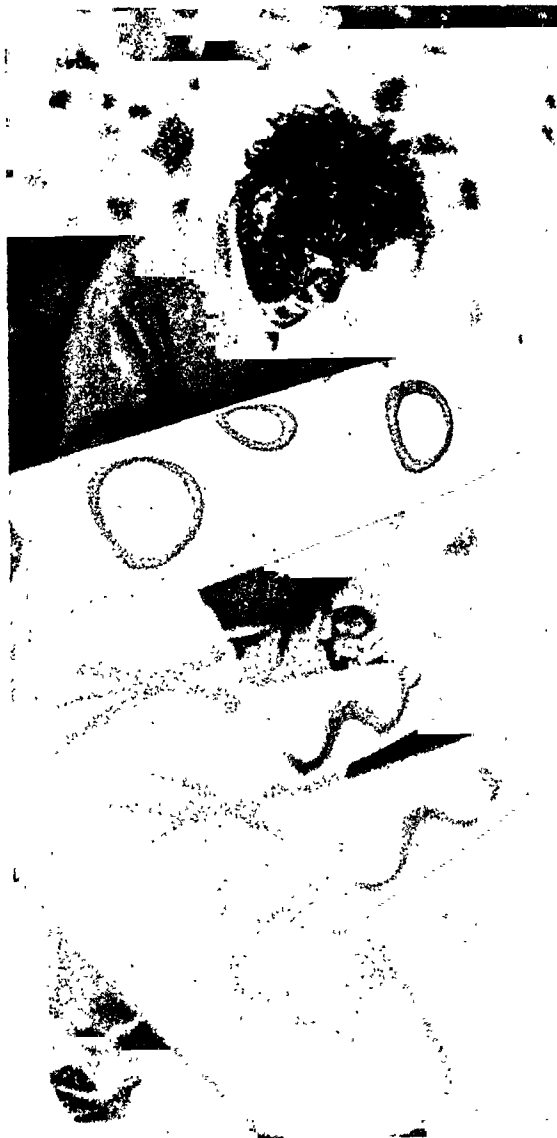
कॉल्डर की प्रतिभा के विषय में सहस्रों शब्द लिखे जा चुके हैं। फ्रांसीसी कलाकार, फरनैण्ड लेगर, की दृष्टि में, वह "गम्भीर हैं, लेकिन गम्भीर जान नहीं पड़ते.... और शत-प्रतिशत अमेरिकी हैं।" कॉल्डर की जंगम मूर्तियों के विषय में ज्यां पाल सार्त्र कहते हैं: "वे गीतिमय आविष्कार हैं... एक लघु आमोद-प्रमोद, गति की एक विशुद्ध क्रीड़ा, वैसे ही, जैसे प्रकाश की विशुद्ध क्रीड़ाएं हुआ करती हैं.... अवकाश के क्षणों में आनन्द देने वाली एक चीज।" और, स्वयं कॉल्डर अपने बारे में क्या कहते हैं? विनम्र, मितभाषी, यह महान् अमेरिकी कलाकार अपने-आपको 'अन्तरिक्ष का वातायन-प्रसाधक' मात्र मानता है।

यदि कॉल्डर से एक विमान को चित्रित करने का (नमूना, पृष्ठ ९२, ऊपर) अनुरोध किया गया, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि वही पहले आधुनिक कलाकार हैं, जिन्होंने नमूनों के आधार पर गतिहीन आकृतियां बनाने की रूढ़िगत धारणा से अलग हट कर, प्रतिमाओं में गतिशीलता का संचार किया। कलाकार रॉबर्ट आॅसबर्न के शब्दों में, "कॉल्डर को जो बात दूसरे कलाकारों की तुलना में सर्वाधिक विशिष्ट बना देती है, वह यह है कि अन्तरिक्ष के अन्वेषण का वर्तमान युग आरम्भ होने से एक पीढ़ी पहले ही उन्होंने अन्तःप्रेरणा से यह अनुभव कर लिया—जैसा कि हर महान् कलाकार करता है—कि भविष्य क्या रूप लेने जा रहा है; फिर तो, उन्होंने पार्थिव ठोस पदार्थों, श्रमसाध्य भारी पिण्डों, का परित्याग कर दिया, और अन्तरिक्ष को ही अपना चित्रफलक बना डाला।"

अलेक्जेण्डर ('सैण्डी') कॉल्डर ने एक मेकैनिकल इन्जिनियर के रूप में अपनी आजीविका प्रारम्भ की। ग्राफिक कलाकार के रूप में उनकी जीवन-यात्रा उस समय आरम्भ हुई, जब १९२३ में वह न्यूयार्क नगर में 'नेशनल पुलिस गजट' के रेखाचित्रकार नियुक्त हुए। १९२६ में, वह किसी तरह युक्ति लगाकर एक मालवाही जहाज द्वारा फ्रांस पहुंचे। सौभाग्य से, उनको और ज्यां कोक्तो का ध्यान तत्काल

अगले पृष्ठ पर : 'रेड सन' (लाल सूरज) नामक
कॉल्डर द्वारा निर्मित अधिकतम विख्यात स्थावर
('स्टैबाइल्स') में से एक है। इसकी ऊंच
मीटर है और यह मैक्सिको के
स्टेडियम के सामने स्थापि
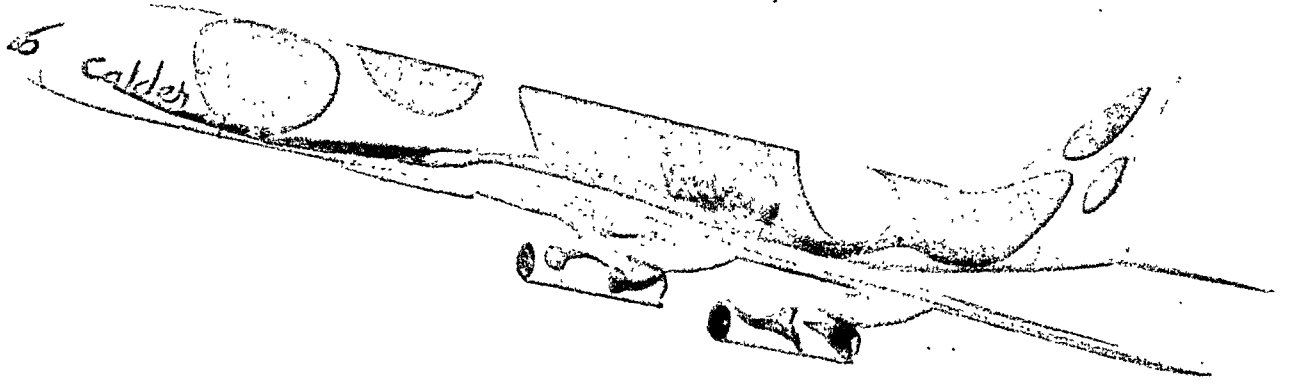
ऊपर : ब्रैनिफ इण्टर्नेशनल एयरवेज़ के लिए कॉल्डर जिस जेट विमान पर चित्रकारी कर रहे हैं, उसके अनेक नमूनों में से एक।

नीचे : 'चार जन्तु'। गुआश।
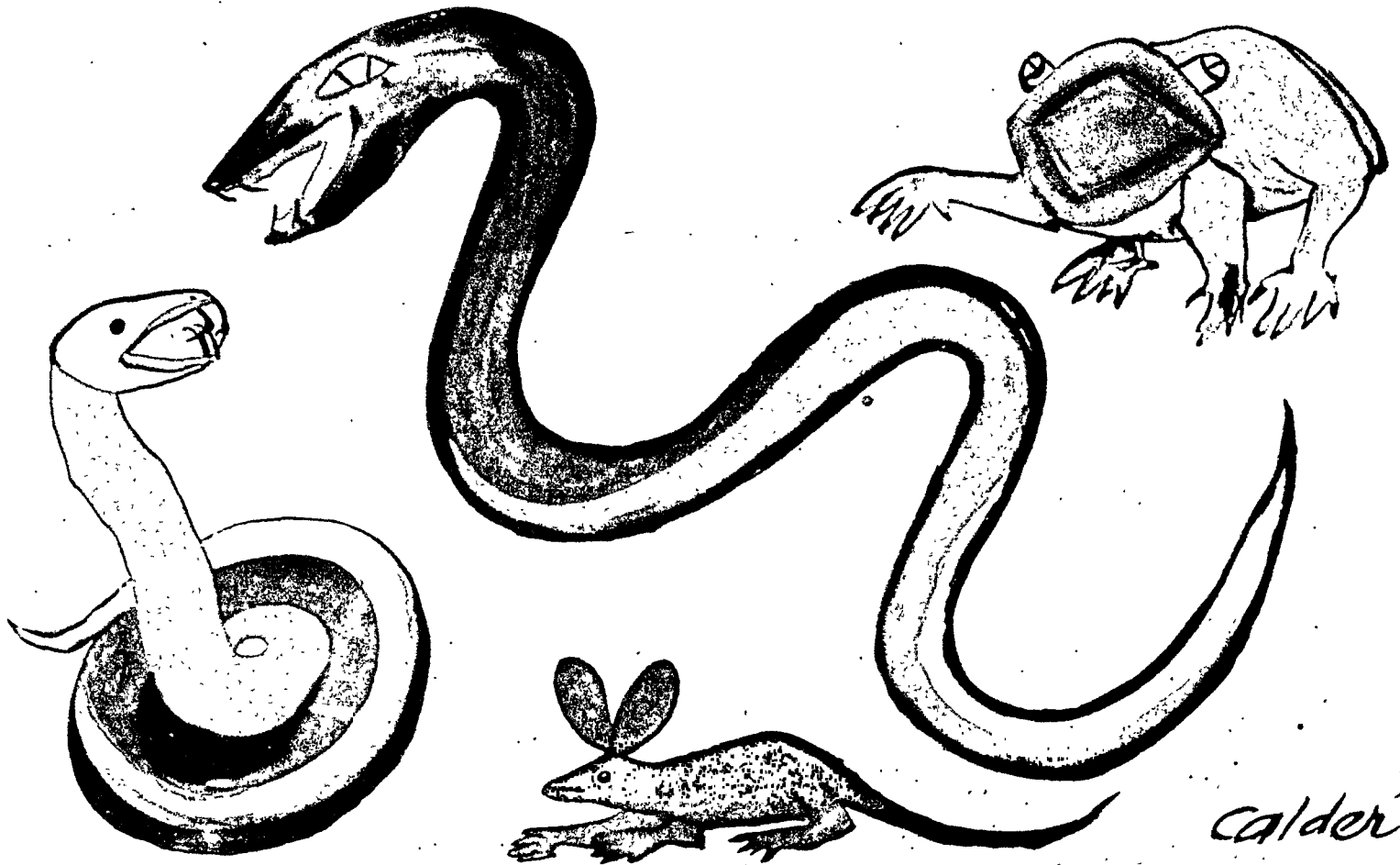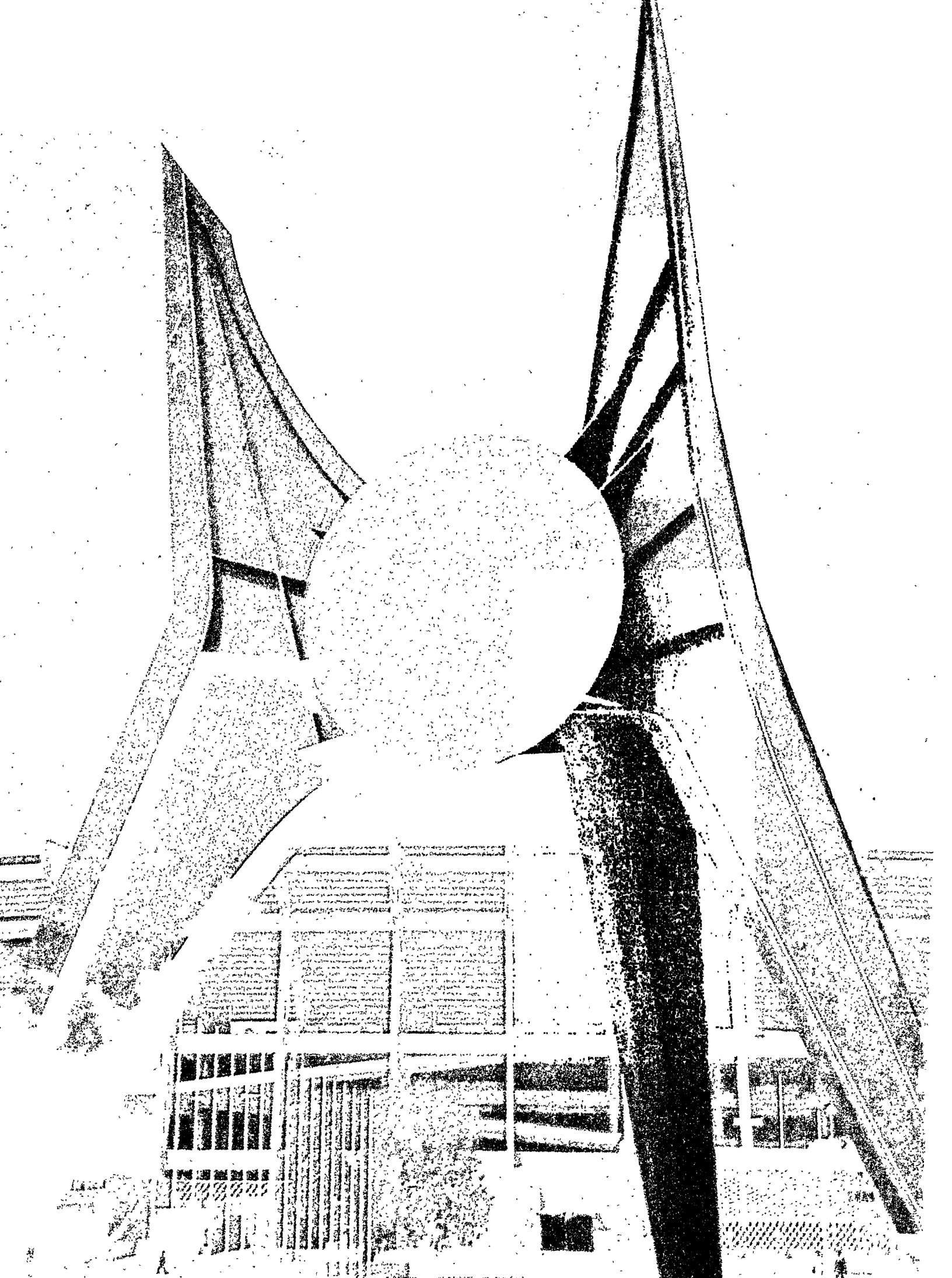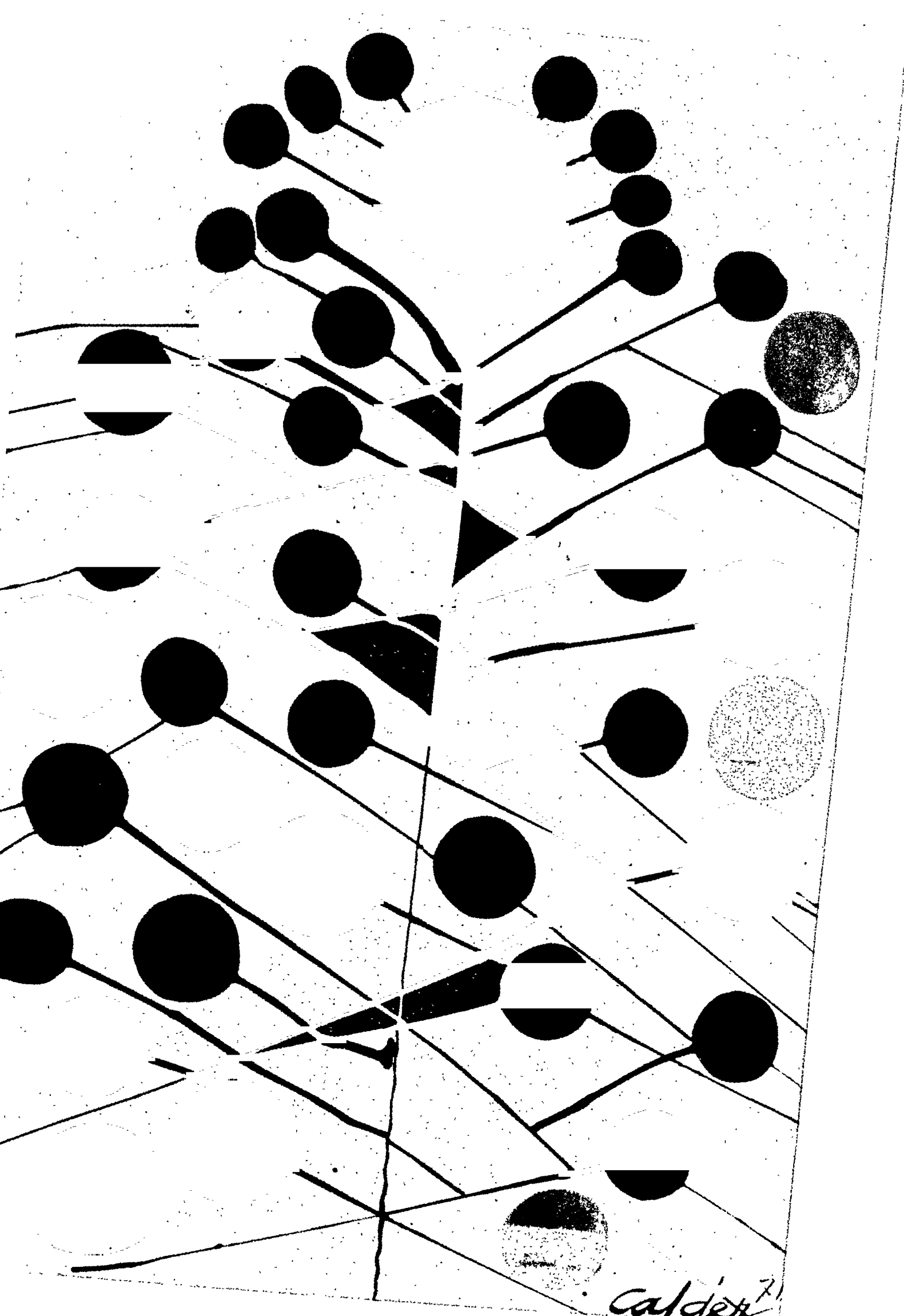
पिछले पृष्ठ पर : 'बकशाट' तरु । गूआश;
७४×१०६ सें० मी० ।

कॉल्डर की चित्र-यवनिका दिल्ली में

भारत में अलेक्जैण्डर कॉल्डर की कला के जो सर्वोत्तम नमूने उपलब्ध हैं, उनमें एक है 'ला मास्क्स' (दायें)। यह एक चित्र-यवनिका (टैपिस्ट्री) है, जो नयी दिल्ली में अमेरिकी राजदूत के राजकीय निवास, रूज़वेल्ट हाउस, को अलंकृत कर रही है।

'ला मास्क्स' नामक यह चित्र-यवनिका रूज़वेल्ट हाउस के वुडवर्ड-संग्रह की कलाकृतियों में से एक है। श्रीमती मोयनिहन ने 'वुडवर्ड कलेक्शन फाउण्डेशन' से यह कलाकृति श्री मोयनिहन के भारत-प्रवास की अवधि तक के लिए उधार ले रखी है। वुडवर्ड फाउण्डेशन की स्थापना एक भूतपूर्व राजनयिक, स्टैनली वुडवर्ड, और उनकी पत्नी ने १९६१ में की थी। यह एक ऐसा संस्थान है, जिसका उद्देश्य लाभ कमाना नहीं है। यह समसामयिक अमेरिकी कलाकारों की कृतियों का संग्रह करता है और विदेशों में नियुक्त अमेरिकी राजदूतों को कुछ समय के लिए इनमें से कुछ कृतियां उधार भी देता है। रूज़वेल्ट हाउस के संग्रह में २६ कलाकृतियां हैं, जिनमें जोज़ेफ एल्वर्स, हेलेन फ्रैंकन्थेलर, सैम गिलियम, जैस्पर जॉन्स, रॉबर्ट रौशेनवर्ग, मार्क टोवी और, बेशक, अलेक्जैण्डर कॉल्डर जैसे प्रसिद्ध कलाकारों की कृतियां सम्मिलित हैं।

श्रीमती मोयनिहन ने कहा : "जब वुडवर्ड फाउण्डेशन ने मुझसे पूछा कि क्या मेरी पसन्द की कोई विशेष चीज भी है, तब मैंने उनसे कहा कि मैं कॉल्डर की कला की बहुत प्रशंसक हूं। मैंने यह जानना चाहा कि उनके पास कॉल्डर की भी कोई कृति है क्या। उन्होंने कहा कि है तो सही, लेकिन केवल एक ही कृति—'ला मास्क्स'—है। समूचे संग्रह में मेरी प्रिय चीज़ यही है।"

रूज़वेल्ट हाउस में संगृहीत कलाकृतियों की कई बार सार्वजनिक प्रदर्शनी करने की योजना है। उनमें से पहली प्रदर्शनी इस वर्ष शरद ऋतु में होगी, जिसके आतिथेय होंगे राजदूत श्री मोयनिहन और उनकी धर्मपत्नी। श्रीमती मोयनिहन ने कहा : "हम महसूस करते हैं कि ये कलाकृतियां केवल राजदूत के निवास की शोभा बढ़ाने के निमित्त यहां नहीं लायी गयी हैं। ये इसलिए भी यहां लायी गयी हैं, ताकि भारत के कलाकारों तथा कलाप्रेमियों तक इन्हें पहुंचाया जा सके, और समसामयिक अमेरिकी कला के वैविध्य एवं समृद्धि का उद्घाटन हो सके।"

"उनका विलक्षण, विपुल, कृति-भण्डार, निश्चय ही, हमारे युग का एक प्रमुख सांस्कृतिक उत्तराधिकार सिद्ध होगा।"

ही आकृष्ट हो गया और वह उनके कृपापात्र बन गये। कॉल्डर ने उसी वर्ष पेरिस में अपनी पहली एकल प्रदर्शनी आयोजित की। शीघ्र ही, उन तीन कलाकारों से भी उनकी भेंट हो गयी, जिन्होंने उनके शिल्प और कृतित्व को सबसे अधिक प्रभावित किया है। वे हैं—फरनैण्ड लेगर, जोन मिरो और पिएट माण्ड्रियन। कॉल्डर ने अपनी प्रथम जंगम मूर्त्तियों की रचना १९३१ में की; और वह व्यक्ति मार्सेल ड्यूकैम्प थे, जिन्होंने इन मूर्त्तियों को 'जंगम' ('मोबाइल्स') की संज्ञा दी। बाद में, चित्रकार ज्यां आर्प ने 'जड़-जंगम मूर्त्तियों' ('मोशनलेस मोबाइल्स') के लिए (नमूना, पृष्ठ ९३ पर), जिन्हें कॉल्डर ने १९४० वाले दशाब्द के प्रारम्भिक वर्षों में बनाना शुरू किया, 'स्थावर' ('स्टेबाइल्स') नाम सुझाया।

आज भी कॉल्डर की शिल्पशाला (पृष्ठ ९० पर) जंगम और स्थावर मूर्त्तियों से अटी पड़ी है। उनमें जो छोटी मूर्त्तियां हैं, उनका भी मूल्य २,००० डालर से १२,००० डालर के बीच है। "फिर भी", जैसा कि उनके जामाता, ज्यां डेविड्सन, ने कहा है, "धन के कारण उनमें किंचित्मात्र परिवर्तन नहीं आया है। वह अपने एकाउण्टैण्टों के साथ बैठकों में शामिल होते हैं; और जिस समय वे हजारों-लाखों डालर की बातें कर रहे होते हैं, वह आराम से खर्राटे लेते रहते हैं।"

हो सकता है कि कॉल्डर की जंगम मूर्त्ति देखने में मशीन-युग के सामान्य उत्पाद जैसी ही प्रतीत हो, किन्तु होती है वह उनकी सर्वथा निजी कृति। उसका निर्माण मुख्यत: हाथ के औजारों द्वारा होता है। वास्तव में, कॉल्डर इन्जिनियर और कलाकार, दोनों ही हैं। उनके मित्र और विश्वासपात्र परामर्शदाता, जोन मिरो, के शब्दों में, "जैण्डी बुलबुल जैसी कोमल आत्मा वाले समर्थ व्यक्ति हैं, जिनकी प्रत्येक श्वास में जंगम-शिल्प का स्पन्दन है।"

अमेरिका और फ्रांस, दोनों ही, देशों में रहते और काम करते हुए, कॉल्डर ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का कौशल अनेक कला-माध्यमों, जैसे जंगम और स्थावर शिल्पों, तैल चित्रों, लिथोग्राफ और अन्य छापा-चित्रों, आभूषणों और घर-गृहस्थी की वस्तुओं, चित्र-यवनिकाओं ('टैपेस्ट्रीज़') तथा 'गूआश' (वाटरकलर से चित्रण की एक विधि), पर दिखाया है। इन माध्यमों की कलाकृतियों के चित्र इन तथा अगले पृष्ठों पर दिये गये हैं। चित्र-यवनिकाओं की रचना उन्होंने १९६२ के पूर्व तक प्रारम्भ नहीं की थी और उनमें अधिकांश यवनिकाओं (एक नमूना पृष्ठ ९६ पर दिया गया है) की बुनायी कॉल्डर द्वारा प्रस्तुत आकल्पनाओं के आधार पर ओबुसन, फ्रांस, के पिण्टों फ्रेरीज ने की थी। इनके 'मोटिफ' (कला में निहित अभिप्राय) सरल हैं, जैसे गिलहरियां, 'बूमरैंग', सर्प और मुखौटा। इस सम्बन्ध में एक समीक्षक ने कहा है कि उनकी जंगम मूर्त्तियों की भांति ही, "चित्र-यवनिकाओं में एक गति दिखायी देती है, जो घिसीपिटी अभिव्यंजना तथा अशक्त सम्वेदना को पास नहीं फटकने देती।"

कॉल्डर की सबसे हाल की कृतियों में, 'गूआश' अथवा अ-पारदर्शी वाटरकलर चित्र (नमूने पृष्ठ ९२ तथा पृष्ठ ९४ पर दिये गये हैं) शामिल हैं। इन सभी में, खेतों,मैदानों या उद्यानों के दृश्य अंकित हैं, जिनमें पुष्प ऊर्जस्विता के साथ ऊपर की ओर उठ रहे हैं, और पशु बच्चों द्वारा निर्मित चित्रों के पशुओं जैसी ही निर्भयता और अडिगता के साथ एक-दूसरे का सामना करते हैं। इसके अतिरिक्त, इनमें जंगम मूर्त्तियों के निर्माता के हाथ बड़े सधे हुए हैं: घास तार जैसी कड़ी और कसी हुई होती है; सर्प वैसे ही लचकदार ढंग से कुण्डली मार कर बैठे हैं, जैसे पौधों के कोमल तन्तु कुण्डलित रहते हैं। कॉल्डर की जंगम मूर्त्तियों की तरह ही, उनके अ-पारदर्शी वाटरकलर चित्र भी उल्लास की अभिव्यक्ति करते हैं। उनमें एक ऐसी सन्तुष्टि की झलक मिलती है, जो संसार में जीवित रहने की अनुभूति मात्र से प्राप्त होती है; एक ऐसी सन्तुष्टि, जो सभी जड़-जंगम वस्तुओं—हवा में उन्मुक्त संतरण करते पक्षियों, मैदान में तृप्ति के साथ घास चरते पशुओं अथवा थिरकने के लिए पवन-झकोरों की प्रतीक्षा करती, टहनी से धातु-खण्ड की तरह लटकती, पत्तियों—में पायी जाती है। जब कॉल्डर से पूछा जाता है कि वह तैल रंगों से चित्र बनाने के बजाय, जलरंगों (वाटरकलर) से अ-पारदर्शी चित्र (गूआश) बनाना क्यों अधिक पसन्द करते हैं, तब वह अपनी विशिष्ट दो-टूक संक्षिप्त शैली में उत्तर देते हैं: "तैल रंगों के साथ दिक्कत यह है कि चित्र के सूखने तक बड़ी लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ती है।"

कॉल्डर से पूछा गया कि अपनी आयु के ७५वें वर्ष में, उनका लगाव सबसे अधिक किस चीज से है। उनका उत्तर था: "अभी-अभी तो मेरे चिन्तन का मुख्य केन्द्र १० टन वजन वाली वह वस्तु है, जो एक बैंक की छत से लटकने जा रही है।" इस उत्तर में उसी बाल-सुलभ मस्ती और मनमौजीपन की झलक मिलती है, जिसे गत ५० वर्षों के अपने शिल्पी जीवन में उन्होंने अपनी समस्त कलाकृतियों में संजोया है। और, निस्सन्देह, ये कलाकृतियां जितनी विपुल हैं, उतनी ही वैविध्यपूर्ण भी हैं। कला-समीक्षक, डोनाल्ड कार्शन, के शब्दों में: "कॉल्डर अभी अनवरत रूप से कला का सृजन कर रहे हैं। उनका विलक्षण, विपुल, कृति-भण्डार, निश्चय ही, हमारे युग का एक प्रमुख सांस्कृतिक उत्तराधिकार सिद्ध होगा।" ■■

'ला मास्क्स'।
चित्र-यवनिका; १६६×२४६ से० मी०।
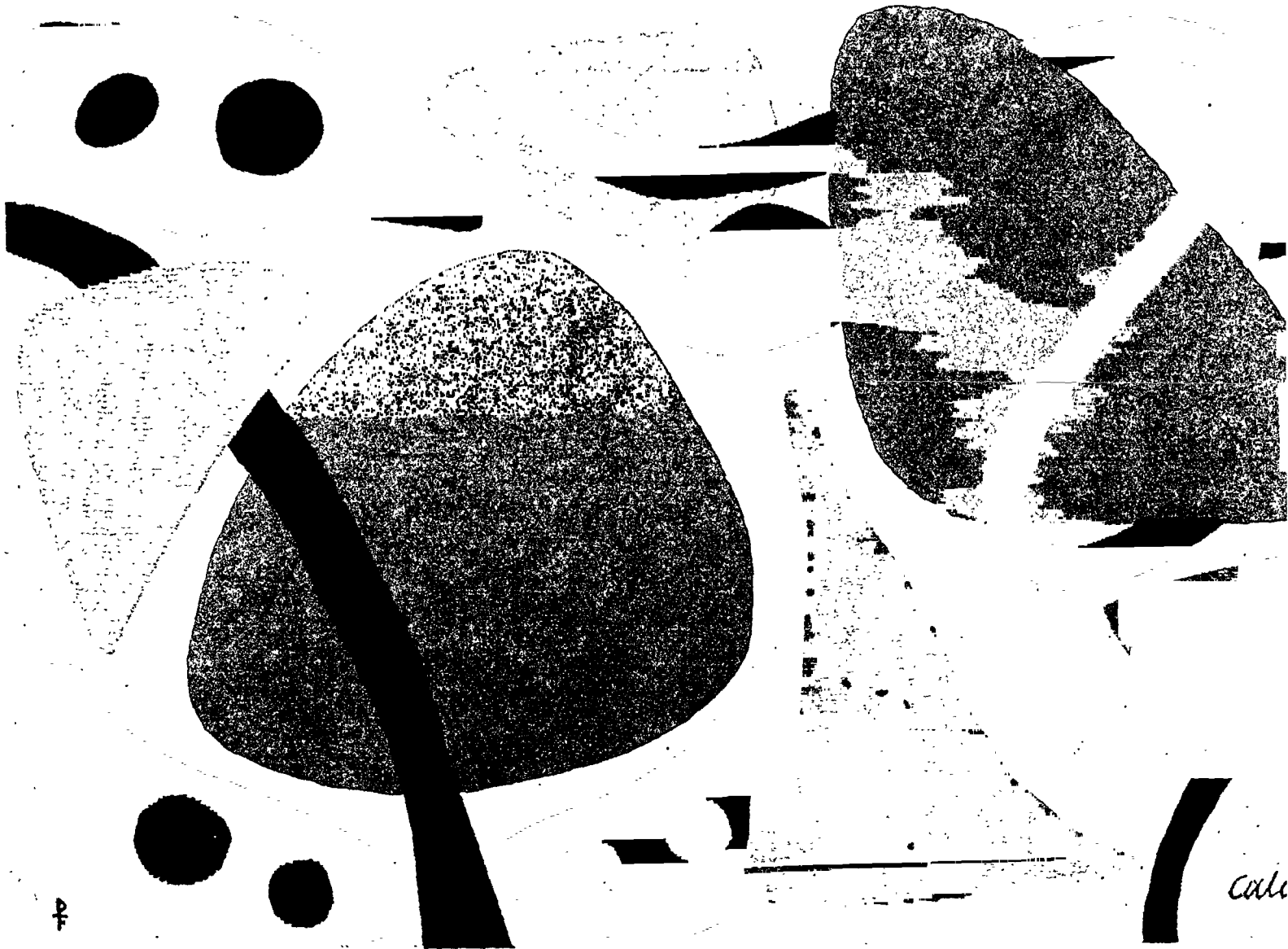
छायाचित्र ● पृ० ३-११ क्लॉस एवेलिंग और रविकुमार के सौजन्य से
● पृ० ४२, ४४ विष्णु पंजाबी
● पृ० ४५ पब्लिक्स पिक्टोरियल सर्विस
● पृ० ५६ अविनाश पसरीचा
● पृ० ६३ (नीचे) सैन डियेगो चिड़ियाघर के सौजन्य से
● पृ० ७३-७७ राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन ('नासा') के सौजन्य से
● पृ० ८६ (बायें) अमेरिकन टेलिफोन ऐण्ड टेलिग्राफ के सौजन्य से
● पृ० ८६-८७ (खण्डित) 'यू० एस० न्यूज ऐण्ड वर्ल्ड रिपोर्ट' के सौजन्य से
● पृ० ९० नेल्सन मौरिस
● पृ० ९१ (बायें), ९२ (ऊपर) ब्रैनिफ इण्टर्नैशनल के सौजन्य से
● पृ० ९२ (नीचे) छायाचित्र, ज्योफे क्लीमेण्ट्स, पर्ल्स गैलरीज, न्यूयार्क
● पृ० ९४ पर्ल्स गैलरीज, न्यूयार्क
● पृ० ९६ छायाचित्र, आई० डी० बेरी

पुस्तक-प्रणयन

प्रकाशक ● अलबर्ट ई० हेमसिंग
प्राविधिक सम्पादक ● ओम्बिका गुप्ता
हिन्दी सम्पादक ● वी० पी० सिंह
अम्बिका सिंह
प्रकाशन-सहायक ● विमान सेनगुप्त
अभिरूपण और सज्जा ● एम० मल्लिक

प्रकाशित ● यूनाइटेड स्टेट्स इन्फार्मेशन सर्विस, २४ कस्तूरबा गान्धी मार्ग, नई दिल्ली, द्वारा।

मुद्रित ● श्री सरस्वती प्रेस लिमिटेड, कलकत्ता-९, में श्री मिहिर के० दास द्वारा।